शिवाशिव जानिकराम। गौरीशंकर जय रघुनन्दन जय सियाराम। व्रज-गोपी-प्रिय राधेश्याम॥ राजाराम । पतितपावन (संस्करण २,२५,०००) धर्माचरण ही सच्चा मित्र है वसुधाधिपत्यं वाताभ्रविभ्रममिदं आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः। प्राणास्तृणाग्रजलविन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः॥ इस सम्पूर्ण पृथ्वीका आधिपत्य (सम्पत्ति-अधिकारादि) हवामें उड़नेवाले बादलके समान (क्षणभंगुर) है, यह धन-सम्पदा, पद-प्रतिष्ठा सदा बनी ही रहेगी—ऐसा समझना केवल भ्रान्तिमात्र है। इन्द्रियोंके विषय-भोग केवल आरम्भमें ही अर्थात् केवल भोगकालमें ही मधुर लगनेवाले हैं, उनका अन्त अत्यन्त दु:खदायी है। प्राण तिनकेकी नोकपर अटके हुए जलकी बुँदके समान अस्थिर हैं, किस क्षण निकल जायँ; कोई भरोसा नहीं, अहो! एकमात्र धर्माचरण—सत्कर्मानुष्ठान ही ऐसा है, जो मनुष्योंका सनातन एवं सच्चा मित्र है, अतः उसका कभी विरोध (तिरस्कार) नहीं करना चाहिये, अपितु अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक दानधर्मादि सत्कर्मानुष्ठानके अनुपालनमें सतत संलग्न रहना चाहिये। **⊘**>∞ विदेशके लिये पञ्चवर्षीय ग्राहक नहीं बनाये जाते। * कृपया नियम अन्तिम पृष्ठपर देखें। वार्षिक शुल्क * पञ्चवर्षीय शुल्क * भारतमें १५० रु० जय पावक रवि चन्द्र जयित जय । सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥ सजिल्द १७० रु० हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥ विदेशमें — सजिल्द जय जय विश्वरूप भारतमें ७५० रु० US\$25 (Rs. 1250) (Sea Mail) विराट् जगत्पते । गौरीपति रमापते ॥ जय जय जय सजिल्द ८५० रु० US\$40 (Rs. 2000) (Air Mail) . सदस्यता-शुल्क—व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस— २७३००५, गोरखपुर को भेजें। संस्थापक - ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका आदिसम्पादक —नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार सम्पादक —राधेश्याम खेमका, सहसम्पादक—डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित e-mail: Kalyan@gitapress.org © (0551) 2334721 website: www.gitapress.org

काल-विनाशिनि काली

सदाशिव,

हर

जय

जय

हर

जय॥

शंकर।

शंकर॥

राधा-सीता-रुक्मिण

अघ-तम-हर

साम्ब

्दुर्गा, जय मा तारा। जय गणेश जय शुभ-आगारा॥

दुर्गा जय

जय

साम्ब

दुखहर

जय.

जय.

सदाशिव.

सुखकर

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

दुर्गति-नाशिनि

उमा-रमा-ब्रह्माणी

सदाशिव.

शंकर



ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥



वर्ष ८५ गोरखपुर, सौर फाल्गुन, वि० सं० २०६७, श्रीकृष्ण-सं० ५२३६, जनवरी २०११ ई० पूर्ण संख्या १०१०

काशीमें भगवान् शिवका मुक्तिदान

रामेण सदुशो देवो न भूतो न भविष्यति॥×××

卐

卐

卐

Si Si

卐

卐

卐

卐

卐

卐

 फ्रांस अत्राप्त स्वाप्त स्वयं स्वय

卐

卐

卐

卐

卐

पामनामैव मुक्त्यर्थं शवस्य पिथ कीर्त्यते। रामनाम्नः परो मन्त्रो न भूतो न भविष्यति॥
रामचन्द्रजीके समान न कोई देवता हुआ है और न होगा ही।××× इसीलिये काशीमें विश्वनाथ भगवान्
शंकर निरन्तर 'राम'नामका स्वयं जप करते हैं और प्राणियोंकी मुक्तिके लिये उन्हें राममन्त्रका उपदेश

दिया करते हैं। संसाररूपी समुद्रमें डूबे हुए मनुष्यको जो मन्त्र तार देता है, वही तारकमन्त्र राममन्त्र कहलाता है।××× मनुष्योंकी मुक्तिके लिये लोगोंके द्वारा अन्तिम समयमें उनसे बार-बार यही कहा जाता है कि रामका स्मरण करो, रामका स्मरण करो। इसी प्रकार शव-वहन करनेवाले लोगोंके द्वारा मृतप्राणीकी मुक्तिके

த் िलये शवयात्रामें बार-बार रामनामका ही उच्चारण किया जाता है। रामनामसे श्रेष्ठ कोई मन्त्र न आजतक الله fine fuls हैं और टिजरिंग्ड ही ver भारतहा अवडा है। अववाद । MADE WITH LOVE BY Avinash

'दानमहिमा–अङ्क'की विषय–सूची

-संख्या

१६

१०७ १११

११४

११८ ११९

१२०

१२१

१२३

१२४

१२७

१२८

१३०

१३१

अमृतोपदेश [प्रेषक—श्रीरामानन्दप्रसादजी]

दान-प्रसंग [स्वामी श्रीशान्तिप्रसादजी महाराज]

[प्रेषक—श्रीधर्मेन्द्रजी गोयल].....

(स्वामी श्रीशंकरानन्दजी सरस्वती).....

(गोलोकवासी पं० श्रीगयाप्रसादजी महाराज)

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

(आचार्य श्रीविनोबाजी भावे)

४८- दान और दया

४४- दानसे धन एवं मनकी शुद्धि (गोलोकवासी परमभागवत

संत श्रीरामचन्द्र केशव डोंगरेजी महाराज)

४३- सिन्धके संत स्वामी टेऊँरामजी महाराजके

४५- आर्थिक समताका शास्त्रीय उपाय—दान

४६- दान देने-लेनेमें सावधानीकी आवश्यकता

४९- भूदान—संस्कृतिका सर्वोत्तम दर्शन

४७- दानका रहस्य

	4,		
विषय पृष्ठ-	संख्या	विषय पृष्ठ-	सं
१- काशीमें भगवान् शिवका मुक्तिदान	<u> </u>	३०- दानवेन्द्र बलिपर भगवान्की अद्भुत कृपा	
मंगलाशंसा—		(ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) .	
२– आभ्युदयिक अभ्यर्थना	१७	३१- दानका फल	
३- धनान्नदानसूक्त	१८	३२- सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा	
४- दान-सुभाषितावली	१९	[ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश]	
५- दान—एक विहंगम दृष्टि (राधेश्याम खेमका)	२३	[प्रे॰—श्रीरामानन्दजी चौरासिया'श्रीसन्तजी']	
प्रसाद—		३३- दानकी महिमा [कविता]	
६- भगवान् सदाशिवका दानधर्मोपदेश	३९	(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल')	
७- मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा	४२	३४- दानकी रूपरेखा (ब्रह्मलीन स्वामी	
८- भगवान् श्रीकृष्णका दानवचनामृत	88	श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज)	
९- आचार्य बृहस्पतिद्वारा निरूपित दानकी तात्त्विक बातें	8/9	३५- अमृत-फल [श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी अमृतवाणी]	
१०- महर्षि वाल्मीकिद्वारा निरूपित दान-धर्मकी महिमा	40	[प्रेषिका—डॉ० ब्र० गुणीता, विद्यावारिधि, वेदान्ताचार्य]	
११- राजर्षि मनुका दानविधान	५३	३६- पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान	
१२- प्रेमदान [कविता]		(गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी	
१३- महर्षि याज्ञवल्क्यद्वारा निरूपित दानतत्त्व	५६	महाराज) [प्रे०—श्रीश्यामलालजी पाण्डेय]	
१४- महर्षि वेदव्यासद्वारा निरूपित दानका माहात्म्य	40	३७- दान-प्रश्नोत्तरी (साधुवेशमें एक पथिक)	
१५- महात्मा संवर्तकी दानमीमांसा		३८- दान-पुण्य (श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ वीतराग स्वामी	
१६- महामुनि सारस्वतकी दाननिष्ठा	६५	श्रीदयानन्दगिरिजी महाराज)	
१७– राजर्षि रन्तिदेवकी दानशीलता और अतिथिसेवा	६८	३९- दान-धर्म (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीदयानन्दजी सरस्वती,	
१८- पितामह भीष्मकी दानतत्त्वमीमांसा	७०	भारतधर्म महामण्डल)	
१९– धर्मराज युधिष्ठिरद्वारा प्रतिपादित क्षमादानकी महिमा	७५	४०- यज्ञ-दानादिसे गृहस्थजनोंका स्वतः कल्याण हो जाता है	-
२०- आद्य शंकराचार्यजीकी दृष्टिमें दानका स्वरूप	୧୧୧	[ब्रह्मलीन संत स्वामी श्रीचैतन्यप्रकाशानन्दतीर्थजी महाराजवे	5
२१- श्रीरामानुजमतमें दान-प्रतिष्ठा		सदुपदेश] [प्रस्तोता—श्रीत्रिलोकचन्द्रजी सेठ]	
२२- श्रीमध्वाचार्यजीके द्वैतमतमें शारीरिक भजन—दान	८२	४१- सर्बेस दान (स्वामी श्रीप्रज्ञानानन्दजी सरस्वती)	
२३- श्रीवल्लभाचार्यजीका पुष्टिमार्ग और दान-सरणि	८३	४२- ब्रह्मलीन श्रीप्रेमभिक्षुजी महाराजके दान-सम्बन्धी	

24

୧୬

22

८९

९१

२४- श्रीरामानन्दसम्प्रदायमें दानमहिमा

२५- श्रीचैतन्यमहाप्रभुका नामदान

[शास्त्री श्रीकोसलेन्द्रदासजी]

[स्वामी श्रीअजस्नानन्दजी महाराज].....

[श्रीदेवदत्तजी]

[प्रस्तुति—भक्त श्रीरामशरणदासजी].....

शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज)

[प्रेषक—श्रीअनिरुद्धकुमार गोयल]

२६- श्रीरमणमहर्षिका उपदेशदान [डॉ० एम०डी० नायक]

२७- दान—श्रद्धाका प्रतिफलन [श्रीअरविन्दके आलोकमें]

२८- दानसे धनकी शुद्धि होती है [ब्रह्मनिष्ठ संत पूज्यपाद

(अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर जगद्गुरु

श्रीउडियाबाबाजी महाराजके सद्पदेश]

२९- दानसे अनेक जन्मोंतक सुख प्राप्त होता है

[प्रस्तोता—भक्त श्रीरामशरणदासजी]

विषय पृष्ठ-स	ांख्या	विषय पृष्ठ-र	पंख्या
५०- सोनेका दान [एक आख्यान]	१३१	७०- अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति	
५१- सम्मान-दान (नित्यलीलालीन श्रद्धेय		[अन्नदानसे श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं]	
भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३२	(ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी)	१६९
५२- 'दातव्यमिति यद्दानम्' (ब्रह्मलीन श्रीमगनलाल हरिभाईजी		७१- गरीबके दानकी महिमा [प्रेरक-प्रसंग]	१७२
व्यास) [प्रेषक—श्रीरजनीकान्तजी शर्मा]	१३७	दानतत्त्वविमर्श—	
५३- दान-जिज्ञासा [प्रश्नोत्तरी] (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी		७२– दानदर्शनकी मीमांसा	
श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१३८	(एकराट् पं० श्रीश्यामजीतजी दूबे 'आथर्वण')	१७३
५४- सबसे बड़ा दान अभयदान [एक आख्यान]	१३९	७३- दानतत्त्वविमर्श (आचार्य श्रीशशिनाथजी झा)	१७७
५५- शुद्ध धनका दान ही पुण्यदायक होता है		७४- सम्पत्तिको विपत्ति बननेसे बचाता है—दान	
(गोलोकवासी भक्त श्रीरामशरणदासजी)		(श्रीबालकविजी वैरागी)	१८०
[प्रेषक—श्रीशिवकुमारजी गोयल]	१४०	७५-'दानमेकं कलौ युगे' (श्रीकुलदीपजी उप्रेती)	१८२
५६- भगवान् श्रीरामद्वारा विभीषणको अभयदान (साकेतवासी		७६- दान ही साथ जायगा (आचार्य श्रीब्रजबन्धुशरणजी)	१८७
आचार्य श्रीकृपाशंकरजी महाराज 'रामायणी')		७७- दानीको मिलनेवाले प्रतिदानका सूक्ष्म विज्ञान	
[प्रेषिका—श्रीमती मधुरानी ज० अग्रवाल]	१४३	(श्रीअशोकजी जोषी, एम०ए०, बी०एड०)	१८९
५७- दानके अधिष्ठातृ-देवकी स्तुति (श्रीरवीन्द्रनाथजी गुरु)	१४६	७८- दान—आत्मोत्सर्गकी विधि (डॉ० श्रीमहेन्द्रजी मधुकर,	
आशीर्वाद—		एम०ए०, पी-एच०डी०, डी०लिट०)	१९०
५८- सर्वश्रेष्ठ धर्म है दान (अनन्तश्रीविभूषित दक्षिणाम्नायस्थ		७९- अपरिमित है दानकी महिमा	
शृंगेरी-शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य		(डॉ० श्रीराजारामजी गुप्ता)	१९४
स्वामी श्रीभारतीतीर्थजी महाराज)	१४७	८०- त्याग और दान (श्रीओम नमो चतुर्वेदीजी)	१९६
५९- वेदवाणी	१५०	८१- दान—क्यों, कब और किसको?	
६०- 'अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम'		(श्रीदीनानाथजी झुनझुनवाला)	१९९
(अनन्तश्रीविभूषित श्रीद्वारकाशारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु		८२- त्याग [स्वामी रामतीर्थ]	२०१
शंकराचार्य स्वामी श्रीस्वरूपानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१५१	८३- दान स्वर्ग-सोपान है (डॉ० श्रीओ३म् प्रकाशजी द्विवेदी) .	२०२
६१- दानस्वरूपविमर्श		८४- मनुष्यका सबसे बड़ा आभूषण है—दान (आचार्य	
(अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु शंकराचार्य पुरीपीठाधीश्वर		श्रीपौराणिकजी महाराज) [प्रे०—श्रीगोपालजी शर्मा]	२०४
स्वामी श्रीनिश्चलानन्दसरस्वतीजी महाराज)	१५७	८५- दानकी महिमा	
६२- चिरकारी प्रशस्यते	१५८	(श्रीरमेशचन्द्रजी बादल, एम०ए०, बी०एड०, विशारद) .	२०५
६३- शुभाशंसा (अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ कांचीकाम-		८६- मानवका उत्कर्ष-विधायक अमोघ साधन—दान	
कोटिपीठाधीश्वर जगद्गुरु श्रीशंकराचार्यजी महाराज)	१५९	(डॉ० श्रीवेदप्रकाशजी शास्त्री, एम०ए०, पी–एच०डी०,	
६४– काम–क्रोधादिको जीतनेके उपाय	१५९	डी०लिट०, डी०एस-सी०)	२०९
६५- दानमेयोदय (अनन्तश्रीविभूषित ऊर्ध्वाम्नाय श्रीकाशीसुमेरु-		८७- दानका माहात्म्य	
पीठाधीश्वर जगद्गुरु शंकराचार्य स्वामी श्रीचिन्मयानन्द-	-	(डॉ० पुष्पाजी मिश्रा, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२११
सरस्वतीजी महाराज)	१६०	८८- सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है	
६६- श्रीभगवन्निम्बार्काचार्यसिद्धान्तमें वैष्णवी मन्त्रदीक्षादानकी		(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, एम० कॉम०)	२१३
महिमा (अनन्तश्रीविभूषित जगद्गुरु श्रीनिम्बार्काचार्य-		८९- दान देनेसे जीवन शुद्ध और श्रेष्ठ होता है	
पीठाधीश्वर श्रीराधासर्वेश्वरशरणदेवाचार्य श्री 'श्रीजी'		(श्रीशिवरतनजी मोरोलिया, शास्त्री, एम०ए०)	२१६
महाराज)	१६१	९०- दान देनेवालेका धन नष्ट नहीं होता (श्रीप्रेमबहादुरजी	
६७- कलियुगका कल्पवृक्ष—दान		कुलश्रेष्ठ 'बिपिन', बी०एस-सी०,एम०ए०, बी०एड०)	२१७
(महामण्डलेश्वर स्वामी श्रीबजरंगबलीजी ब्रह्मचारी).	१६२	९१- दानका शास्त्रीय स्वरूप	
६८- दान-दर्शन		(आचार्य श्रीबनवारीलालजी चतुर्वेदी, एम०ए०)	२१९
(गीतामनीषी स्वामी श्रीवेदान्तानन्दजी महाराज)	१६५	९२– दानसे कल्याण (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री,	
co (05.4		222

१६८

साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम० ए०) २२२

६९-दान दो [कविता].....

् विषय पृष्ठ-र	पख्या	ावषय पृष्ठ-स	गख्या
९३– सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दान करो			२७३
(श्रीभगवतप्रसादजी विश्वकर्मा)	२२४	१२०- क्षमा–दानका प्रेरणास्पद प्रसंग	
९४- दान-महिमा (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री,		(श्रीमती चेतनाजी गुप्ता)	२७८
वरिष्ठ धर्माधिकारी)	२२५	१२१- सत्कर्ममें श्रमदानका अद्भुत फल (ला०बि०मि०)	२७९
९५- दान सच्चा मित्र है (डॉ० श्रीशिव ओमजी अम्बर)	२२६	१२२- और्ध्वदैहिक दानका महत्त्व	
९६- शास्त्रोंके सन्दर्भमें दान-ग्रहीताकी पात्रता		[राजा बभुवाहनका आख्यान]	२८०
(श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०, बी०एड०)	२२७	१२३- भक्तका अद्भुत अवदान [भक्त गयासुरकी कथा]	२८१
९७- दान—दिव्य अनुष्ठान		१२४– उत्तम दानकी महत्ता त्यागमें है, न कि संख्यामें	
(श्रीमती मृदुला त्रिवेदी एवं श्री टी॰पी॰त्रिवेदी)	२२९	[सत्तूदानकी कथा] (सु० सिं०)	२८२
९८- दान-दोहावली [कविता] (श्रीसुरेशजी, साहित्यवाचस्पति)	२३४	१२५- सर्वस्व-दान [महाराज हर्षवर्धनको कथा] (श्री 'चक्र')	२८३
९९- प्रतिग्रह-विचार	२३५	१२६- दान एवं नीतिपूर्वक कमाया गया धन [दो आख्यान]	
१००- पंचमहायज्ञों तथा बलिवैश्वदेवमें दानका स्वरूप		(श्रीनरेन्द्रकुमारजी शर्मा, एम० ए०, बी० एड०)	२८८
(सुश्री रजनीजी शर्मा)	२३७	१२७- दान देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेका दुष्परिणाम	
१०१- आपके हाथों दानकी परम्परा चलती रहे		[सियार और वानरकी कथा]	२९०
(डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम०ए०, पी-एच०डी०)	२३८	१२८- दानवीर राजर्षियोंके आख्यान और दानकी गाथाएँ	२९१
१०२- पाणिनिके 'चतुर्थी सम्प्रदाने' सूत्रका रहस्य		१२९- ज्ञान-दान	२९९
(श्रीउदयनाथजी अग्निहोत्री)	२४०	१३०- आदर्श दानकी महत्ता [कहानी]	
दानधर्मके आदर्श चरित एवं प्रेरक-प्रसंग—		(श्रीगणात्रा दयालजी लक्ष्मीदास)	३०२
१०३– भगवान्द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग		१३१- जीमूतवाहनका आत्मदान (श्री 'चक्र')	३०५
(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)	२४१	१३२- दानके कुछ प्रेरक-प्रसंग	३०८
१०४- दानके प्रेरक प्रसंग [प्रेषिका—सुश्री उमा ठाकुर]	२४५	१३३- आत्मदान [मेघवाहनकी कथा]	३११
१०५- दानको साधना [प्रेषक—श्रीजगदीशचन्द्रजी सोनी]	२४६	१३४- गोदानसे मनचाहा वरदान मिलता है	
१०६– दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान		(श्रीश्रीनिवासजी शर्मा शास्त्री)	३१२
(श्रीशिवकुमारजी गोयल)	२४७	१३५- चन्दरी बूआका आदर्श दान (श्रीरामेश्वरजी टांटिया).	३१५
१०७- दानके कुछ प्रेरक प्रसंग		१३६– युद्धभूमिमें अभयदानकी भारतीय परम्परा	
(श्रीराहुलजी कुमावत, एम०ए०, बी०कॉम०)	२५०	(श्रीवीरेन्द्रकुमारजी गौड़, पूर्वकैप्टन एवं महानिरीक्षक)	३१७
१०८- दानके प्रेरणास्रोत (डॉ० श्रीरमेशचन्द्रजी चवरे)	२५१	१३७- सर्वस्वदान—शीशदानकी अनूठी दिव्य परम्परा	
१०९- 'जीवनदान' की अमर कहानी (डॉ० श्रीविद्यानन्दजी		(श्रीशिवकुमारजी गोयल)	३१९
'ब्रह्मचारी', पी-एच॰डी॰, विद्यावाचस्पति, डी॰लिट॰)	२५३	१३८– 'दान परम विज्ञान'[कविता] (श्रीभानुदत्तजी त्रिपाठी 'मधुरेश')	३२८
११०- महादानी दैत्यराज बलि	२५७	विविध दानोंका स्वरूप—	
१११ - दानके तीन आख्यान (पं० श्रीविष्णुदत्त रामचन्द्रजी दूबे)	२५९	१३९- भगवान् शिवका मुक्तिदान	
११२- दानवीर दधीचि (डॉ० श्रीहरिनन्दनजी पाण्डेय)	२६२	(आचार्य डॉ० श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य,	
११३- दानवीर कर्ण [एकांकी नाटक]		विद्यावारिधि, एम०ए०, पी-एच०डी०)	३२९
(श्रीशिवशंकरजी वाशिष्ठ)	२६४	१४०- हृदय-दान (श्रीरामनाथजी 'सुमन')	३३२
११४- मयूरध्वजका बलिदान	२६६	१४१- राजा बलिका सर्वस्वदान	
११५– शरणागतरक्षक महाराज शिबि	२६७	(डॉ० श्रीरामेश्वरप्रसादजी गुप्त)	338
११६- दैत्यराज विरोचन	२६९	१४२- विद्यादानकी महिमा और उसके विविध प्रकार	
११७- महादानी महाराज रघु	२७०	(डॉ० श्रीनरेशजी झा, शास्त्रचूड़ामणि)	३३६
११८- श्रीकृष्णभक्त कवि रहीमजीकी दानशीलता (श्रीजगदीश-		१४३- दानकी महिमा [कविता]	
प्रसादजी त्रिवेदी, एम०ए० (हिन्दी), बी०एड०)	२७१	(श्रीशरदजी अग्रवाल, एम०ए०)	३३७
११९- कठोपनिषद्के नचिकेतोपाख्यानमें प्रतिपादित दानका		१४४– पुराणग्रन्थोंके दानकी महिमा	

(श्रीदशरथजी दीक्षित, एम०ए०)

३३८

स्वरूप (डॉ० श्रीश्यामसनेहीलालजी शर्मा, एम०ए०,

विषय पृष्ठ-	-संख्या	विषय पृष्ठ-	संख्या
		- १७४- सक्तुदान (यज्ञ) (आचार्य श्रीआद्याचरणजी झा)	४०५
(श्रीचैतन्यकुमारजी, बी०एस-सी०, एम०बी०ए०)	. ३४२	१७५ – महापुरुष वल्लभाचार्यकी यात्रामें कालपुरुषदानकी घटना	
१४६- दानके विविध आयाम (श्रीअशोकजी चितलांगिया)	. ३४३	(नित्यलीलास्थ श्रीकृष्णप्रियाजी 'बेटीजी')	४०६
१४७- क्षमादान (साध्वी निर्मलाजी)	. ३४७	१७६ – कालपुरुषदानकी विधि	४०७
१४८– गोदानका माहात्म्य (डॉ० श्रीअरुणकुमारजी राय,		१७७- दानकी महिमा और रक्तदान	
एम०ए०, पी-एच०डी०)	. ३४९	(डॉ॰ मधुजी पोद्दार, फिजीशियन)	४०७
१४९- अन्नदान और जलदानके समान कोई दान नहीं		१७८- आधुनिक दान (श्रीभानुशंकरजी मेहता)	४१०
(पं० श्रीप्रेमाचार्यजी शास्त्री, शास्त्रार्थपंचानन)	. ३५१	१७९- आत्मदानके आदर्श (डॉ० श्रीअशोकजी पण्ड्या)	४१२
१५०- विविध दान (श्रीरामजीलाल जोशी)	. ३५३	१८०– राष्ट्रके लिये बलिदान सर्वोपरि दान है	
१५१- आरोग्यदान		(डॉ० श्रीश्यामजी शर्मा'वाशिष्ठ', एम०ए०, पी-एच०डी०,	
(वैद्य श्रीगोपीनाथजी पारीक 'गोपेश', भिषगाचार्य)	. ३५६	शास्त्री, काव्यतीर्थ)	४१३
१५२- कन्यादानं महादानम् (डॉ० श्रीउदयनाथजी झा 'अशोव	क <i>'</i> ,	१८१-'बड़ो दान सम्मान'(पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र,	
एम०ए०, साहित्यरत्न, डी०लिट०)	. ३५८	एम०ए०, एम०एड०)	४१४
१५३– कन्यादान (डॉ० श्रीगोविन्दजी सप्तर्षि)	. ३५९	१८२- भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोपियोंको दिया गया प्रेमदान	
१५४- स्वर्णदान—महादान (श्रीश्रीकृष्णजी मुदगिल)	. ३६०	[अंकन भरि सबकौं उर लाऊँ]	
१५५- प्राणदान (डॉ० श्रीरामकृष्णजी सराफ)	. ३६२	(श्रीअर्जुनलालजी बंसल)	४१६
१५६- 'नास्ति अहिंसासमं दानम्' (श्रीअमितकुमारजी मिश्र)	३६४	१८३- गुड़िया और भिखारी [प्रेरक प्रसंग]	
१५७- बलिदान-रहस्य (स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)	. ३६६	(श्रीरामबिहारीजी टण्डन) [प्रे०—सुश्री सुधाजी टण्डन]	४१८
१५८- सेवारूपी दान (श्रीगोपालदास वल्लभदासजी नीमा,		सत्साहित्यमें दान-निरूपण—	
बी० एस-सी०, एल-एल० बी०)	. ३६७	१८४- वैदिक परम्परामें दानका महत्त्व	
१५९- 'अभौतिक दान' की महानता और वर्तमानमें बढ़ती		(स्वामी श्रीविवेकानन्दजी सरस्वती, कुलाध्यक्ष)	४१९
उसकी प्रासंगिकता (श्रीप्रशान्तजी अग्रवाल, एम०ए०,		१८५- वेद-पुराणोंमें अन्न-जलदानका माहात्म्य	
बी०एड०)		(श्रीमुकुन्दपतिजी त्रिपाठी, रत्नमालीय, एम०ए० द्वय,	
१६०- सोलह महादान	. ३७०	बी०एड०, पी-एच०डी०)	४२१
१६१-'उनका सब दिन कल्याण है'[कविता]		१८६- दान-दोहावली (श्रीयुगलिकशोरजी शर्मा)	४२४
(श्रीभागवताचार्यजी ' आनन्दलहरीमहाराज ')	. ३७२	१८७- उपनिषदोंमें दानका स्वरूप	
१६२– और्ध्वदैहिक दान	. ३७३	(श्रीबद्रीनारायणसिंहजी, एम० ए०)	४२५
१६३- पितरोंके लिये पिण्डदान (श्राद्ध) (श्रीमती रश्मि शुक्ला)	. ३७४	१८८- मत्स्यपुराणमें वर्णित विविध दान	
१६४- पिण्डदान	. ३७६	(श्रीमहेशप्रसादजी पाठक, एम०एस-सी०)	४२६
१६५- छत्र और उपानहकी उत्पत्ति–कथा तथा		१८९- कूर्मपुराणमें वर्णित दानका स्वरूप	
इनके दानकी महिमा	. ३७८	(श्रीरणवीरसिंहजी कुशवाहा)	४२९
१६६ – तिलदान	. ३८०	१९०– पुराणेतिहासमें गोदानकी महिमा (श्रीहंसराजजी डावर)	४३०
१६७- नवग्रहोंके निमित्त दान		१९१- आनन्दरामायणमें वर्णित श्रीरामकी दानशीलता	
(श्रीश्रीनारायणजी शर्मा, ज्योतिषाचार्य)		(आचार्य श्रीसुदर्शनजी मिश्र, एम॰ ए॰)	
१६८- बारह महीनोंके दान	. ३८६	१९२- गीतामें त्रिविध दान (पं० श्रीवासुदेवशरणजी उपाध्याय,	
१६९- संक्रान्ति एवं ऋतुओंके दान		व्याकरण-साहित्य-वेदान्ताचार्य)	४३५
(श्रीश्रीरामशर्माजी, ज्योतिषाचार्य)	. ३९१	१९३– धर्मशास्त्रीय निबन्धग्रन्थोंका दानसाहित्य	
१७०- नक्षत्रोंमें विभिन्न वस्तुओंका दान	. ३९३	(श्रीसीतारामजी शर्मा)	४३८
१७१- कार्तिकमासका दान—दीपदान		१९४- 'मानस' में दान-महिमा (श्रीरामसनेहीजी साहू)	४४०
(पं० श्रीघनश्यामजी अग्निहोत्री)		१९५- स्वरविज्ञान और दान (श्रीपवनजी अग्रवाल)	
१७२- विविध देय-द्रव्योंके मन्त्र Hinduism Discord Server https://dsc १७३- भगवान् सूर्य और सूर्याध्यदान	:.gg/dh	१९६- वीरशैवधर्ममें दान-महिमा (श्रीष०ब्र०डॉ० सुज्ञानदेव arma MADE WITH LOVE BY Avinas शिवाचार्यजी स्वामी, शिवाद्वैत साहित्यभूषण)	sh/Ş/þ

[१५]				
विषय पृष्ठ-र	पंख्या	विषय पृष्ठ-संर	<u>ख्या</u>	
		(डॉ० श्रीओंकारनारायणसिंहजी)	४७०	
् (महामहोपाध्याय डॉ० श्रीवागीशजी शास्त्री)	४४४	२१०-प्राचीन अभिलेखोंमें दान-निरूपण		
१९८-आयुर्वेदशास्त्र और आरोग्यदान	४४६	(डॉ० श्रीराकेशकुमारजी सिन्हा 'रवि')	१७३	
१९९-नीतिमंजरीमें दानकी प्रशस्ति		२११-विदेशोंकी दान-महिमाके कुछ दृश्य		
(डॉ० श्रीरूपनारायणजी पाण्डेय)	88C	. 0	४७५	
२००–नीतिग्रन्थोंमें दानका माहात्म्य		२१२-सर्वोत्तम धन	४७६	
(डॉ० श्रीवागीशजी'दिनकर', एम०ए०, पी–एच०डी०)	४५१	कल्याण-प्राप्तिका सहज साधन—दान		
२०१-बृहस्पतिसूरिकी 'कृत्यकौमुदी' का दानप्रकरण		२१३–आध्यात्मिक उन्नतिमें दानकी साधनरूपता		
(डॉ० श्रीश्रीनिवासजी आचार्य)	४५३	(डॉ॰ पुष्पारानीजी गर्ग)	800	
२०२–ज्ञानेश्वरीमें दानका प्रतिपादन (डॉ० श्रीभीमाशंकरजी		२१४-ज्ञानदान—सर्वोत्तम दान (डॉ० श्रीयमुनाप्रसादजी)	४८०	
देशपांडे एम०ए०, पी-एच०डी०, एल-एल०बी०)	४५५	२१५-प्रकृत धर्म—दान (शास्त्रोपासक आचार्य		
२०३–सभी धर्मोंमें दानसे कल्याण (श्रीरामपदारथसिंहजी)	४५७	ः डॉ० श्रीचन्द्रभूषणजी मिश्र)	४८३	
२०४-जैनाचारमें दान-प्रवृत्ति (डॉ० श्रीविमलचन्द्रजी जैन,		२१६-दान—धर्ममय जीवनका दिव्य पक्ष		
एम०ए०, एल-एल०बी०, पी-एच०डी०)	४५९	(श्रीराजेन्द्रप्रसादजी द्विवेदी)	४८६	
२०५-मसीही धर्ममें दानका स्वरूप (डॉ० ए० बी० शिवाजी)	४६४	२१७-धर्मका प्रशस्त द्वार—दान (डॉ० श्रीराजीवजी प्रचण्डिया,		
२०६-इस्लाममें दानका विधान (मो० सलीम खाँ फरीद)			४८९	
[आदाबे जिन्दगी: मौ० मो० यूसुफ इस्लाही]	४६७		४९०	
२०७-इस्लाममें दान—जकात (सुश्री शबीना परवीन)	४६८	२१९-दान—एक महान् मानवधर्म		
२०८-महाराजा विक्रमादित्यको दान-शैली		. ~ 0 0	४९३	
(श्रीइन्द्रदेवप्रसादिसंहजी)	४६९		४९४	
२०९-राजस्थानके भक्तिसाहित्यमें दानकी महिमा			४९५	
(्रंगीन 	- सूची चित्र)		
विषय पृष्ठ-र	पंख्या	विषय पृष्ठ-संर	<u>ड्या</u>	
१- प्रजापति ब्रह्माजीद्वारा 'द' अक्षरका दानआवर	ण-पृष्ठ	६– माता अन्नपूर्णाका भिक्षादान	ų	
२- भगवान् श्रीकृष्णद्वारा गोदान	१	७- त्रिविध दान	ξ	
३- महर्षि दधीचिका अस्थिदान	२	८- श्रीरामका महाराज दशरथके निमित्त		
४- महाराज रन्तिदेवका आदर्श दान	3	पिण्डदान करना	9	
५- दानवीर राजा बलिकी यज्ञशालामें भगवान् वामन	४	९- भगवान् शिवद्वारा काशीमें मुक्तिदान	6	
	(सादे	चित्र)		
१- पार्वतीजीको दानधर्मका उपदेश करते भगवान् शिव	39	७- महर्षि याज्ञवल्क्य और महाराज जनक	५६	
२- गोदान प्राप्त करनेके लिये डंडा फेंकते हुए त्रिजट	४३	८- धनका सदुपयोग	49	
३- धर्मराज युधिष्ठिरको दानकी महत्ता बताते हुए		९- यज्ञ करते हुए महाराज मरुत्त एवं महर्षि संवर्त	६३	
भगवान् श्रीकृष्ण	४५	१०- दान देते हुए महाराज रन्तिदेव	६८	
४- इन्द्रको भूमिदानके विषयमें उपदेश देते देवगुरु		११- शर-शय्यापर पितामह भीष्म	७१	
बृहस्पति	እጾ	१२- महर्षि जमदग्नि एवं रेणुकाको छत्र तथा उपानह देते		
५- ब्रह्माजीका वाल्मीकिजीको वरदान	40	ब्राह्मणरूप सूर्य	७४	
६– ब्रह्माजीका मनुको प्रजारक्षणका आदेश	५३	१३- क्षमादानी महाराज युधिष्ठिर	૭५	

विषय

पृष्ठ-संख्या

पृष्ठ-संख्या

विषय

४५- यमराज एवं निचकेता.....

४६- लंकामें विभीषणजीका राजतिलक करते लक्ष्मणजी.....

४७- गयासुरपर भगवान् गदाधरकी कृपा.....

४८- धर्मराज युधिष्ठिरकी यज्ञशालामें नेवलेका प्रवेश

४९- सर्वस्वदानी सम्राट् हर्षवर्धनका बहन राज्यश्रीसे चिथड़ा

५०- पूर्वजन्मके विषयमें चर्चा करते वानर एवं सियार.......

१४-	आद्य श्रीशंकराचार्य	છછ	५१- ब्राह्मणोंको दान देते राजा सुहोत्र	२९२
१५-	आचार्य श्रीरामानुज	८०	५२- राजा शिबिके यज्ञमें भोजन करते लाखों ब्राह्मण	२९३
	आचार्य श्रीमध्वाचार्य	८२	५३– मान्धाताको अपनी अमृतमयी अँगुलीका पान कराते	
१७-	आचार्य श्रीवल्लभाचार्य	८३	इन्द्र	२९४
१८-	आचार्य श्रीरामानन्द	८५	५४- विविध वस्तुओंका दान करते राजा अम्बरीष	२९५
१९-	श्रीचैतन्यमहाप्रभु	୯୬	५५- अपने पुत्रोंसहित गायों, अश्वों तथा गजोंका दान	
२०-	श्रीरमणमहर्षि	८९	करते हुए महाराज शशबिन्दु	२९६
२१-	श्रीउड़ियाबाबाजी	९१	५६- सिंह आदि जन्तुओंका दमन करते बालक भरत	२९६
२ २-	इन्द्रासनपर बैठकर दान करता हुआ जुआरी	९५	५७- ब्राह्मणोंको सुवर्णके हाथी दान करते हुए आदिराज	
२३ -	स्वामी श्रीटेऊँरामजी	१२१	पृथु	२९७
2 &-	गदहेको जल पिलाते एकनाथजी महाराज	१२८	५८- तोपको नलीमें घुसता जापानी तोपची	२०८
२५-	विराटनरेशसे अपने अपमानकी बात कहती महारानी		५९- बालक हकीकतरायका धर्मके लिये प्राणदान	३०९
	द्रौपदी	१३३	६०- बच्चोंका समुद्रके यात्रियोंको मार्ग दिखाना	३१०
२६-	विभीषणका राजतिलक करते भगवान् श्रीराम	१४३	६१- गौओंसे शरण मॉॅंगतीं माता लक्ष्मी	३१४
२७-	कौत्सको दान देते महाराज रघु	१४९	६२- चन्दरी बूआका कुआँ बनानेके लिये धनदान	३१६
२८-	महाराज दशरथका शनिपर बाण–संधान	१५२	६३- मेवाड़के रणबाँकुरे गोरा-बादल युद्ध करते हुए	३२०
२९-	लक्ष्मीजीसहित श्रीविष्णु और सनकादि	१७२	६४- वीरांगना रानी दुर्गावती	३२०
₹0-	यक्षके प्रश्नोंका उत्तर देते महाराज युधिष्ठिर	१७५	६५- गुरु तेगबहादुरका धर्मरक्षार्थ शीशदान	३२२
३१-	महाराज युधिष्ठिरको दानका उपदेश देते भगवान्		६६- गुरु गोविन्दसिंहजीके दो पुत्रोंका बलिदान	३२३
	श्रीकृष्ण	१८२	६७- गोभक्त मंगल पाण्डे	३२३
37-	विप्ररूपधारी इन्द्रको कवच-कुण्डल दान करते कर्ण	१९०	६८- सरदार ऊधमसिंह	३२७
33-	महाराज जानश्रुति और रैक्व	२००	६९-भगवान् शंकर एवं भगवती पार्वती	३३१
	दान देते हुए महाराज अम्बरीष	२०२	७०-ब्राह्मणको पुराणका दान	३३८
३५-	सुदामाके तण्डुल खाते भगवान् श्रीकृष्ण	२४४	७१-पुराणग्रन्थोंका दान	३३९
	दानके महत्त्वकी चर्चा करते राजकवि एवं राजा भोज	२४५	७२-युधिष्ठिरको दानकी महिमा बताते भगवान् श्रीकृष्ण	३४२
	बलिका सर्वस्वदान	२५८	७३–महर्षि भृगुद्वारा क्षमाको परीक्षा	38८
	भक्त मनकोजी बोधलापर भगवान्की कृपा	२५९	७४–अश्वत्थामाको महारानी द्रौपदीद्वारा क्षमादान	38८
	भगवान् श्रीकृष्ण एवं सत्यभामा	२६०	७५-जटायुपर भगवान्का अनुग्रह	३६४
	अस्थिदानके लिये महर्षि दधीचिसे देवताओंकी प्रार्थना	२६३	७६-महर्षि जमदग्निका सूर्यपर क्रुद्ध होना	३७८
	बलिदानी महाराज मयूरध्वज	२६७	७७-दीपदान	३९६
	बाजरूप इन्द्रको अपना शरीर अर्पित करते राजा शिबि	२६८	७८-सूर्यार्घ्यदान	४००
	ब्राह्मणरूप इन्द्रको अपना शीश देते दैत्यराज विरोचन	२६९	७९–सूर्यनमस्कार	४०६
88-	कौत्सका महाराज रघुद्वारा स्वागत	२७०	८०-भगवान् श्रीकृष्णका वेणुदान	४१६

२७५

२७८

२८१

२८२

264

२९०

८१-भगवान् श्रीकृष्ण और गोपियाँ.....

८३-गुरु, लिंग एवं जंगमोंका अर्चन

८४-राजा धर्मवर्मा एवं देवर्षि नारदजी.....

८५-ब्रह्माजीद्वारा देवताओं, राक्षसों एवं मनुष्योंको 'द'

विष्णु

अक्षरका दान

८२-गरुड्जीको गोदानका महत्त्व बताते हुए भगवान्

४१७

४३०

४८४

४८६

दान—एक विहंगम दृष्टि

सफल जीवन जीनेके लिये दानकी अनिवार्यता

सफल जीवन क्या है? जीवन सफल उसीका है,

जो मनुष्य-जीवन प्राप्तकर अपना कल्याण कर ले।

भौतिक दृष्टिसे तो जीवनमें सांसारिक सुख और समृद्धिकी

प्राप्तिको ही हम अपना कल्याण मानते हैं, परंतु वास्तविक

कल्याण है-सदा-सर्वदाके लिये जन्म-मरणके बन्धनसे

मुक्त होना अर्थात् भगवत्प्राप्ति। अपने शास्त्रोंने तथा अपने

पूर्वज ऋषि-महर्षियोंने सभी युगोंमें इसका उपाय बताया

है। चारों युगोंमें अलग-अलग चार बातोंकी विशेषता है।

सफल मानव-जीवनके लक्ष्यकी प्राप्तिके लिये मानव-

धर्मशास्त्रके उद्भावक राजर्षि मनुने चारों युगोंके चार साधन

बताये हैं-

तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते।

द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कलौ युगे॥ सत्ययुगमें तप, त्रेतामें ज्ञान, द्वापरमें यज्ञ और

कलियुगमें एकमात्र दान मनुष्यके कल्याणका साधन है। गोस्वामी तुलसीदासजीने भी लिखा है—

प्रगट चारि पद धर्म के किल महुँ एक प्रधान।

जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ गोस्वामीजीका यह वचन तैत्तिरीयोपनिषद्के निम्न प्रसिद्ध वचनोंपर ही आधृत है-

'श्रद्धया देयम्। अश्रद्धयादेयम्। श्रिया देयम्।

ह्रिया देयम्। भिया देयम्। संविदा देयम्।' अर्थात् दान श्रद्धापूर्वक करना चाहिये, बिना श्रद्धाके

करना उचित नहीं (श्रद्धया देयम्। अश्रद्धया अदेयम्), अपनी सामर्थ्यके अनुसार उदारतापूर्वक देना चाहिये

(श्रिया देयम्), विनम्रतापूर्वक देना चाहिये (हिया देयम्), दान नहीं करूँगा तो परलोकमें नहीं मिलेगा-इस भयसे

देना चाहिये अथवा भगवान्ने मुझे देनेयोग्य बनाया है, पर दूसरोंको न देनेपर भगवान्को क्या मुँह दिखाऊँगा-इस

एवं उदारतापूर्वक नि:स्वार्थ भावसे देना चाहिये (संविदा

भयसे देना चाहिये (भिया देयम्), प्रमादसे, भयसे या उपेक्षापूर्वक न देकर ज्ञानपूर्वक, विधिपूर्वक, आदरपूर्वक

देयम्), चाहे जैसे भी दो, किंतु देना चाहिये। मानवजातिके

देवलोकका सुख माना गया है, अत: देवगण कभी वृद्ध

न होकर सदा इन्द्रिय-भोग भोगनेमें लगे रहते हैं, उनकी इस अवस्थापर विचारकर प्रजापितने देवताओंको 'द' के

द्वारा दमन-इन्द्रियदमनका उपदेश दिया। ब्रह्माके इस उपदेशसे देवगण अपनेको कृतकृत्य मानकर उन्हें प्रणामकर

वहाँसे चले गये। असुर स्वभावसे ही हिंसावृत्तिवाले होते हैं, क्रोध और

हिंसा इनका नित्यका व्यापार है, अतएव प्रजापितने उन्हें

इस दुष्कर्मसे छुड़ानेके लिये—'द' के द्वारा जीवमात्रपर दया करनेका उपदेश किया। असुरगण ब्रह्माकी इस आज्ञाको शिरोधार्यकर वहाँसे चले गये।

मनुष्य कर्मयोगी होनेके कारण सदा लोभवश कर्म करने और धनोपार्जनमें ही लगे रहते हैं। इसलिये प्रजापितने लोभी मनुष्योंको 'द' के द्वारा उनके कल्याणके

आज्ञाको स्वीकारकर सफलमनोरथ होकर उन्हें प्रणामकर वहाँसे चले गये। अतः मानवको अपने अभ्युदयके लिये दान अवश्य करना चाहिये।

'विभवो दानशक्तिश्च महतां तपसां फलम्'

उदारता—ये दोनों महान् तपके ही फल हैं। विभव होना

तो सामान्य बात है। यह तो कहीं भी हो सकता है, पर

उस विभवको दूसरोंके लिये देना-यह मनकी उदारतापर ही निर्भर करता है, यही है दान-शक्ति, जो जन्म-जन्मान्तरके पुण्यसे ही प्राप्त होती है।

लिये दान परमावश्यक है। दानके बिना मानवकी उन्नति अवरुद्ध हो जाती है।

इस प्रसंगमें बृहदारण्यकोपनिषद्की एक कथा है-

एक बार देवता, मनुष्य और असुर तीनोंकी उन्नति

अवरुद्ध हो गयी। अत: वे सब पितामह प्रजापित ब्रह्माजीके

पास गये और अपना दु:ख दुर करनेके लिये उनकी प्रार्थना

करने लगे। प्रजापति ब्रह्माने तीनोंको मात्र एक अक्षरका

उपदेश दिया—'द'। स्वर्गमें भोगोंके बाहुल्यसे भोग ही

लिये दान करनेका उपदेश दिया। मनुष्यगण भी प्रजापतिकी

विभव और दान देनेकी सामर्थ्य अर्थात् मानसिक

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्* िदानमहिमा-महाराज युधिष्ठिरके समयकी एक घटना है-स्थान—दान किसी शुभ स्थानपर अर्थात् काशी, उद्दालक नामके एक ऋषि थे। अकस्मात् उनके पिताका कुरुक्षेत्र, अयोध्या, मथुरा, द्वारका, जगन्नाथपुरी, बदरीनारायण, देहान्त हो गया। मुनिने अपने पिताकी अन्त्येष्टि चन्दनकी गंगोत्री, यमुनोत्री, केदारनाथ, हरिद्वार, प्रयाग, पुष्कर आदि लकड़ीकी चितापर करनेका विचार किया, पर चन्दनकी तीर्थींमें; गंगागर्भ, गंगातट, मन्दिर, गोशाला, पाठशाला, लकड़ी उनके पास तो थी नहीं। वे धर्मराज युधिष्ठिरके एकान्तस्थल अथवा सुविधानुसार अपने घर आदि कहीं भी पास पहुँचे और उनसे चन्दनकी लकडीकी याचना की। पवित्र स्थलपर करना चाहिये। धर्मराजके पास चन्दन-काष्ठकी तो कमी नहीं थी, परंतु काल-शुभ कालमें अर्थात् अच्छे मुहूर्तमें दान अनवरत वर्षा होनेके कारण सम्पूर्ण काष्ठ भीग चुका देना चाहिये। वैसे तो दान मनमें उत्साह होनेपर तत्क्षण था। गीली लकड़ीसे दाह-संस्कार नहीं हो सकता था, करना चाहिये, कारण जीवनका कुछ पता नहीं कि वह अतः उन्हें वहाँसे निराश लौटना पड़ा। इसके अनन्तर वे कब समाप्त हो जाय, परंतु पुण्यकी दृष्टिसे शास्त्रोंने इसी कार्यके निमित्त राजा कर्णके पास पहुँचे। राजा कुछ विशिष्ट काल भी निर्धारित कर रखे हैं। शास्त्रोंके कर्णके पास भी ठीक वही परिस्थिति थी, अनवरत अनुसार अमावस्यामें दानका फल सौ गुना अधिक, वर्षाके कारण सम्पूर्ण काष्ठ गीले हो चुके थे, परंतु उससे सौ गुना दिनक्षय अर्थात् तिथिक्षय होनेपर, उससे मुनिको पितृदाहके लिये चन्दनकी सूखी लकड़ीकी सौ गुना मेष आदि संक्रान्तियोंमें, उससे सौ गुना विषुव आवश्यकता थी। कर्णने तत्काल यह निर्णय लिया कि (समान दिन-रात्रिवाली तुला-मेषकी संक्रान्तियों)-में, उससे उनका राजसिंहासन चन्दनकी लकड़ीसे बना हुआ है, सौ गुना युगादि तिथियोंमें (कार्तिक शुक्लपक्षकी अक्षय जो एकदम सूखा है, अत: उन्होंने यह आदेश दिया नवमीमें सत्ययुग, वैशाख शुक्लपक्षकी अक्षय तृतीयामें कि चन्दनसे बने मेरे सिंहासनको तुरन्त खोल दिया जाय त्रेता, माघकी मौनी अमावस्यामें द्वापर और भाद्रमासके तथा इसको काटकर चिताके लिये इसकी लकड़ी कृष्णपक्षकी त्रयोदशीमें कलियुगका आरम्भ हुआ—ये मुनि उद्दालकको दे दी जाय। इस प्रकार उन मुनि युगादि तिथियाँ कहलाती हैं, इनमें दानका फल अक्षय उद्दालकके पिताका दाह-संस्कार चन्दनकी चितापर सम्भव है), उससे सौ गुना सूर्यके दक्षिणायन और उत्तरायण सका। चन्दनके काष्ठका सिंहासन महाराज होनेपर अर्थात् अयन तिथियोंमें, उससे सौ गुना चन्द्रग्रहण युधिष्ठिरके पास भी था, पर यह सामयिक ज्ञान— और सूर्यग्रहण कालमें और उससे सौ गुना व्यतिपातयोगमें मौकेकी सूझ और मनकी उदारता इस रूपमें उन्हें प्राप्त दानका अधिक फल है। यद्यपि पुण्यकी दृष्टिसे शास्त्रने न हुई, जिसके कारण वे इस दानसे वंचित रह गये यह व्यवस्था प्रदान की है, परंतु कुछ ऐसे दान हैं, और यह श्रेय कर्णको ही प्राप्त हो सका। इसीलिये कर्ण जिनमें कालकी अथवा मुहूर्तकी प्रतीक्षा नहीं की जा दानवीर कहलाये। सकती। यथा-मृत्युके समयका दान-मृत्यु आनेपर दानके लिये स्थान, काल तत्काल अन्तिम समयके दान (दसमहादान, अष्टमहादान, एवं पात्रका विचार पंचधेनु - ऋणापनोद, पापापनोद, उत्क्रान्तिधेनु, वैतरणीधेनु शास्त्रोंमें दानके लिये स्थान, काल और पात्रका तथा मोक्षधेनु) करनेकी विधि है। इसी प्रकार मृत्युके उपरान्त पिण्डदान तथा शय्या आदिका दान भी समयपर विस्तृत विचार किया गया है-ही करना होता है। गीतामें भी भगवान्ने कहा है-दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। अन्नदान तथा जलदानकी भी कोई समय-सीमा नहीं देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ है। किसी भी समय आवश्यकतानुसार याचक व्याक्तक Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sha रातिहरू

* दान—एक विहंगम दृष्टि * अङ्क] पात्र-शास्त्रोंमें देश और कालकी तरह पात्रका भी दान-धर्मके चार विभाग व्यासभगवान्ने दान-धर्मको चार भागोंमें विभक्त विचार किया गया है। सत्पात्रको दिया गया दान ही सफल और सात्त्विक दान है। महर्षि याज्ञवल्क्यका मत है कि किया है— दानके लिये अन्य वर्णींकी अपेक्षा ब्राह्मण श्रेष्ठ हैं। उनमें (१) नित्य दान—प्रत्येक व्यक्तिको अपने भी जो कर्मनिष्ठ ब्राह्मण हैं वे श्रेष्ठतर हैं, उन कर्मनिष्ठोंमें सामर्थ्यानुसार कर्तव्यबुद्धिसे नित्य कुछ-न-कुछ दान करना भी विद्या तथा तपस्यासे युक्त ब्रह्मतत्त्ववेत्ता श्रेष्ठतम हैं। जो चाहिये। जो मनुष्य श्रोत्रिय, कुलीन, विनयी, तपस्वी, ब्राह्मण विद्वान्, धर्मनिष्ठ, तपस्वी, सत्यवादी, संयमी, सदाचारी तथा धनहीन ब्राह्मणोंको प्रतिदिन कुछ दान करता ध्यानी और जितेन्द्रिय हों; मुख्यरूपसे वे ही दानके लिये है, वह परमपदको प्राप्त करता है। असहाय एवं गरीबको सत्पात्र हैं, परंतु इसके साथ ही उत्तरोत्तर सद्गुणोंसे युक्त, भी नित्यप्रति सहायतारूपमें दान करना कल्याणकारी है। सच्चरित्र, अभावग्रस्त जो उपलब्ध हों, उन ब्राह्मणोंको शास्त्रोंमें प्रत्येक गृहस्थके लिये पाँच प्रकारके ऋणों (देव-सत्पात्र मानकर दान करना श्रेयस्कर है। ऋण, पितृ-ऋण, ऋषि-ऋण, भूत-ऋण और मनुष्य-शास्त्रोंमें तो यहाँतक लिखा है—'अपात्रे दीयते दानं ऋण)-से मुक्त होनेके लिये प्रतिदिन पंचमहायज्ञ करनेकी दातारं नरकं नयेत्' अर्थात् कुपात्रको दिया हुआ दान विधि है। अध्ययन-अध्यापन ब्रह्मयज्ञ (ऋषि-ऋणसे मुक्ति), दाताको नरकमें ले जाता है, इसलिये दान देते हुए दानीको श्राद्ध-तर्पण करना पितृयज्ञ (पितृ-ऋणसे मुक्ति), हवन-सतर्क और सजग रहना चाहिये। पूजन करना देवयज्ञ (देव-ऋणसे मुक्ति), बलिवैश्वदेव सात्त्विक, राजस और तामस दानके लक्षण करना भूतयज्ञ (भूत-ऋणसे मुक्ति) और अतिथि-सत्कार गीतामें भगवान्ने तीन प्रकारके दानोंका वर्णन किया करना मनुष्ययज्ञ (मनुष्य-ऋणसे मुक्ति) है। अतः गृहस्थको है, देश-काल और पात्रको ध्यानमें रखते हुए प्रत्युपकार यथासाध्य प्रतिदिन इन्हें करना चाहिये। न करनेवाले व्यक्तिको नि:स्वार्थ भावसे जो दान किया बलिवैश्वदेवका तात्पर्य सारे विश्वको बलि (भोजन) जाता है, वह दान सात्त्विक दान कहा गया है।^१ देना है। बलिवैश्वदेव करनेसे गृहस्थ पापोंसे मुक्त होता है। जो दान क्लेशपूर्वक (जैसे चन्दे-चिट्ठेमें विवश होकर इन सबकी गणना नित्य दानमें है। देना पड़ता है), प्रत्युपकारके प्रयोजनसे (अर्थात् दानके (२) नैमित्तिक दान—जाने-अनजानेमें किये गये बदलेमें अपना सांसारिक कार्य सिद्ध करनेकी आशासे), पापोंके शमनहेतु तीर्थ आदि पवित्र देशमें तथा अमावस्या, फलको दृष्टिमें रखकर (मान-बडाई, प्रतिष्ठा और स्वर्गादिकी पूर्णिमा, व्यतिपात, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण आदि पुण्यकालमें प्राप्तिके लिये अथवा रोगादिकी निवृत्तिके लिये) दिये जाते अथवा किसी सुयोग्य सत्पात्रके प्राप्त होनेपर जो दान किया हैं, उन दानोंको राजसदान कहा गया है।^२ जाता है, उसे नैमित्तिक दान कहते हैं। यह दान सकाम एवं जो दान बिना श्रद्धाके, असत्कारपूर्वक अथवा निष्काम (भगवत्प्रीत्यर्थ)—दोनों प्रकारका हो सकता है। तिरस्कारपूर्वक अयोग्य देश-कालमें कुपात्र (मद्य-मांस आदि (३) काम्य दान—किसी कामनाकी पूर्तिके लिये, अभक्ष्य वस्तुओंको खानेवाले, जुआ खेलनेवाले, दुर्व्यसनोंसे ऐश्वर्य, धन-धान्य, पुत्र-पौत्र आदिकी प्राप्ति तथा अपने युक्त, चोरी-जारी आदि नीच कर्म करनेवाले दुश्चरित्र)-के किसी कार्यकी सिद्धिहेतु जो दान दिया जाता है, उसे काम्य प्रति दिया जाता है, उस दानको तामस कहा गया है।^३ दान कहते हैं। शास्त्रोंमें सकाम भावसे किये गये विभिन्न १-दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ (गीता १७।२०) २-यतु प्रत्युपकारार्थं फलमुद्दिश्य वा पुन: । दीयते च परिक्लिष्टं तद्दानं राजसं स्मृतम् ॥ (गीता १७।२१) ३-अदेशकाले यद्दानमपात्रेभ्यश्च दीयते । असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्॥ (गीता १७। २२)

२६ * दाने सर्व * स्तर्भक्षक * स्वर्भक * स्वर्वित्व * स्वर्भक * स्वर्वक * स	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-
दानोंके विभिन्न फल लिखे हैं। जैसे—तिलदानसे इच्छित	
सन्तान प्राप्त होती है। दीपदानसे उत्तम दृष्टि (चक्षु)-की	वैशिष्ट्य है—जिस पात्रको आवश्यकता है, जिस स्थानपर
प्राप्ति होती है, गृहदान करनेवालेको सुन्दर महल (आवास),	आवश्यकता है और जिस कालमें आवश्यकता है, उसी
स्वर्णदान करनेवालेको दीर्घ आयु, चाँदी दान करनेवालेको	क्षण दान देनेका अपना एक विशेष महत्त्व है। विशेष
उत्तमरूप, वृषभदान करनेवालेको अचल सम्पत्ति (लक्ष्मी),	आपत्तिकालमें तत्क्षण पीड़ित समुदायको अन्न, जल,
शय्यादान करनेवालेको उत्तम भार्या, अभयदान करनेवालेको	आवास आदिकी जो सहायता प्रदान की जाती है, वह इसी
एश्वर्य, ईंधनका दान करनेसे प्रदीप्त जठराग्नि अर्थात्	कोटिका दान है। यह दान व्यक्तिगत और सामूहिक दोनों
पाचनशक्तिका विकास, रोगियोंकी सेवामें दवा-फल आदिकी	प्रकारसे होता है। जब कभी भूकम्प, बाढ़, दुर्भिक्ष,
	• • • • • • • • • • • • • • • • • • • •
सहायता करनेपर रोगरहित दीर्घ आयुकी प्राप्ति, अन्नदान करनेसे अक्षयसुख, जलदान करनेसे तृप्ति और गोदान	महामारी, दुर्घटना तथा कोई अन्य प्राकृतिक आपदा आ जाती है, तो तत्क्षण सामूहिक रूपसे सहायता तथा दानकी
करनेवालेको ब्रह्मलोककी प्राप्ति होती है। इस प्रकार दानसे	जाता ह, ता तत्क्षण सामूहिक रूपस सहायता तथा दानका व्यवस्था करना परम कर्तव्य है।
	·
लौकिक सुख और कामनाओंकी पूर्ति भी होती है।	इसी प्रकार किसी भी समय, किसी भी स्थानमें तथा
(४) विमल दान—भगवान्की प्रीति प्राप्त करनेके	किसी भी व्यक्तिके भूख और प्याससे पीड़ित होनेपर अन्न
लिये निष्काम भावसे बिना किसी लौकिक स्वार्थके	और जलको सेवा करनी चाहिये। अन्नदान और जलके
ब्रह्मज्ञानी अथवा सत्पात्रको दिया जानेवाला दान विमल	दानमें कुपात्रका कोई विचार नहीं। इसे प्राप्त करनेके सभी
दान कहलाता है। देश, काल और पात्रको ध्यानमें रखकर	अधिकारी हैं।
अथवा नित्यप्रति किया गया यह दान अत्यधिक कल्याणकारी	अन्य सभी दान देश, काल और पात्रकी अपेक्षा
होता है। यह सर्वश्रेष्ठ दान है।	करते हैं, परंतु अन्नदानके लिये समागत-अभ्यागत अतिथि
दानदाता भी सच्चरित्र होना चाहिये	चाहे जो भी हो, वह भगवान्का ही स्वरूप होता है।
शुद्ध और सात्त्विक दानके लिये दान लेनेवाला	(अतिथिदेवो भव) अतः बिना नाम, गाँव, जाति, कुल
व्यक्ति जैसे सत्पात्र होना चाहिये, वैसे ही दानदाता भी	पूछे ही उन्हें आदरपूर्वक अन्नदान (भोजनदान) करें, वे
सच्चरित्र और सत्पात्र होना चाहिये, इसलिये भगवान्ने	ही सर्वश्रेष्ठ पात्र हैं, जब वे पधारें तभी सर्वश्रेष्ठ समय
श्रीमद्भगवद्गीतामें दानकी अवश्यकर्तव्यतापर जोर देते हुए	(काल) है, जहाँ वे पधारें, वही सर्वश्रेष्ठ देश (स्थान)
कहा कि यज्ञ, दान तथा तप मनीषियोंको पवित्र करते हैं—	हो जाता है। भूखेको अन्न, प्यासेको जल, रोगीको औषधि,
'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥'	वस्त्रहीनको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा, निराश्रयीको आश्रय,
अब प्रश्न उठता है कि मनीषी कौन है? जिनका	जीविकाहीनको जीविका अत्यन्त उत्तम दान है। इनमें
मन निर्मल है, जो मन, वाणी और कर्मसे एकरूप हैं तथा	मुहूर्तकी अपेक्षा नहीं रहती। इन्हें किसी भी स्थानपर किसी
जो लोभसे रहित हैं—'दानं लोभराहित्यम्' अर्थात् सांसारिक	भी समय कर सकते हैं।
अनित्य पदार्थोंके प्रति लालसा न रखना ही दान है, इस	दान और दया
प्रकार सत्य, आर्जव, दया, अहिंसा आदि गुणोंसे युक्त	वास्तवमें उपर्युक्त दान दयापर आश्रित हैं। दया भी
व्यक्ति ही मनीषी कोटिमें है। अत: दानका पूर्ण लाभ प्राप्त	दानका एक अंग है, किंतु दया और दानमें थोड़ा अन्तर
करनेके लिये दानदाताको भी इस प्रकारका होना चाहिये।	है। दया कभी भी, कहीं भी, किसीपर भी, कोई भी, कैसे
दानका अवसर	भी कर सकता है, इसमें देश, काल और विधि अपेक्षित
देश, काल और पात्रकी जो व्याख्या शास्त्रोंमें बतायी	नहीं है। स्वार्थरहित होकर दूसरेके दु:खको न देख पाना
गयी है, यद्यपि वह सर्वथा उचित है, परंतु अनवसरमें भी	ही दया है। दयाके लिये सभी स्थान, सभी व्यक्ति

* दान—एक विहंगम दृष्टि * अङ्क] (प्राणीमात्र), सभी समय उपयोगी हैं, अनुकूल हैं, किंतु सहयोग भी प्राप्त होता है, इस प्रकार उस प्राप्त धनपर दानके विषयमें ऐसा नहीं है। दया पानेके अधिकारी सब हमारा अकेलेका अधिकार नहीं है। उपनिषदोंमें तो स्पष्ट हैं, किंतु दान पानेके अधिकारी मुख्य रूपसे ब्राह्मण ही हैं, निर्देश है—'तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः' अर्थात् तुम प्राप्त अत: दयासे समन्वित दान सबको दिया जा सकता है धन-सम्पत्तिका त्यागपूर्वक उपभोग करो। जितना तुम्हारे अर्थात् यह दान प्राणीमात्रके लिये है। निर्वाहमात्रके लिये आवश्यक है, उतनेसे अधिकको तो दान और त्याग अपना मानो ही मत। वह भगवान्की वस्तु है, उसे चराचर विश्वमें व्याप्त भगवान्की सेवामें लगा दो। निर्वाहमात्रके किसी वस्तुसे अपनी सत्ता और ममता उठा लेना ही लिये जितना आवश्यक समझते हो, उसे भी पंचमहायज्ञ दान है, यह त्याग भी है, परंतु त्याग और दानमें भी थोड़ा आदिके द्वारा त्यागपूर्वक अपने उपयोगमें लाओ। वास्तवमें अन्तर है। दान मुख्यत: पुण्यका और त्याग देवत्वका हेतु धनके स्वामी तो एकमात्र लक्ष्मीपति भगवान् ही हैं। होता है। कोई भी दान त्यागकी श्रेणीमें आता है, किंतु सभी श्रीमद्भागवतमें तो यहाँतक कहा गया है कि जितनेसे पेट प्रकारके त्याग दान नहीं हैं। दान प्राप्त वस्तुओंका और वह भरे, उतने ही अन्न-धनपर देहधारीका अधिकार है, उससे भी सीमित मात्रामें किया जा सकता है, जबकि त्याग अधिकको जो अपना मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड अप्राप्त वस्तुओंका और असीमित मात्रामें हो सकता है। मिलना चाहिये-दानदाता स्वयंको दान-ग्रहणकर्ताके प्रति अनुगृहीत मानता है, किंतु हर त्यागमें यह आवश्यक नहीं। यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति॥ अनादिकालसे त्यागपूर्ण जीवनको ही उत्तम माना गया है। पौराणिक गाथाओंमें त्यागके अनेक आदर्श (श्रीमद्भा० ७।१४।८) कथानक हैं। महाराज शिबिने एक कबूतरकी प्राणरक्षामें उपर्युक्त वचनसे परमात्मचिन्तन और त्याग—इन दो क्षुधातुर बाजके लिये अपने अंग-प्रत्यंगके मांसको काट-बातोंकी आज्ञा मिलती है, वस्तुत: यह परमात्माकी काटकर तोल दिया। महर्षि दधीचिने देवताओंके हितमें प्राप्तिका साक्षात् साधन है। अपने प्राणोंका उत्सर्गकर अपनी हड्डियाँ दे दीं। महाराज सकामसे निष्कामकी ओर बलिने वामन भगवान्को अपना सर्वस्व तो दिया ही, साथ वेद-पुराणोंमें कुछ ऐसे दानोंका भी वर्णन है, जो ही अपना शरीर भी दे दिया। महाराज हरिश्चन्द्र सत्यकी कामनाओंकी पूर्तिके लिये किये जाते हैं, जिनमें तुलादान, रक्षाके लिये अपने राज्यको त्यागकर स्वयं पत्नी और गोदान, भूमिदान, स्वर्णदान, घटदान, अष्टमहादान, दशमहादान पुत्रके साथ काशीके बाजारमें बिक गये। रन्तिदेव, महाराज तथा षोडश महादान आदि परिगणित हैं—ये सभी प्रकारके युधिष्ठिर, महान् दानी कर्ण आदिका त्यागपूर्ण जीवन दान काम्य होते हुए भी यदि नि:स्वार्थभावसे भगवान्की किससे छिपा है? स्वदेशरक्षामें महाराणा प्रताप, छत्रपति प्रसन्नता प्राप्त करनेके निमित्त भगवदर्पणबुद्धिसे किये जायँ शिवाजी, झाँसीकी महारानी लक्ष्मीबाई, सिक्खगुरु तेग-तो वे ब्रह्मसमाधिमें परिणत होकर भगवत्प्राप्ति करानेमें बहादुर, गुरु गोविन्दसिंह, बालगंगाधर तिलक, सुभाषचन्द्र विशेष सहायक सिद्ध हो सकेंगे। बोस एवं चन्द्रशेखर आजाद आदिका त्याग भुलाया नहीं कुछ दान ऐसे हैं, जिन्हें बहुजनहिताय-बहुजनसुखायकी भावनासे सर्वसाधारणके हितमें करनेकी परम्परा है। जा सकता। दान आत्माका दिव्य गुण है, यह ध्यान रखना चाहिये देवालय, विद्यालय, औषधालय, भोजनालय (अन्नक्षेत्र), कि व्यक्ति जो कुछ अर्जित करता है, वह केवल अपने अनाथालय, गोशाला, धर्मशाला, कुएँ, बावडी, तालाब आदि सर्वजनोपयोगी स्थानोंका निर्माण आदि कार्य यदि पुरुषार्थसे नहीं बल्कि उसमें भगवत्कृपा मुख्य कारण है, साथ ही संसारके अनेक प्राणियोंका प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष न्यायोपार्जित द्रव्यसे बिना यशकी कामनासे भगवत्प्रीत्यर्थ

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− जो व्यक्ति वैभवशाली, धनी और उदारचेता हैं, उन्हें तो किये जायँ तो परमकल्याणकारी सिद्ध होंगे। अपने उपार्जित धनको पाँच भागोंमें विभक्त करना चाहिये-सामान्यतः न्यायपूर्वक अर्जित किये हुए धनका दशमांश बुद्धिमान् मनुष्यको दान-कार्यमें ईश्वरकी प्रसन्नताके धर्माय यशसेऽर्थाय कामाय स्वजनाय च। लिये लगाना चाहिये-पञ्चधा विभजन् वित्तमिहामुत्र च मोदते॥ न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः। (१) धर्म, (२) यश, (३) अर्थ (व्यापार आदि कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥ आजीविका), (४) काम (जीवनके उपयोगी भोग), (५) स्वजन (परिवार)-के लिये—इस प्रकार पाँच प्रकारके (स्कन्दपुराण) धनका विभाग करनेवाला इस लोकमें और परलोकमें भी अन्यायपूर्वक अर्जित धनका दान करनेसे कोई पुण्य आनन्दको प्राप्त करता है। नहीं होता। यह बात 'न्यायोपार्जितवित्तस्य' इस वचनसे स्पष्ट होती है। दान देनेका अभिमान तथा लेनेवालेपर यहाँ व्यापार आदि आजीविकाके लिये धनका किसी प्रकारके उपकारका भाव न उत्पन्न हो, इसके लिये विभाग इसलिये किया गया है कि जिससे जीविकाके इस श्लोकमें कर्तव्य पदका प्रयोग हुआ है। अर्थात् धनका साधनोंका विनाश न हो; क्योंकि भागवतमें यह स्पष्ट कहा इतना हिस्सा दान करना-यह मनुष्यका कर्तव्य है। गया है कि जिस सर्वस्व-दानसे जीविका भी नष्ट हो जाती मानवका मुख्य लक्ष्य है—ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त करना। हो, बुद्धिमान् पुरुष उस दानकी प्रशंसा नहीं करते; क्योंकि जीविकाका साधन बने रहनेपर ही मनुष्य दान, यज्ञ, तप अतः दानरूप कर्तव्यका पालन करते हुए भगवत्प्रीतिको बनाये रखना भी आवश्यक है। इसीलिये 'कर्तव्यो आदि शुभकर्म करनेमें समर्थ होता है-विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च' इन शब्दोंका प्रयोग न तद्दानं प्रशंसन्ति येन वृत्तिर्विपद्यते। किया गया है। यदि किसी व्यक्तिके पास एक हजार रुपये दानं यज्ञस्तपःकर्म लोके वृत्तिमतो यतः॥ हों, उसमेंसे यदि उसने एक सौ रुपये दान कर दिये तो जो मनुष्य अत्यन्त निर्धन हैं, अनावश्यक एक पैसा भी बचे हुए नौ सौ रुपयोंमें ही उसकी ममता और आसिक्त खर्च नहीं करते तथा अत्यन्त कठिनाईपूर्वक अपने परिवारका रहेगी। इस प्रकार दान ममता या आसक्तिको कम करके भरण-पोषण कर पाते हैं, ऐसे लोगोंके लिये दान करनेका विधान शास्त्र नहीं करते। इतना ही नहीं, यदि पुण्यके लोभसे अन्त:करणकी शुद्धिरूप प्रत्यक्ष (दृष्ट) फल प्रदान करता है और शास्त्र-प्रमाणानुसार वैकुण्ठलोककी प्राप्तिरूप अप्रत्यक्ष अवश्यपालनीय वृद्ध माता-पिताका तथा साध्वी पत्नी और (अदृष्ट) फल भी प्रदान करता है। छोटे बच्चोंका पालन न करके उनका पेट काटकर जो दान द्रव्यकी शुद्धि करते हैं, उन्हें पुण्य नहीं, प्रत्युत पापकी ही प्राप्ति होती है। देवीभागवतमें तो यह स्पष्ट कहा गया है कि जो धनी व्यक्ति अपने स्वजन-परिवारके लोगोंके दुःखपूर्वक जीवित रहनेपर उनका पालन करनेमें समर्थ होनेपर अन्यायसे उपार्जित धनद्वारा किया गया शुभ कर्म व्यर्थ है। इससे न तो इहलोकमें कीर्ति ही होती है और न परलोकमें भी पालन न कर दूसरोंको दान देता है, वह दान मधुमिश्रित विष-सा स्वादप्रद है और धर्मके रूपमें अधर्म है-कोई पारमार्थिक फल ही मिलता है-अन्यायोपार्जितेनैव द्रव्येण सुकृतं कृतम्। शक्तः परजने दाता स्वजने दुःखजीविनि। न कीर्तिरिह लोके च परलोके न तत्फलम्॥ मध्वापातो विषास्वादः स धर्मप्रतिरूपकः॥ दानका रहस्य (३।१२।८) धनके पाँच विभाग स्कन्दपुराणमें वर्णन है कि राजा धर्मवर्माने दानके तत्त्वको जाननेके लिये तप किया तो आकाशवाणीद्वारा एक उपार्जित धनके दशमांशका दान करनेका यह विधीन देशांत्रिक प्रोइंट्कर दे जिन्हें भारतीय कि कि कि प्रोतिक के कि प्रोतिक कि प्रोतिक के कि प्रोतिक कि प्रोतिक के कि प्रोतिक

* दान—एक विहंगम दृष्टि * अङ्क] जो दिया जाता है, वह लज्जा-दान है। शुभ समाचार सुनकर द्विहेतुः षडधिष्ठानं षडङ्गं च द्विपाकयुक्। चतुष्प्रकारं त्रिविधं त्रिनाशं दानमुच्यते॥ जो दिया जाता है, वह **हर्ष-दान** है। निन्दा, हिंसा एवं अनर्थके भयसे विवश होकर जो दिया जाता है, वह भय-(स्कन्दपुराण माहे०) दान है। अर्थात् दानके दो हेतु, छ: अधिष्ठान, छ: अंग, दो दानके छः अंग प्रकारके फल, चार प्रकार, तीन भेद एवं तीन विनाश करनेके कारण हैं। दानकर्ता, प्रतिग्रह लेनेवाला, शुद्धि, दानका पदार्थ, देश एवं काल-ये दानके छः अंग कहे गये हैं। श्लोकका अर्थ तो स्पष्ट था, परंतु अनेक विद्वान्, ऋषि, मुनि इसकी विस्तृत व्याख्या करनेमें सफल नहीं दानकर्ता धर्मात्मा, दानकी अभिलाषा रखनेवाला, हुए। अन्तमें महामुनि नारदद्वारा इस श्लोकके वास्तविक व्यसनरहित, पवित्र एवं अनिन्दित कर्मसे व्यवसाय करनेवाला अर्थको प्रकट किया गया, जिसमें दानके रहस्यका वर्णन होना चाहिये। किया गया है। प्रतिग्रहीता सात्त्विक, दयालु, कुल-विद्या-आचारसे दानके हेत् श्रेष्ठ तथा शुद्ध जीवन-निर्वाहकी वृत्ति करनेवाला होना दानके दो हेतु-श्रद्धा एवं शक्ति कहे गये हैं। दानकी चाहिये। मात्रा नहीं, बल्कि श्रद्धा एवं शक्ति ही उसके फलकी वृद्धि शृद्धिका अर्थ है कि दान करते समय याचकके प्रति हार्दिक प्रेम हो, उन्हें देखकर प्रसन्नता हो तथा उनमें या क्षयके कारण होते हैं। श्रद्धा—दानमें श्रद्धाका बहुत महत्त्व है। बिना श्रद्धाके दोषदृष्टि न रखकर उनका सत्कार हो। दिया गया सर्वस्व दान भी निष्फल हो जाता है। न्यायोपार्जित दानका पदार्थ एवं धन वही उत्तम है, जो अपने धनका जो व्यक्ति सत्पात्रको दान करते हैं, वह थोडा होनेपर प्रयत्नसे उपार्जित किया गया हो। दूसरेको सताकर, चोरी-भी वे भगवान्को प्रसन्न कर लेते हैं। श्रद्धा भी सात्त्विक, ठगीसे या अधर्मयुक्त विधिसे प्राप्त धन या पदार्थका दान राजसिक एवं तामसिक—तीन प्रकारकी कही गयी है। करनेसे कोई फल प्राप्त नहीं होता। जिस देश एवं कालमें जो पदार्थ दुर्लभ हों, उन्हें शक्ति-कुटुम्बका पालन-पोषण करनेके बाद जो धन बचे, वही दान करनेकी शक्ति कही गयी है। आश्रित उसी देश एवं कालमें दान करनेसे श्रेष्ठ फल प्राप्त होता है। दानके दो फल जनको कष्टमें रखकर किसी सुखी व्यक्तिको दान करनेसे उसका फल मधुके समान मीठा न होकर विषके समान महात्माओंने दानके दो फल कहे हैं। इनमें एक कटु हो जाता है। आपत्तिकाल पड़नेपर भी सामान्य, याचित, इहलोकके लिये होता है तथा दूसरा परलोकके लिये। न्यास, बन्धक, दान, दानसे प्राप्त, अन्वाहित, निक्षिप्त एवं दानके चार प्रकार सान्वय-सर्वस्व दान-इन नौ प्रकारके धन या पदार्थींका ध्रुव, त्रिक, काम्य एवं नैमित्तिक-ये चार दानके प्रकार कहे गये हैं। सार्वजनिक कार्योंके लिये जैसे-बाग-दान नहीं करना चाहिये। दानके अधिष्ठान बगीचे लगवाना, धर्मशाला बनवाना एवं पीनेके पानीका धर्म, अर्थ, काम, लज्जा, हर्ष एवं भय-ये दानके प्रबन्ध करना-करवाना इत्यादिके लिये दिया गया दान ध्रव छ: अधिष्ठान हैं। बिना प्रयोजनके धार्मिक भावनासे दिया है। जो प्रतिदिन दिया जाता है, उसे त्रिक कहते हैं। किसी गया दान **धर्म-दान** है। प्रयोजनवश दिया गया दान अर्थ-इच्छाकी पूर्तिके लिये किया गया दान काम्य दान है। दान है। सुरापान एवं जुएके प्रसंगमें अनिधकारी मनुष्यको नैमित्तिक दान तीन प्रकारका है। ग्रहण, संक्रान्ति आदि जो दिया जाता है, वह काम-दान है। याचकद्वारा सबके कालकी अपेक्षासे किया गया दान कालापेक्ष नैमित्तिक दान सामने माँग लेनेपर लज्जावश या संकोचवश प्रतिज्ञा करके है। श्राद्ध इत्यादि क्रियाओंसे जुड़ा दान क्रियापेक्ष नैमित्तिक

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− दान है। विद्या-प्राप्ति एवं अन्य संस्कार आदि गुणोंकी पुण्यजनकताकी बात, अपनी कई पीढियोंको तारनेकी बात और परलोकमें उत्तम गति तथा अक्षय लोकोंकी प्राप्तिकी अपेक्षासे किया गया दान गुणापेक्ष नैमित्तिक दान है। बात कही गयी है, वहीं असत्प्रतिग्रहसे अधोगित प्राप्त दानके तीन भेद करनेकी बात आयी है। अत: दानग्रहीताको पूर्ण सावधानी उत्तम, मध्यम एवं कनिष्ठ-दानके तीन भेद कहे बरतनी चाहिये। गये हैं-दान इस प्रकार करें गृह, मन्दिर, भूमि, विद्या, गौ, कूप, स्वर्ण एवं प्राण— अपनी शक्ति एवं सामर्थ्यके अनुरूप स्वेच्छासे, इन आठ पदार्थोंका दान शास्त्रोंमें उत्तम कहा गया है। अन्न, कृतज्ञतासे, मधुर वाणीके साथ, श्रद्धापूर्वक एवं संकोचपूर्वक बगीचा, वस्त्र एवं वाहनादि पदार्थोंके दानको मध्यम दान इस भावनासे कि सारे धनके वास्तविक स्वामी तो भगवान् कहा गया है। जूता, छाता, बर्तन, दही, मधु, आसन, दीपक, ही हैं। वे ही दानदाता हैं और वे ही स्वयं लेनेवाले ग्रहीता, काष्ठ एवं पत्थर इत्यादि पदार्थींके दानको किनष्ठ दान कहा गया है। मैं तो केवल निमित्तमात्र हूँ—इस प्रकार विचारकर दान दानके नाशके तीन कारण करनेके लिये निरन्तर तत्पर रहना चाहिये। परंतु सामान्यतः इस भावनामें चूक हो जाती है, उदाहरणार्थ मान लें कभी ऐसा पश्चात्ताप, अपात्रता एवं अश्रद्धा-ये तीन कारण दानके नाशक हैं। अवसर प्राप्त हो कि किसी असहाय रोगीको ओषधि और दुधकी आवश्यकता है और उसके पास इसके साधन नहीं दान देकर बादमें पश्चात्ताप हो, वह आसुरदान होता हैं। हमें यह बात मालूम हुई और हमने दयापूर्वक उसकी है। इसका कुछ भी फल प्राप्त नहीं होता। व्यवस्था कर दी, परंतु स्वाभाविक रूपसे हमारे मनमें यह भाव बिना श्रद्धाभावके जो दान दिया जाता है, वह आता है कि उस रोगीको यह तो मालूम होना चाहिये कि राक्षसदान है। यह भी निष्फल होता है। दान प्राप्त करनेवालेको डाँट-डपटकर या उसे कटुवचन सुनाकर सहायता मेरेद्वारा की जा रही है। हम प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे यह बात किसी भी प्रकार उसकी जानकारीमें कराते हैं, जो दान दिया जाता है, वह पिशाचदान माना गया है। वस्तुत: यह बात नीचे दर्जेकी है। उच्चकोटिकी बात तो यह यह दान भी व्यर्थ होता है। अपात्र व्यक्तियोंको दिया गया दान भी पिशाचदानकी श्रेणीमें रखा गया है। दुराचारी है कि परमात्मप्रभुका धन प्रभुकी सेवामें लग रहा है, इसमें हमारे नामकी क्या आवश्यकता है। इस प्रकार हमें किसी भी तथा विद्याहीन व्यक्ति जातिसे ब्राह्मण होनेपर भी कुपात्र होता है, जो प्रतिग्रह स्वीकार करनेपर स्वयं भी नष्ट प्रकारके अहंकारसे बचना चाहिये। होता है तथा दानकर्ताको भी नष्ट करता है। कुपात्र प्रकृतिप्रदत्त दान ब्राह्मणको दानमें मिली भूमि उसके अन्त:करणको, गाय वस्तुत: स्वयं सृष्टिकर्ता परमात्मा प्रतिक्षण प्रकृतिके उसके भोगोंको, सोना उसके शरीरको, वाहन उसके माध्यमसे हमें दान देते रहते हैं, सूर्यनारायण अपने प्रकाशसे नेत्रोंको, वस्त्र उसकी स्त्रीको, घी उसके तेजको एवं हमें ऊर्जा तथा प्राणशक्तिका दान देते हैं। धरतीमाता हमें तिल उसकी सन्तानको नष्ट कर देते हैं। अत: पात्रता अन्नरूपी सामग्री देती हैं, नदियाँ जलदान करती हैं, वृक्ष न होनेपर कभी प्रतिग्रह स्वीकार नहीं करना चाहिये। नि:स्पृह भावसे फलदान करते हैं, वायुदेव निरन्तर शास्त्रोंमें दान देनेकी जितनी महिमा आयी है, उतनी संचरणकर श्वास-प्रश्वासके रूपमें हमें जीवनदान देते हैं, ही अथवा उससे भी अधिक असत्प्रतिग्रहकी निन्दा की बादल सागरसे जल आकर्षितकर जलकी वर्षाकर अपना गयी है। दान देनेमें जितनी अधिक सावधानी बरतनेकी अस्तित्व ही समाप्त कर देते हैं। प्रभुप्रदत्त प्रकृतिके बात कही गयी है, उससे अधिक सावधानी बरतनेकी बात सहयोगसे ही मनुष्य जीवन धारण करनेमें समर्थ होता है। दान लेनेके विषयमें कही गयी है। दान देनेसे जहाँ तो क्या प्रकृतिके सतत दानसे हमें यह प्रेरणा नहीं मिलती

	े विहंगम दृष्टि * क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
क हम भी अपनी प्राप्त वस्तुओंका दान करें।	६-श्रमदान— अपनी सामर्थ्यके अनुसार मौकेपर
दानके अनेक रूप	दूसरोंके लिये श्रमदान करनेसे स्वयंको आनन्दकी अनुभूति
वास्तवमें दानके अनेक रूप हैं। कुछ तो प्रत्यक्ष दान	
ऐसे हैं, जिसमें द्रव्यका विनियोग अर्थात् अपने अर्जित	
थनका त्याग करना पड़ता है, जैसे अन्नदान, जलदान,	सामान नहीं उठा पा रहा है तो उसका सामान उठा दें।
वस्त्रदान, भूमिदान, गृहदान, स्वर्णदान, शय्यादान, तुलादान,	अपने असमर्थ पड़ोसीका बाजारसे सामान ला दें—इस
पिण्डदान, आरोग्यदान, गोदान इत्यादि। इन दानोंकी अपनी	प्रकारके कितने ही छोटे-मोटे कार्य हैं, जो श्रमदानके
महत्ता है, इनके अलग-अलग सबके देवता हैं और सबके	अन्तर्गत आ सकते हैं।
मन्त्र हैं, जिनका स्मरण संकल्पके समय करनेकी विधि	७- शरीरके अंगोंका दान— कहा गया है— 'शरीरं
है, पर कुछ ऐसे भी दान हैं, जिनके लिये किसी	व्याधिमन्दिरम्' । यह शरीर व्याधि (रोगों)-का मन्दिर है।
प्रकारका धन खर्च नहीं करना पड़ता, इस प्रकारके	मानव–शरीर कभी भी रोगोंसे ग्रस्त हो सकता है। आजकल
दानोंका भी कम महत्त्व नहीं है, जैसे—	कई असाध्य रोग हैंं, जिनके कारण व्यक्ति मृत्युशय्यापर
१-मधुर वचनोंका दान —यदि कोई व्यक्ति कष्टमें	आ जाता है, ऐसे समयमें कभी-कभी उसे रक्तकी
है, तो उसे मधुर वचनोंके द्वारा सान्त्वना प्रदान की जा	आवश्यकता होती है। रक्तदानसे किसीकी भी जिन्दगी
सकती है, कभी-कभी कठोर वचनोंसे आन्तरिक पीड़ा हो	बचायी जा सकती है तथा स्वयंको भी कभी रक्तकी
जाती है, परंतु मधुर वचन सबको प्रिय लगते हैं। मधुर	जरूरत पड़ सकती है। रक्तका कोई विकल्प नहीं होता
वचनोंसे स्वयंको भी प्रसन्नता मिलती है।	और न यह कृत्रिम रूपसे तैयार हो सकता है। मनुष्यको
२- प्रेमका दान —वास्तविक प्रेम तो त्यागमें समाहित	अपने जीवनकालमें रक्तदान-जैसा महान् कार्य अवश्य
है। जब हम दूसरोंके प्रति प्रेमका भाव रखते हैं तो	करना चाहिये।
मौकेपर उनके लिये त्यागहेतु भी तत्पर रहना पड़ता है।	इसी प्रकार गुर्दा (किडनी)–के दानकी भी आवश्यकता
सबके प्रति प्रेम रखना एक प्रकारसे परमात्मप्रभुके प्रति	कभी-कभी किसीके लिये पड़ती है। प्रत्येक व्यक्तिके
प्रेम करना है।	शरीरमें दो गुर्दे रहते हैं, कभी किसीके दोनों गुर्दे खराब
३-आश्वासनदान —किसी संकटग्रस्त व्यक्तिके	हो जाते हैं, तो डॉक्टरकी सलाहपर किसी स्वस्थ मनुष्यके
जीवनमें आश्वासनका बड़ा महत्त्व है। कभी-कभी लोग	एक गुर्देका प्रत्यारोपण करनेसे उसकी जान बचायी जा
अपने जीवनसे निराश होकर आत्महत्यातक करनेको तैयार	सकती है। गुर्दादान करनेवाले व्यक्तिका भी एक गुर्देसे
हो जाते हैं। ऐसी स्थितिमें सहायताका आश्वासन देकर	भलीभाँति काम चल सकता है। इस प्रकार गुर्देका दान
अथवा सत्प्रेरणा देकर हम उन्हें बचा सकते हैं। किसीकी	भी उत्तम कोटिका है। इसी प्रकार यकृत (लीवर)-का
विपरीत परिस्थितियोंमें भी सहायताका आश्वासन देकर	प्रत्यारोपण भी होता है।
उसका मनोबल बढ़ाया जा सकता है।	शरीरके अंगोंका दान जीवितावस्थामें ही करना
४-आजीविकादान —जीवनयापन एवं परिवारपालनके	चाहिये।
लिये आजीविकाकी आवश्यकता होनी स्वाभाविक है। जो	८-समयदान— नि:स्वार्थ भावसे किसी सेवाकार्यमें
व्यक्ति किसीके लिये आजीविकाकी व्यवस्था कर देते हैं,	अपने समयका विनियोग करना समयदान है।
उनके द्वारा प्रदत्त दान आजीविकादान है।	९-क्षमादान —कोई शक्तिशाली एवं सामर्थ्यसम्पन्न
५-छायादान —छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाकर	व्यक्ति अपराध होनेपर भी अपराधीको दण्ड न देकर क्षमा
राहगीरोंको छायादान किया जा सकता है।	करे तो उसे क्षमादान कहते हैं। यह कोई सहनशील और

३२ * दा	ो सर्वं प्रतिष्ठितम् * 	् दानमहिमा-
उत्तम चरित्रका व्यक्ति ही कर सकता है।	पुण्यदान है।	
क्षमाशील मनुष्यकी विशेष महिमा शास्त्रोंमें	•	पदानका ही एक दूसरा रूप
गयी है—	•	नाता-पिता तथा अपनी सन्तान
् क्षमा धर्मः क्षमा सत्यं क्षमा दानं क्षमा यशः।		आरोग्यताके लिये जप करते
क्षमा स्वर्गस्य सोपानमिति वेदविदो विदुः॥	<u>-</u>	का अप्रत्यक्ष दान है। किसी
क्षमा ही धर्म है, क्षमा ही सत्य है और क्षमा ही		गपदान करना एक महत्त्वपूर्ण
यश और स्वर्गकी सीढ़ी है। क्षमाका विरोधी भाव		ाम-जप आदि भी किये जाते
है। यह क्रोध दूसरेकी कम अपनी अधिक हानि		है। ऐसे व्यक्ति परोपकारी एवं
ै है। क्रोधपर विजयी होनेपर ही क्षमाकी प्रतिष्ठा होतं		ि हैं।
१०-सम्मानदान —किसी व्यक्तिको सम्मान	_	गवद्धक्तिका मार्ग बताकर उस
उसकी अन्तरात्मा प्रसन्न हो जाती है। अत: दूर	रोंको पथपर आरूढ़ करा देना	भक्तिदान है।
सम्मान देनेका स्वभाव बना लेना चाहिये। एक	दोहा १५-आशिष्दान—	किसी साधु-संन्यासी, संत तथा
प्रसिद्ध है—	कर्मनिष्ठ ब्राह्मणद्वारा अथव	न मा सती-साध्वी, प्रौढ़ महिलाद्वारा
गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन दान।	उन्हें प्रणाम, अभिवादन	किये जानेपर वे जो आशीर्वाद
तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान॥	प्रदान करते हैं, उसे आर्थि	शष्दानकी संज्ञा दी जाती है।
११-विद्यादान —विद्या ही मनुष्यका सर्वोत्तम	धन ये सभी प्रकारके द	ान मानव–जीवनके कर्तव्यरूपमें
है। विद्या मूलत: दो प्रकारकी होती है—पारलौकिकी	और आध्यात्मिक उन्नतिके सा	धन हैं।
लौकिको। पारलौकिको विद्या अध्यात्मविद्या है। व	स्तुतः इसके साथ ही कु	छ ऐसे दान हैं जो द्रव्यपर ही
विद्या वही है, जिससे मुक्ति (मोक्ष) मिले (सा विद	ा या आधारित हैं, उनका भी	कम महत्त्व नहीं है।
विमुक्तये)। लौकिकी विद्याका भी कम महत्त्व नर्ह	i है। १-आश्रयदान— जं	ो व्यक्ति सम्पन्न और उदार होते
चौरादिकोंसे नहीं चुराये जानेसे, कभी क्षय न होनेसे	तथा हैं, वे धर्मशालाएँ आदि बनव	ाकर यात्रियोंके लिये रात्रिविश्रामका
सब पदार्थोंसे अनमोल होनेसे विद्याको ही सब पद	ार्थोंमें आश्रय देते हैं। कई अन	ाथाश्रम, वृद्धाश्रम-जैसी संस्थाएँ
उत्तम पदार्थ कहा गया है। विद्यादान अनेक प्रकारसे	किया निराश्रितोंको आश्रय देती है	हैं। जहाँ भोजन, वस्त्र तथा अन्य
जा सकता है। अध्यापनके द्वारा, छात्रोंको पुस्तकदान है	देकर, वस्तुओंको भी प्राप्त करनेव	क्री सुविधा रहती है। इसके साथ
छात्रवृत्ति, आवास तथा अन्यान्य सामग्री देकर भी विद	गादान ही किसी अभ्यागत, अर्तिा	थेको कुछ समयके लिये आश्रय
किया जा सकता है। विद्यालय-महाविद्यालय, विश्वविद्	गालय देना भी पुण्यप्रद है।	
और शोधसंस्थानको स्थापना करना भी विद्यादानका :	प्रमुख २-भूमिदान— सम्प	त्तिशाली व्यक्ति किसी गरीब
अंग है।	ब्राह्मणको अथवा अपने	अधीनस्थ सेवकको भूमिदान
१२-पुण्यदान —किसी भी अपने स्वजन र्व्या	क्तकी करते हैं तथा मन्दिर,	विद्यालय, धर्मशाला, गोशाला
मृत्युके समय या मृत्युके बाद उसे सद्गति मिले,	गान्ति इत्यादिके लिये भूमिदान ि	देया जाता है। भूमिदानका बड़ा
मिले, उसका उद्धार हो—इस निमित्त दयावश, करुप	गावश महत्त्व है। स्वतन्त्र भारत	ामें संत विनोबा भावेने गरीब
अपने पुण्यका दान किया जाता है। अपने जी	त्रनके भूमिहीनोंके लिये बड़े लोग	ोंसे भूमि लेकर भूमिदान कराया
पुण्यवाहक कर्म—व्रत, तीर्थसेवा, सन्तसेवा, अन् Hinduism Discord Server https://dsc.ç आर्दिक पुण्यफलको किसोक निमित्त सकेल्प कर	नदान था, जो भूदान–आन्दोलनवे lg/dharma J <u>MADE</u> WITL द नी	ह नामसे प्रसिद्ध है। 1.LOVE BY Avinash/Sha में स्वर्णदानका विशेष महिमा

* दान—एक विहंगम दृष्टि * 33 अङ्क] है। स्वर्णदानसे ऐश्वर्य और आयुकी वृद्धि शास्त्रोंमें बतायी शान्तिके लिये शास्त्रोंमें पिण्डदानकी प्रक्रिया दी गयी है। गयी है। किसी भी वस्तुके अभावमें उस वस्तुके निष्क्रयके मृत व्यक्तिके उत्तराधिकारी बेटे-पोतोंका यह कर्तव्य होता रूपमें स्वर्णदान करनेकी विधि है। है कि वे मृत्युके उपरान्त शास्त्रानुसार पिण्डदान आदिकी प्रक्रिया पूरी करें। गया आदि तीर्थोंमें भी पिण्डदान **४-कन्यादान**— भारतीय संस्कृतिमें कन्यादानकी बड़ी करनेकी विधि है। पितृ-ऋणसे मुक्त होनेके लिये यह परम महिमा है। शास्त्रोंमें कन्याको लक्ष्मीस्वरूप मानकर विष्णुस्वरूप आवश्यक है। वरको प्रदान करनेकी विधि है। इसके साथ ही कन्याके माता-पिता वर-वधूके आभूषण, पोशाक एवं अपनी १०-गोदान-शास्त्रोंमें गोदानकी बड़ी महिमा है। सामर्थ्यानुसार धन-दहेज भी प्रदान करते हैं तथा दान देनेके प्राचीन कालमें तो गोको ही सर्वोपरि धन माना जाता था। लौकिक एवं पारलौकिक सभी प्रकारके फलोंकी प्राप्तिक कारण कन्याके घरका कुछ स्वीकार नहीं करते। यह एक विशिष्ट परम्परा है। लिये गोदान सर्वश्रेष्ठ दान माना गया है। अन्तिम समयमें मृत्युके पूर्व प्राय: गोदान करनेका लोग प्रयास करते हैं। **५-आरोग्यदान**—बीमार व्यक्तिको चिकित्सा उपलब्ध मृत्युके उपरान्त श्राद्ध आदिमें भी गोदान करनेका विशेष कराना तथा गरीब अथवा असहाय व्यक्तिकी औषध, फल, दूधसे सहायताकर और उसके रोगके शमनकी व्यवस्थाकर महत्त्व है। उसे स्वस्थ कर देना-यह आरोग्यदान है। इसके साथ ही जो गायें कसाईके हाथमें चली जाती ६-वस्त्रदान—शरीरकी रक्षाके लिये वस्त्रकी हैं, उन्हें यदि कसाईसे मुक्त कराकर उनकी सेवा-शुश्रुषाकी जाय तो यह भी एक महत्त्वपूर्ण सत्कर्म है, आवश्यकता होती है। कुछ निर्धन और असहाय व्यक्तियोंके शास्त्रोंमें लिखा है-पास वस्त्रका अभाव होनेपर उनकी शारीरिक रक्षाके लिये वस्त्रका दान महत्त्वपूर्ण है। शीतकालमें कम्बल आदि ऊनी गोकृते स्त्रीकृते चैव गुरुविप्रकृतेऽपि वा। वस्त्रोंका भी गरीब छात्रों, साधु-संतों, निर्धन, असहाय हन्यन्ते ये तु राजेन्द्र शक्रलोकं व्रजन्ति ते॥ लोगोंको दान दिया जाता है। अर्थात् गोरक्षा, अबला स्त्रीकी रक्षा, गुरु और ७-ग्रहदान-मनुष्यके जीवनमें ग्रहोंकी दशा बदलती ब्राह्मणकी रक्षाके लिये जो प्राण दे देते हैं, राजेन्द्र रहती है। ग्रहदशाके अनुसार जीवनमें अनुकूलता-प्रति-युधिष्ठिर! वे मनुष्य इन्द्रलोक (स्वर्ग)-में जाते हैं। कुलताकी अनुभूति होती है। प्राय: प्रतिकूल परिस्थितियोंमें बारह महीनोंके विशिष्ट दान अपने देशमें छ: ऋतुएँ और बारह महीने होते ग्रहशान्तिके निमित्त उस ग्रहसे सम्बन्धित वस्तुका दान हैं। इन बारहों महीनोंमें ऋतुके अनुसार शास्त्रोंमें विशेष ब्राह्मणको करते हैं। ग्रहोंकी अलग-अलग वस्तुएँ निर्धारित हैं। इस प्रकारके दानसे ग्रहोंको प्रसन्नता होती है और वे प्रकारके दानोंकी महिमा लिखी है। वर्षपर्यन्त प्रत्येक कुछ अंशोंमें शान्त भी हो जाते हैं। मासकी प्रत्येक तिथिमें कुछ-न-कुछ दान अपने ८-तुलादान-यह जीवनका महत्त्वपूर्ण दान है। सामर्थ्यानुसार देना ही चाहिये, तथापि चैत्रादि विशेष मासोंमें ऋतुपरिवर्तनकी दृष्टिसे उस मासकी प्रकृतिके प्राचीनकालमें तो राजालोग स्वर्णसे अपना तुलादान करते थे। शास्त्रोंमें विभिन्न द्रव्योंसे तुलादान करनेकी विधि अनुसार कुछ विशिष्ट वस्तुएँ दानमें दी जाती हैं। जैसे लिखी है तथा सबके अलग-अलग फल भी लिखे हैं, ग्रीष्म ऋतुमें तापनिवारणके लिये जलदान, छाता, पंखा आदिका दान, इसी प्रकार शीत ऋतुमें शीतबाधाके परंतु बिना किसी कामनाके भगवत्प्रीति प्राप्त करनेके उद्देश्यसे तुलादान करना विशेष कल्याणकारी है। निवारणके लिये वस्त्रदान, अग्निदान, लवण, गुड़, तिल, **९-पिण्डदान**—मृत्युके बाद मृत प्राणीकी सुख-घृत इत्यादि गर्म वस्तुओंका दान करना चाहिये। मेष

३४ $*$ दाने सर्वं क्रिक्सक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	प्रतिष्ठितम् * क्रम्मक्रमक्रमक्रमक्रमक्रमक्रमक्रमक्रमक्	्दानमहिमा –
	देय-द्रव्य	देवता
क्रमशः सत्तू तथा तिल एवं खिचड़ीके दान तो सामान्यतः	भूमि	- विष्णु
सुपरिचित ही हैं, पर इसके अतिरिक्त वर्षके प्रत्येक	गाय	रुद्र
न् महीनेमें शास्त्रानुसार किसी-न-किसी अन्न एवं पदार्थका	कुम्भ, कमण्डलु आदि जलपात्र	वरुण
दान करना चाहिये। इसकी व्यवस्था शास्त्रोंमें बतायी	समुद्रसे उत्पन्न रत्नादि पदार्थ	वरुण
गयी है।	स्वर्ण तथा सभी लौहपदार्थ	अग्नि
दानमें देय-वस्तुके देवता	सभी फसलें, पक्वान्न पदार्थ	प्रजापति
प्रकृतिके स्थूल-सूक्ष्म सभी रूपोंमें परमात्मा व्याप्त हैं—	सभी गन्धयुक्त पदार्थ	गन्धर्व
ईशावास्यमिदः सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् (शु॰यजु॰	विद्या तथा पुस्तक आदि	सरस्वती (ब्राह्मी)
४०।१)। उसीकी सत्तासे सभी सत्तावान् हैं, प्रतिष्ठित हैं,	शिल्पपदार्थ (बर्तन आदि)	विश्वकर्मा
चेतन हैं और आनन्दरूप हैं। वही एक तत्त्व विभिन्न रूपवाला	वृक्ष, पुष्प, शाक तथा फल	वनस्पति देवता
होकर अनेक देवरूपोंमें विभक्त है और पृथक्-पृथक् रूपसे	छत्र, शय्या, रथ, आसन,	
उन–उन पदार्थों तथा द्रव्योंके देवतारूपमें अधिष्ठित है।	उपानह तथा सभी प्राणरहित पदार्थ	आंगिरस
इस दृष्टिसे सभी पदार्थोंके अधिष्ठाता देवता भिन्न-भिन्न	गृह	सर्वदैवत्य (विश्वेदेव)
नाम-रूपवाले होते हैं। यथा प्रकृतिके स्थूलभूत पंचतत्त्वोंके	अन्य अनुक्त पदार्थ	विष्णु
अधिष्ठाता देवता क्रमशः इस प्रकार हैं—आकाशके देवता		———— योंके मन्त्र भी शास्त्रोंमें
विष्णु, अग्निके महेश्वरी, वायुके सूर्य, पृथ्वीके शिव तथा	दिये गये हैं, जिनका उपयोग दानवे	n समय करना चाहिये।
जलके देवता गणेश हैं। ऐसे ही तिथियोंके देवता हैं, नक्षत्रोंके	दान-सम्बन्धी आवश्यव	न ज्ञातव्य बातें
देवता हैं, पृथ्वीपरके जितने पदार्थ हैं, सबके अलग-अलग	गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने प	ारामर्श दिया है कि दान
देवता हैं। शास्त्रने यह विचार किया है कि दानमें जो वस्तु	चाहे जैसे भी दें, वह कल्याण ही	करता है— 'जेन केन
देय है, उसे देते समय संकल्पमें उस वस्तुके देवताका	बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान'	(रा०च०मा० ७।१०३
उल्लेख होना आवश्यक है। इसके लिये यह जानकारी	ख)। यह बात बहुत अच्छी है, म	हत्त्वपूर्ण है तथा दानके
होनी आवश्यक है कि किस वस्तुके देवता कौन हैं ? इसपर	लिये प्रेरणादायी भी है। इस वचन	से सद्विचारोंका प्रादुर्भाव
शास्त्रोंमें विस्तारसे विचार हुआ है। तैत्तिरीय आरण्यकमें	होता है और उदारता तथा त्यागवृत्ति	तका उदय होता है तथा
बताया गया है कि वस्त्रके देवता सोम हैं, गौके देवता रुद्र	दया एवं अनुकम्पाका भाव हृद	यमें जागता है तथापि
हैं, अश्वके देवता वरुण हैं, पुरुषके देवता प्रजापति हैं,	शास्त्रोंमें विधि-विधानसे दान देनेक	ी विशेष महिमा बतायी
शय्याके देवता मनु हैं, अजाके देवता त्वष्ट्रा हैं, मेषके	गयी है। दाता कैसा हो, ग्रहीता वै	hसा हो, देयद्रव्य कैसा
देवता पूषा हैं, इसी प्रकार अश्व और गर्दभके देवता निर्ऋति,	हो, देश-काल कौन-सा हो आदि ब	प्रातोंपर विस्तारसे विचार
हाथीके हिमवान्, माला तथा अलंकारके पदार्थींके गन्धर्व	किया गया है। इन बातोंकी आव	श्यक जानकारी अवश्य
तथा अप्सराएँ, धान्य पदार्थींके विश्वेदेव, अन्नके वाक् देवता,	होनी चाहिये, इस आशयसे दान-स	गम्बन्धी कुछ आवश्यक
ओदन (भात)-के ब्रह्मा, जलके समुद्र, यान आदिके	बातें यहाँ दी जा रही हैं—	
उत्तानांगिरस तथा रथके देवता वैश्वानर हैं।	१-जीवनकी अनित्यता हो	नेसे तत्क्षण दान देना
विष्णुधर्मोत्तरपुराणमें विस्तारसे द्रव्य-देवताओंका	चाहिये—मत्स्यपुराणने बताया है	कि जब कभी भी धन
उल्लेख आया है, जो उपयोगी होनेसे संक्षेपमें तालिकाके	पासमें आ जाय, जब कभी भी	मनमें दान देनेकी श्रद्धा
रूपमें यहाँ प्रस्तुत है—	उत्पन्न हो जाय, उसीको दानका मुख	य काल समझना चाहिये;

	विहंगम दृष्टि * क्रम्मक्रक्षक्रक्षक्रक्रक्षक्रक्षक्षक्रक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक्षक
क्योंकि जीवन अनित्य है, इसका कोई भरोसा नहीं है,	शेष शरीर योनिके अन्दर ही होता है तो एक तरफ बछड़े
किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है, मृत्यु किसीकी प्रतीक्षा	(बछिया)-का मुख तथा दूसरी ओर गौका मुख—इस
नहीं करती। अत: दान देनेमें विलम्ब नहीं करना चाहिये—	प्रकार दोनों तरफ मुख रहनेसे उस अवस्थामें वह गौ
यदा वा जायते वित्तं चित्तं श्रद्धासमन्वितम्।	उभयतोमुखी गौ (अर्धप्रसूता गौ) कहलाती है, ऐसी
तदैव दानकालः स्याद् यतोऽनित्यं हि जीवितम्॥	अवस्थामें गोदान करनेका बड़ा माहात्म्य है, दानग्रहणका
२- दानमहिमा —दानकी महिमा तो अनन्त है, तथापि	यही काल है, अत: उस समय कालका विचार नहीं
एकवचनमें बताया गया है कि दुर्भिक्षमें अन्नका दान	करना चाहिये—
करनेवाला तथा सुभिक्षमें स्वर्ण तथा वस्त्रदान करनेवाला—	अर्धप्रसूतां गां दद्यात् कालादि न विचारयेत्।
ये दो पुरुष सूर्यमण्डलका भी भेदन करके उच्चगतिको	कालः स एव ग्रहणे यदा स्याद् विमुखी तु गौः॥
प्राप्त करनेवाले हैं—	(दानविवेकोद्योतमें स्कन्दपुराण)
द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ।	(ख) मरणासन्न-अवस्थामें— आसन्न मृत्युवाले
दातान्नस्य च दुर्भिक्षे सुभिक्षे हेमवस्त्रदः॥	व्यक्तिको अथवा उसके पुत्र-पौत्रादिको तत्काल सवत्सा
् (मदनरत्न दानविवेकोद्योतमें नन्दिपुराणका वचन)	गौका दान तथा अन्तिम समयके दस महादान, अष्ट
३-प्रतिज्ञाकर न देनेसे पुण्यका क्षरण— वह्निपुराणमें	महादान, पंचधेनु और अन्न आदिके दानका संकल्प करना
बताया गया है कि दान देनेकी प्रतिज्ञा करके न देनेपर और	चाहिये। उस समय जो भी दान दिया जाता है, वह अक्षय
दिये गये दानका हरण कर लेनेसे जन्मभरका जो पुण्य	हो जाता है। यदि प्रत्यक्ष वस्तुकी उपलब्धता न हो तो
संचित किया गया रहता है, वह सब नष्ट हो जाता है—	निष्क्रय भी कर सकते हैं।
प्रतिश्रुताप्रदानेन दत्तस्य हरणेन च।	(ग) भूख-प्यासकी स्थितिमें —विष्णुधर्मीत्तरपुराणमें
जन्मप्रभृति यत्पुण्यं तत्सर्वं विप्रणस्यति॥	बताया गया है कि भूखे व्यक्तिको अन्नका दान करने तथा
४-रातमें दान न करे —स्कन्दपुराणमें बताया गया	प्यासे व्यक्तिको जल पिलानेमें कालका विचार नहीं करना
है कि सामान्यतः रातमें दान नहीं किया जाना चाहिये;	चाहिये—
क्योंकि ऐसे दानका फल राक्षस ले लेते हैं और वह दाताके	न हि कालं प्रतीक्षेत जलं दातुं तृषान्विते।
लिये भयावह होता है—	अन्नोदकं सदा देयमित्याह भगवान् मनुः॥
रात्रौ दानं न कर्तव्यं कदाचिदिप केनचित्।	(घ) नालच्छेदनसे पूर्व —पुत्रोत्पत्ति होनेपर
हरन्ति राक्षसा यस्मात् तस्मात् दातुर्भयावहम्॥	नालच्छेदनसे पूर्व अशौचकी प्रवृत्ति नहीं होती, अत: उस
किंतु यह निषेध ग्रहण आदि पर्वोंके नैमित्तिक दान	समय (जातकर्मसंस्कारमें) तत्काल दान देना चाहिये—
तथा काम्यव्रतोंके व्रतांगभूत दानको छोड़कर सामान्य दानके	अच्छिन्ननाड्यां यद्दत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः।
लिये हैं।	संस्कारेषु च यद्दत्तं तदक्षय्यमुदाहृतम्॥
५-दानके लिये पुण्यकाल—सामान्यरूपसे दानमें	(विष्णुधर्मो०पु०)
किसी निमित्तरूपी पुण्यकालकी अपेक्षा रहती है तथापि	(ङ) भयको स्थितिमें — कोई व्यक्ति भयकी स्थितिमें
कुछ ऐसे दान हैं, जिनमें किसी देश-काल आदिकी अपेक्षा	हो तो तत्काल उसे अभयदान देना चाहिये—
नहीं रहती, ये अवसरप्राप्त दान हैं, कुछ यहाँ दिये जाते हैं—	अभयस्य प्रदाने तु नात्र कार्या विचारणा॥
(क) उभयतोमुखी गोका दान —गोमाता जब	(विष्णुधर्मो०पु०)
प्रसव कर रही होती हैं, तब वत्स जब योनिद्वारसे बाहर	६-अपमानपूर्वक दान न दे —अपमान करके दान
निकलनेके लिये मुखकी ओरसे बाहर निकला रहता है,	नहीं देना चाहिये; क्योंकि कोई ऐसा करता है तो ऐसेमें

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् िदानमहिमा-वह दाता ही दोषभागी होता है-नाधिकारी मुक्तकच्छो मुक्तचूडस्तथैव च। प्रतिग्रहे यज्ञब्रह्मयज्ञादिकर्मसु॥ नावज्ञया प्रदातव्यं किंचिद् वा केनचित् क्वचित्। १२-सत्कर्ममें कैसा वस्त्र पहने — ब्रह्माण्डपुराणमें अवज्ञया हि यद्दत्तं दातुस्तद्दोषमावहेत्॥ उल्लेख है कि सभी सत्कर्मोंमें धोतीके साथ उत्तरीय वस्त्र ७-क्रोध करके न दे-शिवधर्मीत्तरपुराणने बताया (गमछा, चादर) अवश्य धारण करना चाहिये, जो धुला है कि दान, व्रत, नियम, ज्ञान, ध्यान, होम, जप आदि न हो तथा धोबीके द्वारा धुला हो, ऐसा वस्त्र नहीं पहनना अत्यन्त प्रयत्नपूर्वक किये जानेपर भी यदि क्रुद्धावस्थामें चाहिये-किये जाते हैं तो किया हुआ सारा प्रयत्न व्यर्थ हो जाता है-सोत्तरीयस्ततः कुर्यात् सर्वकर्माणि भावतः। अधौते कारुधौते च परिदध्यात् न वाससी॥ दानव्रतानि नियमा ज्ञानं ध्यानं हुतं जपः। १३-गीले वस्त्रोंसे जप-होम-प्रतिग्रह आदि न यत्नेनापि कृतं सर्वं क्रोधितस्य वृथा भवेत्॥ ८-अपवित्र अवस्थामें न दे-हारीतस्मृतिमें बताया करे—महर्षि आपस्तम्बका कहना है कि गीले वस्त्र गया है कि जो शौचाचारसे भ्रष्ट है, उसके स्नान, दान, पहनकर जप, होम, दानग्रहण आदि न करे, साथ ही तप, त्याग, मन्त्रजप, विहितकर्म तथा मांगलिक आचारके हाथोंको घुटनोंसे बाहर न करे। ऐसा करके यदि दान आदि नियम—ये सभी कर्म निष्फल होते हैं— किया जाता है तो वह सब राक्षसोंको प्राप्त होता है— स्नानं दानं तपस्त्यागो मन्त्रकर्म विधिक्रिया। आर्द्रवासस्तु यः कुर्यात् जपहोमप्रतिग्रहम्। मङ्गलाचारनियमाः शौचाद् भ्रष्टस्य निष्फलाः॥ सर्वं तद्राक्षसं विद्याद् बहिर्जानु च यत् कृतम्॥ **९-दानमें अँगुठेकी स्थिति**—वायुपुराणने निर्देश १४-दानमें एक वस्त्रका निषेध—विष्णुपुराणमें दिया है कि दान, प्रतिग्रह, होम, भोजन, बलिवैश्वदेव बताया गया है कि होम, देवार्चन, आचमन, पुण्याहवाचन, आदि सत्कर्मोंके समय हाथका अँगूठा अँगुलियोंसे मिला जप तथा दान आदि सत्कर्म एक वस्त्र (केवल धोती) रहे। अर्थात् सभी अँगुलियाँ मिली रहनी चाहिये। ऐसा धारणकर नहीं करने चाहिये-न करनेपर वह दान आदि क्रिया असुरोंको प्राप्त हो होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा। जाती है-नैकवस्त्रः प्रवर्तेत द्विजवाचनिके जपे॥ १५-दानमें प्रौढ़पाद होकर न बैठे- महर्षि शाङ्खायनने दानं प्रतिग्रहो होमो भोजनं बलिरेव च। बताया है कि दान, आचमन, होम, भोजन, देवतार्चन, साङ्गष्ठेन सदा कार्यमसुरेभ्योऽन्यथा भवेत्॥ १०-दानके समय दोनों हाथ घुटनोंके अन्दर स्वाध्याय, पितृतर्पण आदि सत्कर्मोंमें प्रौढपाद (उकड़ें) रहें - दान आदि देते समय दोनों हाथोंको घुटनोंके बाहर होकर न बैठे-नहीं रखना चाहिये, ऐसे ही आचमन करते समय भी हाथ दानमाचमनं होमं भोजनं देवतार्चनम्। घुटनोंके अन्दर रहें-प्रौढपादो न कुर्वीत स्वाध्यायं पितृतर्पणम्॥ १६-दानमें कुश और यज्ञोपवीतकी महिमा-एतान्येव च कार्याणि दानादीनि विशेषतः। अन्तर्जानु विधेयानि तद्वदाचमनं नृप॥ छन्दोगपरिशिष्टमें महर्षि कात्यायनके एक वचनमें बताया ११-कच्छरहित तथा खुली शिखावाला दानका गया है कि कुशके पवित्र आसनपर बैठनेवाले तथा अधिकारी नहीं — ब्रह्माण्डपुराणने यह बताया है कि यज्ञोपवीत धारण करनेवालेको ही दान देना चाहिये अथवा धोतीमें खुले हुए कच्छवाला तथा खुली शिखावाला व्यक्ति दान ग्रहण करना चाहिये। अन्यथा वह विफल हो जाता है— न तो दान देनेका अधिकारी होता है और न दान लेनेका। कुशोपरि निविष्टेन तथा यज्ञोपवीतिना। ऐसींक्रिपेश्रंहम्यू-Disperd Server सम्भानः //deeagg/dharma र्यं MARE/MITHUDVE BX Aviaa shirt

1ङ्क] $*$ दान—एक विहंगम दृष्टि $*$ ३५		
<u>ष्कष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष्ठकष</u>	_{ष्या ।} महाराजजीने वार्ता करते-करते उन ब्राह्मणदेवताको	
एक वचनमें कहा गया है कि दान देते समय दाताका मुख		
_	संकेत किया कि शाल तुम ले लो। उस ब्राह्मणने	
पूर्व दिशाकी ओर होना चाहिये और दानग्रहण करनेवालेका मुख उत्तरकी ओर होना चाहिये। इससे दाता और	प्रसन्नतापूर्वक उसे स्वीकार भी कर लिया। वह श्रद्धालु देख रहा था। उसे यह देखकर क्षोभकी अनुभूति हुई।	
मुख उत्तरका आर हाना चाहिया इसस दाता आर प्रतिग्रहीता दोनोंकी आयुकी वृद्धि होती है—	उसने महाराजजीसे पुनः निवेदन किया—महाराज! यह	
· ·	शाल तो मैं आपके लिये लाया था, आपको इसका उपयोग	
दद्यात् पूर्वमुखो दानं गृह्णीयादुत्तरामुखः।	करना चाहिये। स्वामीजी महाराजने मुसकराते हुए उस	
आयुर्विवर्धते दातुर्ग्रहीतुः क्षीयते न तत्॥	ब्राह्मणको पुन: संकेत किया कि यह शाल इन्हें वापस दे	
१८-नाम-गोत्रका उच्चारण— वृद्धवसिष्ठजीने बताया	दो। वह श्रद्धालु व्यक्ति आश्चर्यचिकत हो महाराजकी ओर	
है कि दानमें देनेवालेको केवल अपने नाम तथा गोत्रका	देखने लगा। स्वामीजी महाराजने अपने उस भक्तसे बड़े	
उच्चारण करना चाहिये, किंतु कन्यादानमें पिता, पितामह	·	
तथा प्रपितामह—इस प्रकार तीन पीढ़ियोंका नामगोत्रोच्चार	स्नेहपूर्वक कहा—तुमने यह वस्तु मुझे दी तो सही, परंतु अभीतक तुम्हारी आसक्ति इस वस्तुसे मिटी नहीं है। किसी	
करना चाहिये—	वस्तुको दे देनेके बाद उस वस्तुका क्या उपयोग करना	
नामगोत्रे समुच्चार्य सम्प्रदानस्य चात्मनः।	चाहिये—यह तो मेरे विचार करनेकी बात है। अभी इसमें	
सप्रदेयं प्रयच्छन्ति कन्यादाने तु पुंस्त्रयम्॥		
१९-दानकी चर्चासे दानका फल नष्ट हो जाता	तुम्हारी ममता होनेके कारण मैंने इसे तुम्हें वापस दिलवाया।	
है—मनुस्मृतिमें बताया गया है कि असत्य बोलनेसे यज्ञ	उस श्रद्धालु व्यक्तिको महाराजजीसे एक सीख मिली और	
नष्ट हो जाता है, विस्मयसे तपस्या नष्ट हो जाती है,	उसने पुन: आग्रहपूर्वक उस शालको महाराजजीके आज्ञानुसार	
ब्राह्मणको दुर्वचन कहनेसे आयु नष्ट हो जाती है और	उन ब्राह्मणदेवताको प्रदान कर दिया।	
दानकी चर्चा करने (मैंने यह दान दिया आदि कहने)-	दानकी मार्मिक बात	
से दानका फल नष्ट हो जाता है—	दानकी महत्तामें बड़ा रहस्य छिपा है। वास्तवमें	
यज्ञोऽनृतेन क्षरित तपः क्षरित विस्मयात्।	प्रत्येक सत्कार्य दान है। यदि हम अपने भाईको अपनी	
आयुर्विप्रापवादेन दानं तु परिकीर्तनात्॥	मुसकराहटसे आनन्दित करते हैं तो ऐसा करना भी दान	
दानके सम्बन्धमें कुछ सूक्ष्म बातें	है। यदि हम अपने संगी-साथीको अथवा किसी अन्य	
दानके सम्बन्धमें कुछ सूक्ष्म बातें हैं, जो बड़े	व्यक्तिको सत्कर्मकी प्रेरणा देते हैं या उसके हितमें कोई	
महत्त्वकी हैं। दान की हुई वस्तुसे दानदाताकी आसक्ति	सत्परामर्श देते हैं तो यह भी दान है। भूले-भटके	
और उसके मोहका समापन तथा उस वस्तुसे दानग्रहीताकी	मुसाफिरको सही मार्गपर पहुँचाना, अन्धे व्यक्तिको मार्ग	
नि:स्पृहताका उदाहरण नीचे लिखी एक सत्य घटनासे	बताना, सड़कपर पड़े पत्थरों, काँटों और अन्यान्य दु:खदायी	
स्पष्ट हो सकेगा—	बाधाओंको हटाना, भूखेको अन्न और प्यासेको जल देना	
पूर्वमें ज्योतिष्पीठके शंकराचार्य ब्रह्मलीन स्वामी	यह सब दानकी कोटिमें ही तो है। महाभारतकी एक	
श्रीकृष्णबोधाश्रमजी महाराज अपने स्थानपर विराजमान थे,	कथा है—	
उनका एक अत्यन्त श्रद्धालु भक्त जो सम्पन्न परिवारका	महाराज युधिष्ठिरका बहुप्रशंसित अश्वमेध यज्ञ	
था, कश्मीर आदि स्थानोंकी यात्रा करके आया था। उसने	प्राय: समाप्त हो रहा था। उनके सत्य और क्षमताकी धाक	
कश्मीरकी एक कीमती शाल अपने श्रद्धास्पद महाराजजीको	दूर-दूर देशोंपर छा रही थी। उनका यश चतुर्दिक् व्याप्त	
समर्पित की। स्वामीजी महाराज शाल देखकर अत्यन्त	हो रहा था। उसी समयकी बात है। कुछ ब्राह्मण और यज्ञ	
प्रसन्न हुए। उनके पास एक सत्पात्र निर्धन ब्राह्मण बैठा	करानेवाले एक स्थानपर बैठे उनके उस अश्वमेध यज्ञकी	

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− प्रशंसा कर रहे थे। उनका मत था कि ऐसा यज्ञ और ऐसा अपने धर्मके प्रभावसे सशरीर स्वर्गमें चलो। क्लेशमें भी जब मनुष्यमें दानविषयक रुचि जाग्रत् दान न पृथ्वीपर कभी हुआ, न होगा। उसी समय वहाँ कहींसे चलकर एक नेवला आ होती है, तब उसका धर्म बढ़ता है। विशेष समय, पात्र गया। वह एक विचित्र नेवला था। उसकी आँखें नीली थीं एवं श्रद्धाके संयोगसे तो उसका महत्त्व और भी अधिक और उसके शरीरके एक ओरका भाग सोनेका था। वहाँ हो जाता है। स्वर्गका द्वार अत्यन्त सूक्ष्म है, पर मोहाच्छन्न पहुँचते ही उसने वज्र-तुल्य भयंकर गर्जना की, जिससे मनुष्य उसे देख नहीं पाता। महाराज रन्तिदेव शुद्ध समस्त मृग-पक्षीगण भयभीत हो गये। इसके बाद वह हृदयसे केवल जलके दानसे ही स्वर्ग चले गये थे, मनुष्यकी भाषामें कहने लगा—'राजाओ! तुम्हारा यह यज्ञ पर अन्यायोपार्जित धनके दानका कोई अर्थ नहीं है। इसीलिये नृगको नरकमें जाना पड़ा। तुम्हारे दानकी कुरुक्षेत्रवासी एक उञ्छवृत्तिधारी ब्राह्मणके दिये हुए सेरभर सत्तुके तुल्य भी नहीं है।' इसपर सभी ब्राह्मण तथा अन्य तुलना अनेक यज्ञोंसे भी सम्भव नहीं, अत: तुम लोग भी आश्चर्यमें पड़ गये। ब्राह्मणगण उसे घेरकर खड़े ब्रह्मलोकको जाओ। यह दिव्य विमान तुम्हारे सामने हो गये तथा पूछने लगे—'तुम कौन हो और यहाँ कैसे उपस्थित है। मेरी ओर देखो, मैं साक्षात् धर्म हूँ। तुम पहुँच गये, जो इस यज्ञकी निन्दा कर रहे हो?' सभी सानन्द इस विमानपर चढो।' नेवलेने कहा—'ब्राह्मणो! मैंने जो कुछ कहा है, सच इस तरह उन सभीके सशरीर स्वर्ग जानेपर मैं उस है; आपलोग धैर्यसे सुनें। कुछ दिन पहले कुरुक्षेत्रमें एक बिलसे निकला और उन शक्तुकणोंके स्पर्श एवं घ्राणसे, ब्राह्मण रहते थे। उनके परिवारमें स्त्री, पुत्र और पुत्रवधूके जल-कीचड़के सम्पर्कसे और स्वर्गसे गिरे हुए दिव्य सिहत चार व्यक्ति थे। वे अनाज काट लेनेके बाद खेतोंसे पुष्पोंके रौंदनेसे मेरा सिर एवं पार्श्व स्वर्णिम हो गया। तबसे दाने चुनकर उञ्छवृत्तिसे सपरिवार अपने जीवनका निर्वाह में अनेक यज्ञोंमें घूमा, फिर यहाँ आया; पर मेरा शेष शरीर करते थे। उनका प्रति तीन दिन बाद ही सपरिवार सोनेका न हुआ। अत: यह यज्ञ उस सेरभर सत्तूके दानके भोजनका नियम था। एक बार वहाँ बड़ा भीषण दुर्भिक्ष तुल्य नहीं है। पड़ा। इसमें कई तीन दिन निकल जानेपर भी उन्हें अन्न इस कथासे स्पष्ट हो जाता है कि दान और प्राप्त न हुआ। अन्तमें किसी दिन उन्हें एक सेर जौ मिला, त्यागमें परिमाणका उतना महत्त्व नहीं है; जिस वृत्तिसे जिससे उन्होंने सत्तू तैयार किया। फिर उससे अग्निहोत्र दान दिया गया है, उसीका विशेष महत्त्व है। यदि करके एक-एक पाव बाँटकर खानेके लिये वे उद्यत हुए। दानके पीछे यशकी लिप्सा है या अहंभाव है तो वह इसी बीच वहाँ एक ब्राह्मण अतिथि आ गया। तब दान दान होकर भी उच्चकोटिका नहीं हो सकता। दानमें विधिपूर्वक पाद्य-अर्घ्य आदिसे उसकी पूजा करके ब्राह्मणने देनेका गर्व, यहाँतक कि भाव भी न हो तो वह महान् उसे एक पाव सत्तू भोजनके लिये दिया, पर अतिथि उससे दान है। यह अनुभूति कि 'सब कुछ प्रभुका है, मेरा तृप्त न हुआ और क्रमश: वह सबके भागका सत्तू ग्रहण अपना कुछ नहीं है', दानको सात्त्विक बनाती है। 'सब कर लिया। वास्तवमें धर्म ही उस ब्राह्मण-अतिथिके रूपमें कुछ उन्हींका है, उन्हींकी सत्प्रेरणासे यह कार्य हो रहा उपस्थित थे। वे प्रवचनमें अत्यन्त कुशल थे, अतः प्रसन्न है, इसलिये उन्हींकी कृपासे यह पुण्य कार्य हुआ और होकर उन्होंने ब्राह्मणसे कहा कि 'द्विजश्रेष्ठ! तुम्हारे इस में धन्य हुआ, मेरा धन-धान्य या पौरुष सफल हुआ'— यही भावना दानमें होनी चाहिये। श्रेष्ठ दानसे मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ। देखो, आकाशसे भूतलपर यह पुष्पोंकी वर्षा हो रही है और देवगण तुम्हारे दान धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी दानसे विस्मित हो तुम्हारी स्तुति कर रहे हैं। तुम्हारे समस्त प्राप्तिका सर्वश्रेष्ठ साधन है— पितृगण तर गये। अनेक युगोंतक आगे होनेवाली सन्तानें 'धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्।' - राधेश्याम खेमका भी तुम्हारे इस पुण्यके प्रतापसे तर जायँगी। अब तुम सभी

दानमाहमा-अङ्क दानमाहमा-अङ्क दानमाहमा-अङ्क दानमाहमा-अङ्क दानमहिमा-अङ्कः''दानमहिमा-अङ्कः''दानमहिम्।-अङ्कः दानमाहमा-अङ्क दानमाहमा-अङ्क दानमहिमा-अङ्कः' दानमहिमा-अङ्क दानमहिमा-अङ्क दानमहिष्य दानमहिष्य दानमहिमा-अङ्क हमा−अङ्क दानमहिमा-अङ्क दानमहिमा-अङ्क ''दानमहिमा-अङ''दानमाहेमा-अङ दानमाहमा-अङ दानमाहमा-अङ <u>टानमहिमा-अङ</u>

आभ्युद्यिक अभ्यर्थना

उदिह्यदिहि सूर्य वर्चसा माभ्यदिहि। यांश्च पश्यामि यांश्च न तेषु मा सुमतिं कृधि तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पूर्णीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥१॥ हे सूर्य! उदयको प्राप्त होइये, उदयको प्राप्त होइये और अपने तेजसे मुझे प्रकाशित कीजिये। जिन प्राणियोंको में देखता हूँ और जिनको नहीं भी देखता—उनके विषयमें मुझे सुमितवाला कीजिये।आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें ॥ १ ॥ त्वं न इन्द्र महते सौभगायादब्धेभिः परि

पाह्यक्तभिस्तवेद् विष्णो बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पशुभिर्विश्वरूपै: सुधायां मा धेहि परमे

व्योमन्॥ २॥ हे इन्द्र! आप हम सबको बडे सौभाग्यके लिये

आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥२॥ त्विमन्द्रस्त्वं महेन्द्रस्त्वं लोकस्त्वं प्रजापति:। तुभ्यं यज्ञो वि तायते तुभ्यं जुह्वति जुह्वतस्तवेद् विष्णो

न दबनेवाले प्रकाशोंसे सब ओरसे सुरक्षित रखें। आप

हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम

बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पुणीहि पशुभिर्विश्वरूपैः सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥ ३॥

हे देव! आप इन्द्र हैं, आप महेन्द्र हैं, आप लोक— प्रकाशपूर्ण हैं, आप प्रजापालक हैं, यज्ञ आपके लिये

फैलाया जाता है और हवन करनेवाले आपके लिये आहृतियाँ देते हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे

पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥ ३॥ असति सत् प्रतिष्ठितं सति भृतं प्रतिष्ठितम्। भृतं

ह भव्यं आहितं भव्यं भूते प्रतिष्ठितं तवेद् विष्णो

बहुधा वीर्याणि। त्वं नः पृणीहि पश्भिर्विश्वरूपैः

सुधायां मा धेहि परमे व्योमन्॥४॥ हे देव! आप असत्में अर्थात् प्राकृतिक विश्वमें सत्

अर्थात् आत्मा हैं, सत्में अर्थात् आत्मामें उत्पन्न हुए जगत्

हैं, भूत होनेवालेमें आश्रित हैं, होनेवाले भूतमें प्रतिष्ठित

हुए हैं। आप हमें अनेक रूपवाले पशुओंसे पूर्ण करें और परम आकाशमें मुझे अमृतमें धारण करें॥४॥ शुक्रोऽसि भ्राजोऽसि। स यथा त्वं भ्राजता

भ्राजोऽस्येवाहं भ्राजता भ्राज्यासम्॥५॥ आप तेजस्वी हैं. आप प्रकाशमय हैं. जैसे आप

तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं तेजसे प्रकाशित होऊँ॥५॥ रुचिरसि रोचोसि। स यथा त्वं रुच्या रोचोऽस्येवाहं

पश्भिश्च ब्राह्मणवर्चसेन च रुचिषीय॥६॥ आप प्रकाशमान हैं, आप देदीप्यमान् हैं, जैसे

आप तेजसे तेजस्वी हैं, वैसे ही मैं पशुओं और ज्ञानके तेजसे प्रकाशित होऊँ॥६॥

उद्यते नम उदायते नम उदिताय नमः। विराजे

नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥ १०॥ उदित होनेवालेको नमस्कार है, ऊपर आनेवालेके लिये

प्रकाशमानको नमस्कार है, अपने तेजसे चमकनेवालेको नमस्कार है, उत्तम प्रकाशयुक्तको नमस्कार है॥७॥ अस्तंयते नमोऽस्तमेष्यते नमोऽस्तमिताय नमः।

नमस्कार है, उदयको प्राप्त हुएको नमस्कार है, विशेष

विराजे नमः स्वराजे नमः सम्राजे नमः॥८॥

अस्त होनेवालेको नमस्कार है, अस्तको जानेवालेको नमस्कार है, अस्त हुएको नमस्कार है, विशेष तेजस्वी,

उत्तम प्रकाशमान और अपने तेजसे प्रकाशित होनेवालेको नमस्कार है॥८॥[अथर्ववेद]

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् िदानमहिमा− १८ धनान्नदानसूक्त [ऋग्वेदके दशम मण्डलका ११७वाँ सूक्त जो कि 'धनान्नदानसूक्त' के नामसे प्रसिद्ध है, दानकी महत्ता प्रतिपादित करनेवाला एक भव्य सूक्त है। इसके मन्त्र उपदेशपरक एवं नैतिक शिक्षासे युक्त हैं। सूक्तसे यही तथ्य प्राप्त होता है कि लोकमें दान तथा दानीकी अपार महिमा है। धनीके धनकी सार्थकता उसकी कृपणतामें नहीं, वरन दानशीलतामें मानी गयी है। यहाँ मन्त्रोंको अनुवादसहित दिया जा रहा है—1 न वा उ देवाः क्षुधिमद्वधं ददुरुताशितमुप गच्छन्ति मृत्यवः। उतो रियः पृणतो नोप दस्यत्युतापृणन् मर्डितारं न विन्दते॥१॥ य आधाय चकमानाय पित्वो ऽन्नवान्त्सन् रिफतायोपजग्मुषे। स्थिरं मनः कृणुते सेवते पुरोतो चित् स मर्डितारं न विन्दते॥२॥ स इद् भोजो यो गृहवे ददात्यन्नकामाय चरते कृशाय। अरमस्मै भवति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥३॥ न स सखा यो न ददाति सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः।

अरमस्मै भविति यामहूता उतापरीषु कृणुते सखायम्॥३॥ न स सखा यो न ददाित सख्ये सचाभुवे सचमानाय पित्वः। अपास्मात् प्रेयान्न तदोको अस्ति पृणन्तमन्यमरणं चिदिच्छेत्॥४॥ पृणीयादिन्नाधमानाय तव्यान् द्राघीयांसमनु पश्येत पन्थाम्। ओ हि वर्तन्ते रथ्येव चक्रा ऽन्यमन्यमुप तिष्ठन्त रायः॥५॥

नार्यमणं पुष्यित नो सखायं केवलाघो भवित केवलादी॥६॥ कृषिन्नित् फाल आशितं कृणोति यन्नध्वानमप वृङ्क्ते चिरित्रैः। वदन् ब्रह्मावदतो वनीयान् पृणन्नापिरपृणन्तमभि ष्यात्॥७॥ एकपाद् भूयो द्विपदो वि चक्रमे द्विपात् त्रिपादमभ्येति पश्चात्। चतुष्पादेति द्विपदामभिस्वरे संपश्यन् पङ्क्तीरुपतिष्ठमानः॥८॥ समौ चिद्धस्तौ न समं विविष्टः संमातरा चिन्न समं दुहाते।

मोघमन्नं विन्दते अप्रचेताः सत्यं ब्रवीमि वध इत् स तस्य।

यमयोश्चिन्न समा वीर्याणि ज्ञाती चित् संतौ न समं पृणीतः॥९॥ देवोंने भूख देकर प्राणियोंका (लगभग) वध कर डाला। जो अन्न देकर भूखकी ज्वाला शान्त करे, वही दाता है। भूखेको न देकर जो स्वयं भोजन करता है, एक दिन मृत्यु उसके प्राणोंको हर ले जाती है। देनेवालेका धन कभी नहीं घटता, उसे ईश्वर देता है। न देनेवाले कृपणको किसीसे सुख प्राप्त नहीं होता॥१॥ अन्नकी इच्छासे द्वारपर आकर हाथ फैलाये विकल व्यक्तिके प्रति जो अपना मन कठोर बना

होता॥ १॥ अन्नको इच्छास द्वारपर आकर हाथ फलाय विकल व्यक्तिक प्रांत जो अपना मन कठार बना लेता है और अन्न होते हुए भी देनेके लिये हाथ नहीं बढ़ाता तथा उसके सामने ही उसे तरसाकर खाता है, उस महाक्रूरको कभी सुख प्राप्त नहीं होता॥ २॥ घर आकर माँग रहे अति दुर्बल शरीरके याचकको जो

अस महाक्रूरका कमा सुख प्राप्त नहीं होता। रें।। वर आकर मार्ग रहें आते दुषले शरीरक याचकका आ भोजन देता है, उसे यज्ञका पूर्ण फल प्राप्त होता है तथा वह अपने शत्रुओंको भी मित्र बना लेता है।। ३॥ मित्र अपने अंगके समान होता है। जो अपने मित्रको माँगनेपर भी नहीं देता, वह उसका मित्र नहीं है। उसे छोड़कर दूर चले जाना चाहिये। वह उसका घर नहीं है। किसी अन्य देनेवालेकी शरण लेनी

चर्मिश्रिभांडूण Uiscord केक्रveshttiresi/ds्तकाउद्गिताकुं, चिल्लाविक एश्वामिस्चि अस्तिकारकारके

* दान-सुभाषितावली * अङ्क] प्रशस्त दिखायी देता है। वैभव-विलास रथके चक्रकी भाँति आते-जाते रहते हैं। किसी समय एकके पास सम्पदा रहती है तो कभी दूसरेके पास रहती है॥५॥ जिसका मन उदार न हो, वह व्यर्थ ही अन्न पैदा करता है। संचय ही उसकी मृत्युका कारण बनता है। जो न तो देवोंको और न ही मित्रोंको तृप्त करता है, वह वास्तवमें पापका ही भक्षण करता है॥६॥ हलका उपकारी फाल खेतको जोतकर किसानको अन्न देता है। गमनशील व्यक्ति अपने पैरके चिह्नोंसे मार्गका निर्माण करता है। बोलता हुआ ब्राह्मण न बोलनेवालोंसे श्रेष्ठ होता है॥७॥ एकांशका धनिक दो अंशके धनीके पीछे चलता है। दो अंशवाला भी तीन अंशवालेके पीछे छूट जाता है। चार अंशवाला पंक्तिमें सबसे आगे चलता हुआ सबको अपनेसे पीछे देखता है। अत: वैभवका मिथ्या अभिमान न करके दान करना चाहिये॥८॥ दोनों हाथ एकसमान होते हुए भी समान कार्य नहीं करते। दो गायें समान होकर भी समान दूध नहीं देतीं। दो जुड़वाँ सन्तानें समान होकर भी पराक्रममें समान नहीं होतीं। उसी प्रकार एक कुलमें उत्पन्न दो व्यक्ति समान होकर भी दान करनेमें समान नहीं होते॥९॥[ऋक्० १०।११७] दान-सुभाषितावली यद्दाति विशिष्टेभ्यो यच्चाश्नाति दिने दिने। वह धन व्यर्थ ही है, क्योंकि जिस शरीरकी रक्षाके लिये तच्च वित्तमहं मन्ये शेषं कस्यापि रक्षति॥ धन बढानेका उपक्रम किया जाता है-वह शरीर ही जो विशिष्ट सत्पात्रों को दान देता है और जो कुछ अस्थिर है, नश्वर है, इसलिये धर्मकी ही वृद्धि करनी अपने भोजन-आच्छादनमें प्रतिदिन व्यवहृत करता है, चाहिये, धनकी नहीं। धनके द्वारा दान आदि करके उसीको मैं उस व्यक्तिका वास्तविक धन या सम्पत्ति धर्मकी वृद्धिका उपक्रम करना चाहिये, निरन्तर धन मानता हूँ, अन्थया शेष सम्पत्ति तो किसी अन्यकी है, बढानेसे कोई लाभ नहीं। जिसकी वह केवल रखवालीमात्र करता है। अशाश्वतानि गात्राणि विभवो नैव शाश्वतः। नित्यं संनिहितो मृत्युः कर्तव्यो धर्मसंग्रहः॥ यद्दाति यदश्नाति तदेव धनिनो धनम्। 'शरीरधारियोंके शरीर नश्वर हैं और धन भी सदा अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि॥ दानमें जो कुछ देता है और जितनेमात्रका वह साथ रहनेवाला नहीं है; साथ ही मृत्यु भी निकट ही स्वयं उपभोग करता है, उतना ही उस धनी व्यक्तिका सिरपर बैठी है'—ऐसा समझकर प्रतिक्षण धर्मका संग्रह— अपना धन है। अन्यथा मर जानेपर उस व्यक्तिके स्त्री, धर्माचरण ही करना चाहिये; क्योंकि कालका क्या ठीक धन आदि वस्तुओंसे दूसरे लोग आनन्द मनाते हैं कब आ जाय, अतः अपने धन एवं समयका सदा अर्थात् मौज उड़ाते हैं। तात्पर्य यह है कि सावधानीपूर्वक सदुपयोग ही करना चाहिये। अपनी धन-सम्पत्तिको दान आदि सत्कर्मोंमें व्यय करना यदि नाम न धर्माय न कामाय न कीर्तये। चाहिये। यत् परित्यज्य गन्तव्यं तद्धनं किं न दीयते॥ किं धनेन करिष्यन्ति देहिनोऽपि गतायुषः। जो धन धर्म, सुखभोग या यश—किसी काममें नहीं आता और जिसे छोड़कर एक दिन यहाँसे अवश्य यद्वर्धयितुमिच्छन्तस्तच्छरीरमशाश्वतम् जब आयुका एक दिन अन्त निश्चित है तो फिर ही चले जाना है, उस धनका दान आदि धर्मोंमें उपयोग धनको बढ़ाकर उसे रखनेकी इच्छा करना मूर्खता ही है, क्यों नहीं किया जाता?

२० st दाने ϵ	र्वं प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा- क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
जीवन्ति जीविते यस्य विप्रा मित्राणि बान्धवाः।	शतेषु जायते शूरः सहस्रेषु च पण्डितः।
जीवितं सफलं तस्य आत्मार्थे को न जीवित॥	वक्ता शतसहस्रेषु दाता भवति वा न वा॥
जिस व्यक्तिके जीनेसे ब्राह्मण, साधु-सन्त, मि	ा, शूरवीर व्यक्ति तो सौमेंसे खोजनेपर एक प्राप्त हो
बन्धु-बान्धव आदि सभी जीते हैं—जीवन धारण कर	ते जाता है, हजारमें ढूँढ़नेपर एक विद्वान् व्यक्ति भी मिल
हैं, उसी व्यक्तिका जीवन सार्थक है—सफल है; क्योंवि	n जाता है, इसी प्रकार एक लाखमें सभापर नियन्त्रण
अपने लिये कौन नहीं जीता ? पशु–पक्षी आदि क्षुद्र प्राप	ी करनेवाला कोई वक्ता भी प्राप्त हो जाता है, किंतु असली
भी जीवित रहते ही हैं, अत: स्वार्थी न बनकर परोपका	ी दाता खोजनेपर भी मिल जाय, यह निश्चयपूर्वक नहीं
बनना चाहिये।	कहा जा सकता, अर्थात् दानी व्यक्ति संसारमें सबसे
क्रिमयः किं न जीवन्ति भक्षयन्ति परस्परम्।	अधिक दुर्लभ है।
परलोकाविरोधेन यो जीवति स जीवति॥	न रणे विजयाच्छूरोऽध्ययनान्न च पण्डितः।
कीड़े-मकोड़े भी एक-दूसरेका भक्षण करते हु	ए इन्द्रियाणां जये शूरो धर्मं चरति पण्डितः॥
क्या जीवन नहीं धारण करते ? पर यह जीवन प्रशंसनी	य शूरवीर वही है जो वास्तवमें इन्द्रियोंपर विजय प्राप्त
नहीं है। परलोकके लिये दान–धर्मपूर्वक जिया गया ज	ो करता है, युद्धमें विजय प्राप्त करनेवाला असली शूरवीर
जीवन है, वही सच्चा जीवन है।	नहीं है। मात्र शास्त्रोंका अध्ययन करनेवाला ज्ञानी नहीं है,
पशवोऽपि हि जीवन्ति केवलात्मोदरम्भराः।	बल्कि तदनुकूल धर्माचरण करनेवाला ही सच्चा ज्ञानी है।
किं कायेन सुपुष्टेन बलिना चिरजीविन:॥	सर्वेषामप्युपायानां दानं श्रेष्ठतमं मतम्।
केवल अपने पेटको भरकर पशु भी किसी प्रक	र सुदत्तेनेह भवति दानेनोभयलोकजित्॥
अपना जीवन धारण करते ही हैं। पुष्ट होकर तथा बल	ति दान सभी उपायोंमें सर्वश्रेष्ठ है। यथोचित रीतिसे
होकर भी जो लम्बे समयतक जीता है, धर्म नह	ीं दान देनेसे मनुष्य दोनों लोकोंको जीत लेता है।
करता—ऐसे निरर्थक जीवनसे क्या लेना-देना! वह त	ो न सोऽस्ति राजन् दानेन वशगो यो न जायते।
पशुके समान ही जीना है।	दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्॥
ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न दीयते।	राजन्! ऐसा कोई नहीं है, जो दानद्वारा वशमें न
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥	किया जा सके। दानसे देवतालोग भी सदाके लिये
अपने भोजनके ग्रासमेंसे भी आधा या चतुर्थ भा	ग मनुष्योंके वशमें हो जाते हैं।
आवश्यकतावालों या माँगनेवालोंको क्यों नहीं दे दिव	त्र दानमेवोपजीवन्ति प्रजाः सर्वा नृपोत्तम।
जाता; क्योंकि इच्छानुसार धन तो कब किसको प्राप	त प्रियो हि दानवाँल्लोके सर्वस्यैवोपजायते॥
होनेवाला है, अर्थात् अबतक तो किसीको प्राप्त नह	ों नृपोत्तम! सारी प्रजाएँ दानके बलसे ही पालित
हुआ है और न आगे किसीके पास होगा। यह नह	ीं होती हैं। दानी मनुष्य संसारमें सभीका प्रिय हो जाता है।
सोचना चाहिये कि इतना धन और आ जायगा तो फि	र न केवलं दानपरा जयन्ति
मैं दान–पुण्य करूँगा। अत: जितना भी प्राप्त हो, उसी	में भूर्लोकमेकं पुरुषप्रवीराः।
सन्तोषकर उसीमेंसे दान इत्यादि सब धर्मोंका अभ्या	प्र जयन्ति ते राजसुरेन्द्रलोकं
करना चाहिये।	सुदुर्जयं यो विबुधाधिवासः॥

* दान-सुभाषितावली * अङ्क] अहन्यहिन याचन्तमहं मन्ये गुरुं यथा। दानपरायण पुरुषश्रेष्ठ केवल एक भूलोकको ही अपने वशमें नहीं करते, प्रत्युत वे अत्यन्त दुर्जय देवराज मार्जनं दर्पणस्येव यः करोति दिने दिने॥ इन्द्रके लोकको भी, जो देवताओंका निवासस्थान है, दिन-प्रतिदिन याचना करनेवालेको मैं उस गुरुके जीत लेते हैं। समान समझता हूँ, जो दर्पणकी भाँति प्रतिदिन शिष्यका अदत्तदानाच्य भवेद् दरिद्रो मार्जन करता रहता है, अर्थात् जैसे धूलराशिसे दर्पण दरिद्रभावाच्च करोति पापम्। मिलन रहता है, वैसे ही शिष्यका अन्त:करण भी मिलन रहता है, गुरु अपने ज्ञानरूपी प्रकाशसे उसके पापप्रभावान्नरके प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥ अन्त:करणको स्वच्छ कर देता है, वैसे ही याचक भी दान न देनेसे प्राणी दरिद्र होता है। दरिद्र हो जानेपर याचना करते हुए व्यक्तिको यह बोध करा देता है कि फिर पाप करता है। पापके प्रभावसे नरकमें जाता है और यदि दान नहीं दोगे तो मेरी (भिक्षुक)-जैसी स्थिति नरकसे लौटकर पुन: दरिद्र और पुन: पापी होता है। होगी, अतः दान देते रहना चाहिये। याचक सच्चे एवं यदैव जायते श्रद्धा पात्रं सम्प्राप्यते यदा। हितैषी गुरुके समान है। स एव पुण्यकालः स्याद्यतः सम्पत्तिरस्थिरा॥ आयासशतलब्धस्य प्राणेभ्योऽपि गरीयसः। जब कभी भी श्रद्धा उत्पन्न हो जाय और जब भी गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः॥ दानके लिये सुपात्र प्राप्त हो जाय, वही समय दानके सैकड़ों कठिन प्रयत्नोंद्वारा प्राप्त तथा प्राणोंसे भी लिये पुण्यकाल है; क्योंकि सम्पत्ति अस्थिर है। अधिक प्रिय धनकी केवल एकमात्र गति है—दान, यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवै:। उसकी अन्य गतियाँ अर्थात् दान छोड़कर उसका अन्य यमलोकपथे तानि ह्यपतिष्ठन्ति चाग्रतः॥ उपयोग करना विपत्ति ही है। किं धनेन करिष्यन्ति देहिनो भङ्गुरश्रियाः। पृथ्वीपर मनुष्योंके द्वारा जो-जो दान दिये जाते हैं, यमलोकके मार्गमें वे सभी आगे-आगे उपस्थित हो यदर्थं धनमिच्छन्ति तच्छरीरमशाश्वतम्॥ जाते हैं। क्षणभरमें ही विनष्ट हो जानेवाले शरीररूपी सम्पदासे गृहादर्था निवर्तन्ते श्मशानात्सर्वबान्धवाः। सम्पन्न मनुष्य धनसे क्या करेंगे; क्योंकि जिस शरीरके शुभाशुभं कृतं कर्म गच्छन्तमनुगच्छति॥ लिये वे धनकी अभिलाषा रखते हैं, वह शरीर तो धन-सम्पत्ति घरमें ही छूट जाती है। सभी बन्ध्-अशाश्वत है, रहनेवाला ही नहीं है। न दानाद्धिकं किञ्चित् दुश्यते भ्वनत्रये। बान्धव श्मशानमें छूट जाते हैं, किंतु प्राणीके द्वारा किया हुआ शुभाशुभ कर्म परलोकमें उसके पीछे-पीछे जाता है। दानेन प्राप्यते स्वर्गः श्रीर्दानेनैव लभ्यते॥ पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मात्रेव च। तीनों लोकोंमें दानसे बढ़कर कुछ दिखायी नहीं भगिनी दशसाहस्रं सोदरे दत्तमक्षयम्॥ देता। दानसे दिव्य लोककी प्राप्ति होती है, लक्ष्मी दानके पिताके उद्देश्यसे किये गये दानसे सौ गुना, माताके द्वारा ही प्राप्त होती है। उद्देश्यसे किये गये दानसे हजार गुना, बहनके उद्देश्यसे धर्मार्थकाममोक्षाणां साधनं परमं स्मृतम्। किये गये दानसे दस हजार गुना और सहोदर भाईके दानको धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष—इस चतुर्वर्गकी निमित्त किये गये दानसे अनन्त गुना पुण्य प्राप्त होता है। प्राप्तिका श्रेष्ठ साधन बताया गया है।

जिस प्रकार उपार्जित की गयी धन-सम्पदाका दानं कामफला वृक्षा दानं चिन्तामणिर्नृणाम्। दानं पुत्रकलत्राद्यं दानं माता पिता तथा॥ त्याग ही उसकी रक्षा है, उसी प्रकार तालाब आदिमें भरे दान अभिलिषत फल देनेवाले वृक्षोंके समान है, हुए जलका प्रवाह ही उसका रक्षण है। दान मनुष्योंके लिये चिन्तामणिके समान है अर्थात् जिस भूतानि वशीभवन्ति वस्तुका चिन्तन किया जाय, वह (दानसे) तत्काल दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-सुलभ हो जाती है। दान पुत्र, स्त्री आदि है तथा दान र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥ ही माता-पिता है। पापकर्मसमायुक्तं पतन्तं नरके नरम्। दानसे सभी प्राणी वशमें हो जाते हैं, दानसे वैर भी त्रायते दानमेकं तु पात्रभूते द्विजे कृतम्॥ शान्त हो जाते हैं, दानके द्वारा पराया भी बन्ध बन जाता नरकमें पडे हुए पापी व्यक्तिको एकमात्र दान ही है और दान सभी प्रकारके व्यसनोंको दूर कर देता है। बचा सकता है, बशर्ते कि वह दान सत्पात्र ब्राह्मणको कर्णस्त्वचं शिबिर्मांसं जीवं जीमूतवाहनः। दिया गया हो। ददौ दधीचिरस्थीनि नास्त्यदेयं महात्मनाम्॥ न्यायेनार्जनमर्थानां वर्धनं चाभिरक्षणम्। महादानी कर्णने अपनी त्वचाका दान कर दिया, सत्पात्रप्रतिपत्तिश्च सर्वशास्त्रेषु पठ्यते॥ शिबिने अपने शरीरका मांस दानमें दे दिया, जीमृतवाहनने सभी शास्त्रोंको पढ़कर यही देखा गया है कि न्यायपूर्वक अपने प्राणोंका दान कर दिया, महर्षि दधीचिने अस्थियोंका धनका अर्जन करना चाहिये, सत्प्रयत्नसे उसकी वृद्धि दान कर दिया—महात्माओंके लिये कुछ भी अदेय नहीं है। करनी चाहिये और उसकी रक्षा भी इसीलिये करनी चाहिये द्वारं द्वारमटन्तीह भिक्षुकाः पात्रपाणयः। ताकि सत्पात्रमें उसका विनियोग किया जा सके। दर्शयन्त्येव लोकानामदातुः फलमीदुशम्॥ यस्य वित्तं न दानाय नोपभोगाय देहिनाम्। भिक्षाका पात्र हाथमें लिये हुए भिक्षुक लोग दरवाजे-नापि कीर्त्ये न धर्माय तस्य वित्तं निरर्थकम्॥ दरवाजे घूमते हुए लोगोंको यही दिखाते हैं कि दान न देनेका जिसका धन न तो दानमें प्रयुक्त होता है, न लोगोंके ही यह फल है। यदि पहले दान दिया होता तो आज घर-उपयोगमें आता है, न यशके लिये होता है और न घर भटकते हुए भीख न माँगनी पडती, अत: जिसे भीख न माँगनी हो, उसे दान अवश्य देना चाहिये। धर्मार्जनमें विनियुक्त होता है, उसका धन निरर्थक है, स्नानं दानं जपो होमो स्वाध्यायो देवतार्चनम्। निष्प्रयोजन है। गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयातु। यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्।। स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥ जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय तथा गौरवकी प्राप्ति दानसे होती है, वित्तके संचयसे देवतार्चन नहीं होता, मनुष्योंका वह दिन व्यर्थ हो जाता है। नहीं। निरन्तर वर्षा आदिका दान करनेसे बादलोंकी स्थिति यथा वेदाः स्वधीताश्च यथा चेन्द्रियसंयमः। सर्वत्यागो यथा चेह तथा दानमनुत्तमम्॥ ऊपर होती है और जलका संग्रह करनेवाले सागरोंकी

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

दानमिहमा−

जैसे वेदोंका स्वाध्याय, इन्द्रियोंका संयम और

सर्वस्वका त्याग उत्तम है, उसी प्रकार इस संसारमें दान

भी अत्यन्त उत्तम माना गया है।*

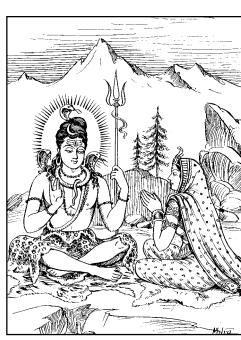
स्थिति नीचे रहती है।

उपार्जितानां वित्तानां त्याग एव हि रक्षणम्।

तडागोदरसंस्थानां परीवाह इवाम्भसाम्॥

दानमाहमा-अङ्क दानमहिमा-अङ्क द

भगवान् सदाशिवका दानधर्मीपदेश



उदारता, अवढरदानीपन तथा भक्तप्रियता आदि गुणोंको मुख्यता दी है। वे कहते हैं कि भगवान् शंकरके समान दानी कहीं नहीं है, वे तो दीनदयाल हैं, देना ही उनके

गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने उनकी आशुतोषता, दानशीलता,

भगवान् साम्बसदाशिवकी अनन्तानन्त गुणावलियोंमेंसे

दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥ (विनय-पत्रिका४)

मनको भाता है और माँगनेवाले उन्हें सदा सुहाते हैं-

दानी कहुँ संकर-सम नाहीं।

एक अन्य पदमें तुलसीदासजी कहते हैं—हे शंकर! आप बड़े देव हैं, बड़े दानी हैं और बड़े भोले हैं, जिन-

जिन लोगोंने आपके सामने हाथ जोडे, आपने बिना भेद-

भावके उन सब लोगोंके दु:ख दूर कर दिये— देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे।

किये दूर दुख सबनिके, जिन्ह-जिन्ह कर जोरे॥ (विनय-पत्रिका ८) ही अच्छे लगते हैं और वे आशुतोष अवढरदानी हैं। जो जो कुछ चाहता है, माँगता है, वह सब सहज ही दे देते हैं और इससे ब्रह्माजीको बड़ा कष्ट होता है, वे श्रीपार्वतीजीके पास जाकर अपना दु:खड़ा सुनाते हुए कहने

किंतु भगवान् शंकरजी तो ऐसे भोले हैं कि उन्हें याचक

लगे—हे भवानी! आपके नाथ (शिवजी) बावले-से हैं, सदा देते ही रहते हैं, जिन लोगोंने कभी किसीको दान देकर बदलेमें पानेका कुछ भी अधिकार नहीं प्राप्त किया, ऐसे लोगोंको भी वे दे डालते हैं, जिससे वेदकी मर्यादा

टूटती है। आप बड़ी सयानी हैं, अपने घरकी भलाई तो देखिये, शिवजी तो अनिधकारियोंको भी सब कुछ दे देते हैं, जिन लोगोंके मस्तकपर मैंने सुखका नाम-निशान भी नहीं लिखा था, आपके पित तो उनको भी स्वर्गका स्थान

दे देते हैं, जिससे मेरे लिये स्वर्ग सजाते-सजाते नाकों दम

आ गया है। दीनता और दु:खको कहीं रहनेकी जगह नहीं रह गयी है, याचकता तो व्याकुल हो उठी है, आपके पित तो मेरी लिखी भाग्यलिपि ही बदल देते हैं, अब मुझसे यह कार्य नहीं होगा, यह कार्य किसी और को सौंपिये।

ब्रह्माजीकी ऐसी प्रेमभरी वाणी सुनकर महादेवजी मन-ही-

बावरो रावरो नाह भवानी। दानि बड़ो दिन देत दये बिनु, बेद-बड़ाई भानी॥

निज घरकी बरबात बिलोकहु, हौ तुम परम सयानी।

मन मुदित हुए तथा माता पार्वती मुसकराने लगीं-

सिवकी दई संपदा देखत, श्री-सारदा सिहानी॥ जिनके भाल लिखी लिपि मेरी, सुखकी नहीं निसानी।

दुख-दीनता दुखी इनके दुख, जाचकता अकुलानी। यह अधिकार सौंपिये औरहिं, भीख भली मैं जानी॥

प्रेम-प्रसंसा-बिनय-ब्यंगजुत, सुनि बिधिकी बर बानी।

हौं आयो नकबानी॥

८) तुलसी मुदित महेस मनिहं मन, जगत-मातु मुसुकानी॥

संसारमें माँगनेवाला किसीको अच्छा नहीं लगता, (विनय-पत्रिका ५)

तिन रंकनकौ नाक सँवारत,

	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-

भगवान् शंकरके इसी भोलेपन और दानशीलताको	दाता प्रतिग्रहीता च देयं सोपक्रमं तथा।
कवितावलीमें इस प्रकार दर्शाया गया है—	देशकालौ च यत् त्वेतद् दानं षड्गुणमुच्यते॥
नागो फिरै कहै मागनो देखि 'न खाँगो कछू', जनि मागिये थोरो।	(महा० अनु० दान०)
राँकिन नाकप रीझि करै तुलसी जग जो जुरैं जाचक जोरो॥	भगवान्ने बताया कि दान देनेवाला मन, वाणी,
नाक सँवारत आयो हौं नाकहिं, नाहिं पिनाकिहि नेकु निहोरो।	शरीर और क्रियाद्वारा शुद्ध हो, उसे सत्यवादी, क्रोधजयी,
ब्रह्मा कहै, गिरिजा! सिखवो पति रावरो, दानि है बावरो भोरो॥	लोभहीन, अदोषदर्शी, श्रद्धालु और आस्तिक होना चाहिये—
ब्रह्माजी कहते हैं—हे पार्विति! तुम अपने पितको	ऐसा दाता ही उत्तम दाता होता है। दान लेनेकी पात्रताके
समझा दो—यह बड़ा बावला और भोला दानी है। देखो,	लिये भगवान् शंकर कहते हैं कि जो शुद्ध, जितेन्द्रिय,
स्वयं तो नंगा फिरता है; परंतु यदि किसी याचकको देखता	क्रोधजयी, उदार, उच्च कुलमें उत्पन्न, शास्त्रज्ञान एवं
है तो कहता है कि थोड़ा मत माँगना, यहाँ कुछ कमी नहीं	सदाचारसे सम्पन्न हो, पंचमहायज्ञपरायण हो, वह दान
है। संसारमें जितने याचक जोड़े जुट सकते, उन्हें जुटाकर	लेनेका उत्तम पात्र है। लोकमें तो जो जिस वस्तुके
उन सब कंगालोंको प्रसन्न होकर इन्द्र बना देता है। उनके	योग्य हो, वही उस वस्तुको पानेका पात्र होता है; भूखा
लिये स्वर्ग तैयार करते-करते मेरी नाकमें दम आ गया है,	मनुष्य अन्नका और प्यासा व्यक्ति जलका पात्र होता है।
परंतु पिनाकी (पिनाकपाणि महादेव) मेरा कुछ भी	हे देवि! दूसरोंके वध या चोरी करनेसे जो प्राप्त होता
अहसान नहीं मानते।	है, अधर्मसे, धनविषयक मोहसे तथा बहुतसे प्राणियोंकी
इस प्रकार भगवान् भोलेनाथने अपने स्वभाव एवं	जीविकाका अवरोध करनेसे जो धन प्राप्त होता है, वह
मंगल चरित्रसे दान–धर्मकी प्रतिष्ठा की है और प्रकारान्तरसे	अत्यन्त निन्दित है—
उन्होंने यह शिक्षा दी है कि अपने सामर्थ्यानुसार नित्य दान	परोपघाताद् यद् द्रव्यं चौर्याद् वा लभ्यते नृभि:।
देना चाहिये और दीन-दुःखियों एवं याचकोंको कभी भी	निर्दयाल्लभ्यते यच्च धूर्तभावेन वै तथा॥
निराश नहीं करना चाहिये।	अधर्मादर्थमोहाद् वा बहूनामुपरोधनात्।
एक बारकी बात है, देवी पार्वतीजीने भगवान्से	लभ्यते यद् धनं देवि तदत्यन्तविगर्हितम्॥
पूछा—प्रभो! जो द्रव्य लोकमें सभीको प्राप्त है तथा जो	(महा० अनु० दान०)
सर्वसाधारणकी वस्तु है, उस सर्वसामान्य वस्तुका दान	हे भामिनि! ऐसे धनसे किये हुए दानादि धर्मको
करनेवाला मनुष्य कैसे धर्मका भागी होता है? इस	निष्फल समझो। अत: शुभकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको
प्रश्नको सुनकर भगवान् बड़े प्रसन्न हुए और बोले देवि!	न्यायत: प्राप्त हुए धनके द्वारा ही दान करना चाहिये—
आपने बहुत सुन्दर बात पूछी है, वास्तवमें संसारमें जो	'तस्मान्न्यायागतेनैव दातव्यं शुभमिच्छता॥'
द्रव्य हैं, वे सब तो भौतिक हैं, सभीके लिये साधारण	जो-जो अपनेको प्रिय लगे, उसी-उसी वस्तुका सदा
हैं फिर उनमें उत्तम फल देनेकी शक्ति कैसे आ सकती	दान करना चाहिये। भगवान् शंकर कहते हैं कि दानका
है ? किंतु छ: ऐसी बातें हैं, जिनका पालन किया जाय	सुयोग्य पात्र ब्राह्मण यदि दूरका निवासी हो तो उसीके
तो सांसारिक वस्तुओंके दानमें भी श्रेष्ठ फल देनेकी	पास जाकर उसे प्रसन्नकर दाता इस प्रकार दान दे कि
शक्ति आ जाती है। दान देनेवाला कैसा है, उसे ग्रहण	वह सन्तुष्ट हो जाय। यह दानकी श्रेष्ठ विधि है—'एष
करनेवाला कैसा है, देय वस्तु कैसी है, उसे देनेका प्रयत्न	दानविधिः श्रेष्ठः।' दानपात्रको अपने घर बुलाकर दान
कैसा है, देश और काल कौन-सा है—इन छ: वस्तुओंके	देना मध्यम श्रेणीका दान है।
गुणोंसे युक्त दान उत्तम बताया गया है और ऐसा दान	एक महत्त्वकी बात बताते हुए भगवान् कहते हैं कि
थ्रेष्ठ फल देनेवाला होता है—	ऐश्वर्यकी इच्छा रखनेवाले पुरुषको कुपात्र पुरुषोंको भी

``	का दानधर्मोपदेश _* ४१
आवश्यकता होनेपर अन्न-वस्त्र आदिका दान करना	दीर्घायुष्यं वराङ्गत्वं स्फीतां च श्रियमुत्तमाम्।
चाहिये। इसी प्रकार पुण्य क्षेत्रों तथा पुण्य अवसरोंपर जो	परत्र लभते मर्त्यः सम्प्रदाय वसुन्धराम्॥
दिया जाता है, वह देश और कालकी मर्यादासे अत्यन्त	(महा० अनु० दान०)
शुभकारक होता है। भगवती पार्वतीजीने पुन: प्रश्न	हे देवि! अपनी कन्याके साथ ही दूसरोंकी कन्याका
किया—हे देव! आपने दानके गुणोंके विषयमें बताया, क्या	दान भी यथाशक्ति करना-कराना चाहिये। ऐसे ही शिष्यको
ऐसा भी होता है कि इन गुणोंसे युक्त रहनेपर भी दान	विद्यादान देनेवाला मृत्युके पश्चात् वृद्धि, बुद्धि, धृति और
निष्फल हो जाय।	स्मृति प्राप्त करता है। निर्धन छात्रोंको धनकी सहायता देकर
इसपर भगवान् बोले—महाभागे! मनुष्योंके भावदोषसे	- विद्या प्राप्त कराना भी स्वयं किये विद्यादानके समान है। हे
ऐसा होता है। यदि कोई विधिपूर्वक दानादि धर्मका	देवि! तिल पवित्र, पापनाशक और पुण्यमय माने गये हैं, अत:
अनुष्ठान करे और फिर उसके लिये पश्चात्ताप करे अथवा	तिलोंका दान करना चाहिये। आश्विनमासकी पूर्णिमा तिथिको
भरी सभामें उसकी प्रशंसा करे तो उसका वह धर्म सब	तिलदानका विशेष महत्त्व है। ऐसे ही तिलोंसे गौ की आकृति
कुछ रहनेपर भी व्यर्थ हो जाता है, अत: दाताको इन दो-	बनाकर तिलधेनुका दान करना चाहिये।
का परित्याग कर देना चाहिये अर्थात् देकर पश्चात्ताप न	हे देवि! पुल, कुआँ और पोखरा बनानेवाला मानव
करे और दिये दानकी स्वयं प्रशंसा न करे।	दीर्घायु, सौभाग्य तथा मृत्युके पश्चात् शुभगति प्राप्त करता
विविध वस्तुओंका दान	है। छाया, फूल और फलदार वृक्ष लगानेवाला पुण्यलोक प्राप्त
किन-किन वस्तुओंका दान करना चाहिये, इस	करता है। जो रोगियोंको औषध प्रदान करता है, वह रोगहीन
जिज्ञासापर भगवान् शंकर उन्हें बताते हैं—हे देवि! अन्नका	तथा दीर्घायु होता है। इसी प्रकार जो लोकहितके लिये
दान सबसे बड़ा दान है, अन्न मनुष्योंका प्राण है, जो	वेदविद्यालय, सभाभवन, धर्मशाला तथा भिक्षुओंके लिये
अन्नदान करता है, वह प्राणदान करता है। हे भामिनि!	आश्रम बनाता है, गोशालाओंका निर्माण करता है, वह मृत्युके
संसारमें गौओंका दान विशेष दान है। सृष्टिकर्ता ब्रह्माजीने	पश्चात् शुभ फल पाता है। अन्तमें भगवान् शिव दानतत्त्वका
समस्त प्राणियोंके जीवन-निर्वाहके लिये गौओंकी सृष्टि	रहस्य बताते हुए पार्वतीजीसे कहते हैं—हे देवि! सभी
की थी। इसीलिये वे सबकी माता कही गयीं हैं, गौओंके	दानोंको शुद्ध हृदयसे निष्काम भावसे देना चाहिये, उसमें
मल-मूत्रसे कभी उद्विग्न नहीं होना चाहिये और उनका	क्रूरताका अभाव होना चाहिये और दयापूर्वक तथा अत्यन्त
मांस कभी नहीं खाना चाहिये, सदा गौओंका भक्त होना	प्रसन्नताके साथ देना चाहिये, तभी दाता शुभ फलका भागी
चाहिये—	होता है—
गवां मूत्रपुरीषाणि नोद्विजेत कदाचन।	मनसा तत्त्वतः शुद्धमानृशंस्यपुरस्सरम्।

न चासां मांसमश्नीयाद् गोषु भक्तः सदा भवेत्॥ (महा० अनु० दान०) भगवान् शिव कहते हैं—अब मैं भूमिदानका वर्णन

सम्पत्ति पाता है-

करूँगा; क्योंकि भूमिदानका महत्त्व बहुत अधिक है,

रहनेके लिये सुन्दर घर बना हो, कुआँ हो, हलसे जोती हुई उस भूमिमें फसल उगी हो, फलदार वृक्ष हों-ऐसी

भूमिका दान करना चाहिये। भूमिदान करके मनुष्य

परलोकमें दीर्घायु, सुन्दर शरीर और बढ़ी-चढ़ी उत्तम

कोई निधि नहीं है, सत्यसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है और

असत्यसे बढ़कर कोई पातक नहीं है— नास्ति भूमौ दानसमं नास्ति दानसमो निधिः।

नास्ति सत्यात् परो धर्मो नानृतात् पातकं परम्॥

प्रीत्या तु सर्वदानानि दत्त्वा फलमवाप्नुयात्॥

दानके समान कोई दूसरी वस्तु नहीं है और दानके समान

दानकी महिमा बताते हुए वे कहते हैं-इस पृथ्वीपर

(महा० अनु० दान०)

(महा० अनु० दान०)

मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा

इ. दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

क्रमात्। हत्वाग्निहोत्रविधिना कृत्वा देवार्चनं गृहे॥ ददौ रामाय रामभद्राय रामचन्द्राय वेधसे। दानान्यनेकानि ब्राह्मणेभ्यो यथाक्रमम्।' (आ०रा०वि० रघुनाथाय नाथाय सीतायाः पतये नमः॥

'मर्त्यावतारस्त्विह मर्त्यशिक्षणम्'—अपनी चर्याद्वारा ४। १५-१६)

उत्तम चरित्रकी शिक्षा प्रदान करनेके लिये भगवानुने

मनुष्यावतार ग्रहण किया। अकारणकरुण भगवान् श्रीराम

मर्यादापुरुषोत्तम कहलाते हैं और उनका समस्त पावन चरित्र, उनके समस्त कर्म लोकके लिये सदा ही

अनुकरणीय हैं, अनुपालनीय हैं—'रामादिवत् वर्तितव्यम्।'

वे साक्षात् धर्मविग्रह हैं—'रामो विग्रहवान् धर्मः' (वा०रा० ३।३७।१३)। नित्य-नैमित्तिक कर्मोंकी स्थापना और

पूरी निष्ठा एवं श्रद्धाके साथ उनका परिपालन श्रीरामजीकी नित्यकी चर्या थी। आनन्दरामायणमें बताया गया है कि

श्रीराम गृहस्थधर्मका पालन करते हुए प्रात:काल उठकर शौचादिक कृत्यसे निवृत्त होकर पालकीपर चढ़कर सरयूजी स्नानके लिये जाते थे और सवारी आदिको

किनारे छोडकर पैदल बालुकापर चलकर नदीतटतक जाते थे। सरयू नदीको प्रणाम करके नित्यकर्म करते और

ब्राह्मणोंको गौ, भूमि, धान्य तथा सुवर्ण आदिका दान देकर पवित्र सरयू और ब्राह्मणोंकी सादर पूजा करते थे— दानान्यनेकानि गोभूधान्यरसादिभिः।

सम्पूज्य सरयूं पुण्यां ब्राह्मणान् पूज्य सादरम्॥ (आ०रा० सा० ५।७०) तीर्थयात्राके प्रसंगमें भगवान् श्रीरामने सीताजीके

साथ धर्मतत्पर रहते हुए एक वर्ष काशीमें निवास किया।

गंगाजीके तटपर उन्होंने पत्थरोंका एक घाट बनवाया, जो उन्हींके नामसे रामघाट नामसे आज भी विख्यात है।

उन्होंने सीताजीके साथ पंचगंगामें स्नान किया, उस समय उत्तम कार्तिकमास था, एक वर्षतक यहाँ रहकर

धर्माचरण किया, दान-पुण्य किया, बादमें तीर्थवासियोंको रत्न, सुवर्ण, वस्त्राभूषण, गौ, सोना-चाँदी आदि दानमें

दिया। अन्नदान तथा धान्य आदिके दानसे उन्हें सन्तुष्ट

जहाँ भी पावन चरित्र आया है, वहीं उनके द्वारा नित्य

नियमपूर्वक सत्कर्मानुष्ठान करने तथा दान देनेका विवरण

मर्यादाकी प्रतिष्ठा स्थापित करनेके लिये तथा लोगोंको एक बार श्रीरामजीने लक्ष्मणजीके माध्यमसे अपने

> राज्यमें सभीको धर्माचरण करनेकी आज्ञा करवायी, उसीमें दानधर्मकी भी अनेक बातें आयी हैं, वहाँ कहा गया है-कोई मनुष्य अपने नित्य-नैमित्तिक कर्मींको न

छोडे—'नित्यनैमित्तिकं कर्म न त्याज्यं वै कदाचन॥' (आ०रा०राज्य० २४।८६) देवताओंकी सदा पूजा करनी

चाहिये, निरन्तर धर्मकार्य करते रहना चाहिये। लोग समय-समयपर धेनुदान, वाजिदान, गजदान आदि ब्राह्मणोंको आदरपूर्वक दिया करें। वसन्तऋतुमें चन्दन, छत्र तथा

पंखेका दान करें। कार्तिकमासमें दीपदान करें। माघमासमें लकडियों तथा कम्बलका दान करें। चैत्रमें ताम्बुल तथा केलेके फलका दान करें, वैशाखमें शीशा, कस्तूरी, जायफल, इलायची तथा कपूरका दान करें।

गीता आदि सद्ग्रन्थोंका निरन्तर दान करें—'दानानि पुस्तकानां च कर्तव्यानि निरन्तरम्' (आ०रा० राज्य० २४।१२६)। श्रीरामजी अपनी आज्ञामें बताते हैं कि दान आदि शुभ कर्मोंमें शीघ्रता करनी चाहिये; क्योंकि

कालका कोई भरोसा नहीं है, कब आ जाय—'दाने विलम्बो नो कार्यः' (आ०रामा०राज्य० २४।१३७)। श्रीरामजीने अश्वमेध आदि अनेक यज्ञ किये, जिनमें भूमि, दक्षिणा तथा अनेक दान दिये गये थे।

दशरथनन्दन भगवान् श्रीरामचन्द्रजी यज्ञोंमें प्रचुर धन दानमें देकर संसारमें अपने यशकी स्थापना करके अक्षय लोकोंमें गये हैं-

स गतो ह्यक्षयाँल्लोकान् यस्य लोके महद् यशः॥

रामो दाशरथिश्चैव हुत्वा यज्ञेषु वै वसु।

िदानमहिमा-

(महा०अनु० १३७।१४) वाल्मीकीय रामायणमें बताया गया है कि श्रीरामजीने बहुत-से अश्वमेधयज्ञ किये और उससे दस गुने वाजपेय

भीष्मपितामहने राजा युधिष्ठिरको बताया-राजन्!

तथा अग्निष्टोम, गोसव आदि बडे-बडे यज्ञ किये। एक गोसवयज्ञकी दक्षिणामें दस हजार गौएँ देनेका विधान है तो असिंग वैशां अपनिहरू ते प्रमान https://dsf-वार्वारी harmas न अभिनिक्त स्मानि स्तिमें स्तिमें सिंग स्मान असि मिन

किया। (आ०रा० यात्रा० सर्ग ६) भगवान् श्रीरामजीका

* मर्यादापुरुषोत्तम भगवान् श्रीरामकी दान-मर्यादा * अङ्क] करना भी कठिन है! श्रीरामचरितमानसमें कहा गया है कि भगवान् श्रीरामका वनगमन परिजनोंके लिये विषादका प्रभुने करोड़ों अश्वमेधयज्ञ किये और द्विजोंको अनेक विषय था, पर स्वयं श्रीरामके लिये विनोदका। उन्होंने उत्साहपूर्वक अकृत अन्न-धन-रत्न आदि तथा बहुत-सी प्रकारके दान दिये-गौएँ दानकर वनयात्रा आरम्भ की। उस समय भगवान् कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहँ दीन्हे॥ श्रीरामने लक्ष्मणजीसे कहा कि महर्षि अगस्त्य एवं (रा०च०मा० ७।२४।१) विश्वामित्रजीको हजारों गौएँ देकर सन्तुष्ट करो—'तर्पयस्व अपने राज्याभिषेकके अवसरपर श्रीरामने ब्राह्मणोंको एक लाख घोड़े, उतनी ही संख्यामें दुधार गौएँ तथा एक महाबाहो गोसहस्त्रेण राघव'। इसी प्रकार उन्होंने सूतश्रेष्ठ सौ साँड दानमें दिये थे-सचिव चित्ररथको वस्तु-वाहन-धनादिके साथ एक हजार गौएँ—'गवां दशशतेन च' एवं कठ तथा कलाप-शाखाके सहस्त्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा॥ अध्येता ब्रह्मचारियोंको चावल और चनेका भार वहन ददौ शतवृषान् पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः। करनेवाले बारह सौ बैल और व्यंजन एवं दही-घीके लिये (वा०रा० ६। १२८। ७३-७४) शरणागतिके दाता और अभयदान देनेवाले तो भगवान एक हजार गौएँ दिलवायीं— श्रीराम ही हैं। उनकी तो यह घोषणा है कि जो एक बार शालिवाहनसहस्रं च द्वे शते भद्रकांस्तथा॥ भी सच्चे मनसे 'प्रभो, मैं आपका हूँ, आपके शरणागत हूँ' व्यञ्जनार्थं च सौमित्रे गोसहस्त्रमुपाकुरु। ऐसा कहता है, उसे मैं सभी प्राणियोंसे अभय होनेका वर (वा०रा० २।३२।२०-२१) प्रदान करता हूँ, यह मेरी प्रतिज्ञा है, यह मेरा नियम है, भगवान् श्रीरामकी वनयात्राके अवसरपर गोदानकी एक विनोदपूर्ण कथा श्रीवाल्मीकीय रामायणमें आयी है। व्रत है-श्रीराम वन जानेको तैयार थे। उस बातसे अनिभज्ञ त्रिजट सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। नामक एक दीन-दुर्बल ब्राह्मणको पत्नीने प्रेरित किया-अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रतं मम॥ 'नाथ! आप श्रीरामचन्द्रजीका दर्शन करें तो अवश्य कुछ (वा०रा० ६। १८। ३३) गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी भगवान् श्रीरामकी दानशीलता, पा जाइयेगा, वे बडे धर्मज्ञ हैं।' त्रिजटने भगवान् श्रीरामके उदारता और कृपालुता आदि गुणोंके विषयमें कहते हैं कि पास पहुँचकर कहा—'मैं निर्धन हूँ, मेरे बहुत-सी सन्तानें हे श्रीराम! सच्चे दानियोंमें शिरोमणि एक आप ही हैं, जिस हैं। आप मुझपर कृपा करें।' दुर्बलतासे पीले पड़े हुए ब्राह्मणकी बात सुनकर भगवान् श्रीरामने विनोदमें कह किसीने (एक बार) आपसे माँगा, फिर उसे माँगनेके लिये बहुत नाच नहीं नाचने पड़े अर्थात् वह पूर्णकाम हो गया। एकै दानि सिरोमनि साँचो। जोइ जाच्यो सोइ जाचकताबस, फिरि बहु नाच न नाचो॥ (विनय-पत्रिका १६३) एक दूसरे प्रसंगमें वे कहते हैं कि यदि मॉॅंगना है तो केवल रामसे ही माँगो, वे जिस याचकको अपनाते हैं, उसके दोष, दु:ख और दरिद्रताको दरिद्र (क्षीण) कर देते हैं, ऐसे श्रीरामचन्द्रजीको छोड़कर और किसके आगे हाथ फैलाया जाय? रीति महाराजकी, नेवाजिए जो माँगनो, सो दोष-दुख-दारिद दरिद्र कै-कै छोडिए। तजि रघुनाथ हाथ और काहि ओड़िये॥ (कवितावली उत्तर॰ २५) दिया—'विप्रवर! आप अपना डंडा जितनी दूर फेंक सकें,

फेंकिये। वह जहाँ जाकर गिरेगा, वहाँतककी सब गौएँ गिरा। भगवान् श्रीरामने त्रिजटको गले लगा लिया और आपकी हो जायँगी। यह सुनकर त्रिजटने शीघ्रतासे धोतीका कथनानुसार सारी गौएँ उनके पास भिजवा दीं। गौओंके

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

फेंटा कसकर डंडेको घुमाकर ऐसे जोरसे फेंका कि वह सरयूजीके पार हजारों गौओंके बीच एक साँड्के पास भगवान् श्रीकृष्णका दानवचनामृत कृष्णाय वासुदेवाय देवकीनन्दनाय च।

आसन और तिलसहित तेरह हजार चौरासी गौएँ

नन्दगोपकुमाराय गोविन्दाय नमो नमः॥ लीलापुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्णका अवतरण धर्मकी प्रतिष्ठा, सत्कर्मींके संस्थापन तथा भक्तोंपर साक्षात् कृपा करनेके लिये हुआ करता है। उनके जन्म और कर्म दिव्य, लोकसंग्रह तथा लोकशिक्षणके लिये हुआ करते हैं। भगवान्का दिव्य चरित्र अत्यन्त मंगलमय और परम

पावन है। उनकी चर्या और उनके उपदेश लोकके लिये महान् कल्याणकारी हैं। श्रीमद्भागवतादि पुराणोंमें उनके महनीय लोककल्याणकारी लीलाओंका निदर्शन हुआ है भगवान्के आविर्भाव (जन्म)-से लेकर परमधामगमनतकके मार्मिक प्रसंगोंका उल्लेख हुआ है।

भगवान्ने लीलाके माध्यमसे, उपदेशोंके माध्यमसे लोकको महान् शिक्षा प्रदान की है। श्रीमद्भगवद्गीता तो भगवान्की साक्षात् वाणी ही है, जिसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोगकी विशद मीमांसा और दानके त्रिविध भेद बताते हुए सात्त्विक दानकी प्रतिष्ठा हुई है। भगवान्ने कहा है—'तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ' अर्थात् क्या करणीय है और क्या अकरणीय है—इसमें शास्त्र ही प्रमाण है। भगवान्का दिव्य जीवन शास्त्रकी मर्यादासे ही प्रतिष्ठित है। उनकी चर्याद्वारा शास्त्रप्रतिपादित कर्मोंका ही अनुष्ठान हुआ है। वे नित्य प्रात:काल क्या-क्या किया करते थे, इस विषयमें भागवतमें बताया गया है कि वे ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर हाथ-पैर धोकर आत्मध्यान

करते थे, तदनन्तर शुद्धजलमें स्नानकर वस्त्र-धारण-

सन्ध्या-वन्दन आदि नित्यक्रिया करते थे, अग्निमें हवन

करते थे, गायत्रीका जप करते थे। तदनन्तर तर्पण आदि करके ब्राह्मणोंकी पूजा करते थे और ब्राह्मणोंको वस्त्र,

और ख़ुर चाँदीसे मढ़े हुए थे, गलेमें मोतियोंकी मालाएँ पड़ी थीं, बदनपर सुन्दर झूलें उढ़ायी हुई थीं। ऐसी दुधार, एक बारकी ब्याई, सुशीला, बछड़ेसहित गौएँ देकर वे अपनी विभूति गौ, ब्राह्मण, देवता, वृद्ध, गुरु और सम्पूर्ण प्राणियोंको प्रणाम किया करते थे। भगवानुका

शास्त्रीय कर्मोंकी प्रतिष्ठाके लिये पृथ्वीपर अवतरण

हुआ। अतः उन्होंने स्वयं भी शास्त्रानुसार जीवन जिया और लोकको भी शास्त्ररक्षण तथा शास्त्रानुवर्तनका उपदेश

अनुपालन तथा

वर्णाश्रमधर्मके

दान करते थे—'अलंकृतेभ्यो विप्रेभ्यो बद्घं बद्घं दिने

दिने' (श्रीमद्भा० १०।७०।९)। उन गौओंके सींग सोनेसे

समृहको पाकर मुनि त्रिजट पत्नीसहित प्रसन्न हो गये—

'गवामनीकं प्रतिगृह्य मोदितः।' (वा०रा० २।३२।४३)

दानमिहमा−

सत्कर्मानुष्ठानके लिये उन्होंने बार-बार कहा है। गरुडपुराणमें उन्होंने गरुडजीको बताया कि जीव अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है एवं अपने पाप-पुण्य भी अकेले ही भोगता है, उसके मृत शरीरको मिट्टी-काष्ठके समान छोड़कर उसके सभी बान्धव लौट आते हैं, केवल धर्म ही उसके साथ जाता है— एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते।

मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्टसमं क्षितौ। विमुखा बान्धवा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति॥ (गरुडपु० उत्तर० २। २२-२३)

एकोऽनुभुङ्के सुकृतमेक एव च दुष्कृतम्॥

भगवान् कहते हैं कि यज्ञ, दान, तप आदि सत्कर्म मनुष्योंको पवित्र बनानेवाले हैं—'पावनानि मनीषिणाम्', अत: इन्हें अवश्य करना चाहिये, इनका त्याग नहीं करना चाहिये—'यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।'

दानरूपी पाथेयके सहारे प्राणी परलोकके महामार्गको

भगवान् श्रीकृष्णका दानवचनामृत * अङ्क] सुखपूर्वक पार कर जाता है—'गृहीतदानपाथेयः सुखं यद्दत्तमनुशोचितम्॥ ××××××× याति महाध्वनि' (गरुडपु० उत्तर० ४।११)। निष्फल दिन वृथा ह्येतानि दानानि कथितानि समासतः॥ दाताकी उत्तम गति भगवान्ने एक बड़े ही महत्त्वकी बात बताते हुए कहा है कि जिस दिन स्नान, दान, जप, होम, स्वाध्याय, देवपूजन—

ये सब कर्म नहीं होते, मनुष्यका वह दिन व्यर्थ है—

स्नानं दानं जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्॥

यस्मिन् दिने न सेव्यन्ते स वृथा दिवसो नृणाम्। (गरुडपु० उत्तर० १३।१३-१४)

निष्फलदान

धर्मराज युधिष्ठिरके पूछनेपर दानादि सत्कर्मींकी नित्य अवश्यकरणीयता बताकर भगवान्ने उन्हें बताया कि



राजन्! जो दान अश्रद्धा या अपमानके साथ दिया जाता है, जिसे दिखावेके लिये दिया जाता है, जो पाखण्डी या शूद्रके समान आचरण करनेवाले पुरुषको दिया जाता है, जिसे

देकर अपने ही मुँहसे उसका बार-बार बखान किया जाता है, जिसे देकर पीछे उसके लिये शोक किया जाता है, वह

दान निष्फल होता है-

अश्रद्धयापि यद् दत्तमावमानेन वापि यत्। दम्भार्थमपि यद् दत्तं यत् पाखिण्डिहितं नृप॥ शूद्राचाराय यद् दत्तं यद् दत्त्वा चानुकीर्तितम्।

हे युधिष्ठिर! जो दान, तपस्या, सत्यभाषण और

इन्द्रिसंयमके द्वारा निरन्तर धर्माचरणमें लगे रहते हैं, वे मनुष्य स्वर्गगामी होते हैं-दानेन तपसा चैव सत्येन च दमेन च।

> ये धर्ममनुवर्तन्ते ते नराः स्वर्गगामिनः॥ धनकी एकमात्र गति दान

श्रीकृष्ण बोले-धनका सदुपयोग दानमें ही है। जिस पुरुषके सभी दिन धर्म, अर्थ और काम—इस

त्रिवर्गसे रहित होकर आते और चले जाते हैं, वह मनुष्य लोहारकी भाथीके समान श्वास लेता हुआ भी जीवित नहीं है। जिन्होंने दान नहीं किया, हवन नहीं किया तथा तीर्थमें गमन नहीं किया और जिन्होंने ब्राह्मणोंको अन्न, जल, सुवर्ण आदि नहीं दिये, वे बार-बार गरीब, भूखसे व्याकुल, रूखे और हाथमें खप्पर लिये इधर-उधर घूमते हुए देखे

इस धनके अन्य प्रयोग तो विपत्तियाँ ही हैं। जबतक पहलेका पुण्य रहता है, तबतक भोग और दान करनेसे भी धन समाप्त नहीं होता, किंतु पुण्योंके क्षय होनेपर वह बिना दान-भोग किये हुए भी नष्ट हो जाता है-

जाते हैं। सैकड़ों प्रकारके प्रयत्न एवं श्रमसे कमाये हुए तथा प्राणोंसे भी प्यारे धनका दान ही उसकी एकमात्र गति है।

यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च। स लोहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥ यैर्न दत्तं न च हुतं न तीर्थे गमनं कृतम्।

दीना निरशना रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः। ते दृश्यन्ते महाराज जायमानाः पुनः पुनः॥

हिरण्यमन्नमुदकं ब्राह्मणेभ्यो न चार्पितम्॥

आयास्रातलब्धस्य पाणेभ्योऽपि गरीयसः। गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तय:॥

नोपभोगैः क्षयं यान्ति न प्रदानैः समृद्धयः। पूर्वार्जितानामन्यत्र सुकृतानां परिक्षयात्॥

(भविष्यपु० उत्तर० १५१।८—१२)

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्* **िदानमहिमा**− तीन अतिदान विविध दान दानोंमें तीन दान अत्यन्त श्रेष्ठ हैं-गोदान, पृथ्वीदान विद्यादान-भगवान् श्रीकृष्णने विद्यादानको विशेष और विद्यादान। ये दुहने, जोतने और जाननेसे सात दान बताया है और कहा है कि विद्याके बिना मनुष्य कुलतक पवित्र करते हैं-धर्माधर्मकी जानकारी नहीं प्राप्त कर सकते, इसलिये धर्मात्मा पुरुषको विद्यादानमें सदा तत्पर रहना चाहिये। त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती। तीनों लोक, चारों वर्ण, चारों आश्रम और ब्रह्मा आदि सभी आसप्तमं पुनन्त्येते दोहवाहनवेदनै:॥ देवता विद्यादानमें ही प्रतिष्ठित हैं-(भविष्यपु०उत्तर० १५१।१८) धर्माधर्मं न जानाति विद्यया रहितः पुमान्। दानका सत्फल तस्मात् सदैव धर्मात्मा विद्यादानरतो भवेत्॥ भगवान् बताते हैं कि ऐश्वर्य, धन-सम्पत्ति तो बहुत लोगोंके पास हो सकती है, किंतु उसके साथमें दान देनेकी त्रैलोक्यं चतुरो वर्णाश्चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्। ब्रह्माद्या देवताः सर्वा विद्यादाने प्रतिष्ठिताः॥ भावना, शक्ति और उत्साहका होना थोड़ेसे तपका फल नहीं है, जिसने महान् तप किया हो, उसीके पास धन भी (भविष्यपु० उत्तर० १७४। २४-२५) रह सकता है और दान देनेकी शक्ति भी-गृहदान-गृहस्थाश्रम तथा गृहदानकी महिमामें उन्होंने बताया है कि गृहस्थाश्रमसे बढ़कर कोई धर्म नहीं है। 'विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम्॥' गृहदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। झूठसे बढ़कर कोई (गरुडपु० उत्तर० १४।१७) पाप नहीं है और ब्राह्मणसे बढ़कर कोई पूज्य नहीं है-दान न देनेका फल न गार्हस्थ्यात्परो धर्मो नास्ति दानं गृहात् परम्। जो दान नहीं देता, वह दिरद्र होता है और दरिद्र होकर उसे विवश होकर पाप करना पडता है। पापोंके नानृताद्धिकं पापं न पूज्यो ब्राह्मणात् परः॥ प्रभावसे वह नरकमें जाता है और नरकसे निकलनेपर फिर (भविष्यपु० उत्त० ३६८।३) भूमिदान—भूमिदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं दिरद्र तथा पापी ही होता है। इस तरह वह भारी कुचक्रमें फँस है और भूमि छीन लेनेसे बढ़कर कोई पाप नहीं है। दूसरे जाता है, अत: दान अवश्य देना चाहिये— दानोंके पुण्य समय पाकर क्षीण हो जाते हैं, किंतु अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्री भूमिदानके पुण्यका कभी भी क्षय नहीं होता— दरिद्रभावाच्च करोति पापम्। न हि भूमिप्रदानात् वै दानमन्यद् विशिष्यते। पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रः पुनरेव पापी॥ न चापि भूमिहरणात् पापमन्यद् विशिष्यते॥ दानान्यन्यानि हीयन्ते कालेन कुरुपुङ्गव। (गरुडपु० उत्तर० १४।१९) भूमिदानस्य पुण्यस्य क्षयो नैवोपपद्यते॥ तीन दानोंकी विशेष महिमा भगवान् कहते हैं कि अग्निका पुत्र सुवर्ण, भगवान् (महाभारत) विष्णुकी पुत्री (पृथु-अवतारमें) पृथ्वी तथा सूर्यदेवकी पुत्री गोदान—गोमाता तो भगवान्की लीलासहचरी ही गो—इन तीनोंके दानसे त्रिलोकीके दानका फल मिलता है— हैं, वे सदा गौओंके बीचमें रहा करते हैं और उनकी अग्नेरपत्यं प्रथमं सुवर्णं सेवा किया करते हैं। गौके कल्याणके लिये उनका अवतरण हुआ। उन्होंने अपनी चर्याद्वारा नित्य गोसेवा भूर्वेष्णवी सूर्यसुताश्च गावः। करनेकी सीख दी है, वे सदा गौओंका दान किया करते लोकत्रयं तेन भवेत् प्रदत्तं यः काञ्चनं गां च महीं प्रदद्यात्॥ थे, उन्होंने गौमें सभी देवताओं, ऋषियों, महर्षियों, Hinduism Discord Server https://dsc.agg/dhaftingoring Math DE WITH LOVE BY Aytings banda

* आचार्य बृहस्पतिद्वारा निरूपित दानकी तात्त्विक बातें * अङ्क] है और कहा है कि दानमें दी हुई गौ अपने विभिन्न बना रहता है, जबतक वह जीवित रहता है, मरनेपर उसे गुणोंद्वारा कामधेनु बनकर परलोकमें दाताके पास पहुँचती मृत समझकर सभी तत्काल अपना स्नेह खींच लेते हैं। है और दाताका उद्धार कर देती है। जैसे प्रज्वलित इसलिये मनुष्यको स्वयं ही अपने लिये अन्न, जल और दीपक घरमें फैले हुए अन्धकारको दूर कर देता है, शय्या आदिका दान करना चाहिये। मनुष्य स्वयं ही अपना उसी प्रकार मनुष्य कपिला गौका दान करके अपने बन्धु है, इसे हृदयमें स्मरण रखना चाहिये। जो दान-धर्म भीतर छिपे हुए पापको भी निकाल देता है— और भोग आदिके द्वारा स्वयं अपना कल्याण नहीं करता तो फिर उसके मरनेके बाद उसके लिये दूसरा कोई क्या यथान्धकारं भवते विलग्नं दीप्तो हि निर्यातयति प्रदीप:। व्यवस्था कर सकता है? नरः पापमपि प्रलीनं तावत् स बन्धुः स पिता यावज्जीवति भारत। निष्क्रामयेद् वै कपिलाप्रदानात्॥ मृतो मृत इति ज्ञात्वा क्षणात् स्नेहो निवर्तते॥ तस्मात् स्वयं प्रदातव्यं शय्याभोज्यजलादिकम्। (महाभारत) अपने हाथसे किये गये सत्कर्मकी प्रशंसा आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरिति सञ्चिन्त्य चेतिस॥ आत्मैव यो हि नात्मानं दानभोगै: समर्चयेत्। एक महत्त्वपूर्ण उपदेशमें भगवान्का कहना है कि जो भी सत्कर्म किया जाय, अपने हाथसे ही करना चाहिये। कोऽन्यो हिततरस्तस्मात् कः पश्चात् पूजियष्यति॥ तभीतक मनुष्य अपने परिवारवालोंका भाई-बन्धु और पिता (भविष्यपु० उत्तर० १८४। ३—५) आचार्य बृहस्पतिद्वारा निरूपित दानकी तात्त्विक बातें आचार्य बृहस्पति देवताओं के भी गुरु हैं, धर्म-कर्मके मनुष्यवर्गने इनकी उपासनासे अनेक प्रकारके उत्तम फल अधिष्ठाता, सदा आचारपरायण और सत्कर्मानुष्ठानकी शिक्षा प्राप्त किये हैं। इनके द्वारा दिये गये धर्ममय उपदेश बड़े देनेवाले हैं। ये अत्यन्त सत्त्वसम्पन्न, धर्मनीतिके सम्यक् परिज्ञाता ही कल्याणकारी और अभ्युदयको प्राप्त करानेवाले हैं। तथा वाणी-बुद्धि एवं ज्ञानके अधिष्ठाता और महान् परोपकारी इनका स्वभाव बड़ा ही शान्त है, इन्होंने प्रत्येक परिस्थितिमें हैं। भीष्मपितामहका कहना है कि बृहस्पतिके समान शान्त, सम एवं विकाररहित रहने, अपने नित्य-नैमित्तिक वकृत्वशक्तिसम्पन्न और कोई दूसरा कहीं भी नहीं है-कर्मोंको सावधानीपूर्वक करने तथा सान्त्वनापूर्ण मधुर वचन 'वक्ता बृहस्पतिसमो न ह्यन्यो विद्यते क्वचित्॥' बोलनेका उपदेश देवराज इन्द्रको देते हुए कहा—देवराज इन्द्र! जो सभीको देखकर पहले ही बात करता है और मुसकराकर (महा० अनु० १११।५) पुराणोंमें बतलाया गया है कि ये महान् तपस्वी महर्षि ही बोलता है, उसपर सब लोग प्रसन्न रहते हैं-अंगिराके पुत्र हैं। ये देवगुरु तथा वाचस्पति भी कहलाते यस्तु सर्वमभिप्रेक्ष्य पूर्वमेवाभिभाषते। हैं। नक्षत्रमण्डलमें प्रतिष्ठित होकर ये एक ग्रहके रूपमें स्मितपूर्वाभिभाषी च तस्य लोकः प्रसीदति॥ जगत्के कल्याण-चिन्तनमें निमग्न रहते हैं। सात वारोंमें भी (महा० शान्ति० ८४।६) इनका परिगणन है और शास्त्रीय मान्यतामें 'बृहस्पति' सब धर्मराज महाराज युधिष्ठिरको धर्म-तत्त्वका रहस्य प्रकारसे शुभ एवं मंगल ही करनेवाले हैं। पुराणों तथा बतलाते हुए आचार्य बृहस्पति कहते हैं-महाभारत आदिमें आचार्य बृहस्पतिके अनेक दिव्य चरित्र सर्वभूतात्मभूतस्य सर्वभूतानि पश्यतः।

और उपदेशप्रद आख्यान गुम्फित हैं। देवताओंके साथ ही **देवाऽपि मार्गे मुह्मन्ति अपदस्य पदैषिणः॥** असुर तथा किन्नर, नाग, गन्धर्व आदि देवयोनियों एवं (महा० अनु० ११३।७)

अर्थात् जो सम्पूर्ण भूतोंका आत्मा है, किंवा सबकी और रत्न आदि सब कुछका दान दे दिया गया, ऐसा समझना चाहिये; क्योंकि ये सभी पृथ्वीसे ही प्राप्त होते हैं-आत्माको अपनी ही आत्मा समझता है तथा जो सब भूतोंको

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

गतिका पता लगाते समय देवता भी मोहमें पड जाते हैं। विद्वान् पुरुषको चाहिये कि न्यायसे प्राप्त हुए धनके

समानभावसे देखता है, उस गमनागमनसे रहित ज्ञानीकी

द्वारा ही धर्मका अनुष्ठान करें; क्योंकि एकमात्र धर्म ही

परलोकमें मनुष्योंका सहायक है-तस्मान्यायागतैरर्थैर्धर्मं सेवेत पण्डित:॥

धर्म एको मनुष्याणां सहायः पारलौिककः।

(महा० अनु० १११।१६-१७) देवगुरु होनेके साथ-साथ बृहस्पतिजी अन्य प्राणियोंके

भी गुरुरूप हैं। इन्होंने अपने-अपने वर्णधर्मीं, अपने-अपने आश्रमधर्मींके कर्तव्यकर्मींको करनेपर विशेष बल दिया है, इनकी सदाचारनिष्ठा अत्यन्त सात्त्विक रही है। देवराज

इन्द्रको ये बार-बार सावधान करते रहते हैं। इन्द्रको दिया गया दानविषयक उपदेश इनकी बनायी स्मृति बृहस्पति-स्मृति तथा महाभारतमें विशेष रूपसे गुम्फित है। यहाँ

संक्षेपमें कुछ बातें प्रस्तुत हैं-

भूमिदान सबसे बड़ा दान है आचार्य बृहस्पति देवराज इन्द्रसे कहते हैं-राजन्!

जो भूमिदान देता है, उसके द्वारा सुवर्ण, रजत, वस्त्र, मणि

फालकृष्टां महीं दत्त्वा सबीजां शस्यशालिनीम्। यावत् सूर्यकरा लोकास्तावत् स्वर्गे महीयते॥

रहेगा, तबतक स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित रहेगा—

(बृहस्पतिस्मृति ६)

देनेसे नष्ट हो जाता है और वह व्यक्ति शुद्ध हो जाता है-

सुवर्णं रजतं वस्त्रं मणिरत्नं च वासव।

सर्वमेव भवेद्तं वसुधां यः प्रयच्छति॥

भूमिका दान करता है, वह जबतक लोकोंमें सूर्यका प्रकाश

जो मनुष्य जोती-बोयी और उपजी हुई खेतीसे भरी

(बृहस्पतिस्मृति ५)

अपनी आजीविकाके परवश हुआ व्यक्ति जो कुछ भी पाप करता है, वह सब 'गोचर्म' के बराबर भूमिके दान कर

'अपि गोचर्ममात्रेण भूमिदानेन शृध्यति॥' (बृहस्पतिस्मृति ७)

गोचर्म-भूमिका परिमाण आचार्य बृहस्पतिने 'गोचर्म'-भूमि कितनी लम्बी-

चौड़ी होती है, इसे बताते हुए कहा है कि दस हाथके दण्डसे तीस दण्डका एक निवर्तन होता है और दस निवर्तन विस्तारवाली भूमि 'गोचर्म'-भूमि कहलाती है। इस प्रकार (१० हाथ=एक दण्ड, तीस दण्ड=३०० हाथ या एक निवर्तन और १० निवर्तन=३,००० हाथ) तीन हजार हाथ या लगभग १^१/४ किमी० लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है। गोचर्मभूमिका एक अन्य

बछडियोंसहित एक हजार गायें जितनी भूमिमें आरामसे इधर-उधर चर सकें, घूम-फिर सकें, उतनी लम्बी-चौड़ी भूमि 'गोचर्म-भूमि' कहलाती है।* महाभारतमें बृहस्पतिजी कहते हैं - हे इन्द्र! सुवर्णदान,

परिमाप देते हुए कहा गया है कि एक वृषभ तथा बछड़े-

गोदान, भूमिदान, विद्यादान और कन्यादान—ये अत्यन्त शुभ फल देनेवाले हैं, किंतु मैं तो भूमिदानसे बढ़कर किसी दूसरे दानको नहीं मानता—

^{*} दशहस्तेन दण्डेन त्रिंशद्दण्डा निवर्तनम्। दश तान्येव विस्तारो गोचर्मेतन्महाफलम् ॥ सवृषं गोसहस्रं च यत्र तिष्ठत्यतन्द्रितम्। बालवत्सप्रसूतानां तद्गोचर्म इति स्मृतम्॥ (बृहस्पतिस्मृति ८-९)

۹/	पित दानकी तात्त्विक बातें * क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक
'न भूमिदानाद् देवेन्द्र परं किञ्चिदिति प्रभो।'	प्रपद्यैवं शर्वरीमुष्य गोषु
(महा० अनु० ६२।५६)	पुनर्वाणीमृत्यृजेद् गोप्रदाने॥
तदनन्तर विस्तारसे बृहस्पतिजीने भूमिदानकी महिमाका	(महा० अनु० ७६।७)
ख्यापन किया है। प्रकरणके उपसंहारमें वे कहते हैं—	अर्थात् गौ मेरी माता है। वृषभ (बैल) मेरा पिता है।
भूमिके समान कोई दान नहीं है, माताके समान कोई गुरु	वे दोनों मुझे स्वर्ग तथा ऐहिक सुख प्रदान करें, गौ ही मेरा
नहीं है, सत्यके समान कोई धर्म नहीं है और दानके समान	आधार है—ऐसा कहकर गौओंकी शरण लें और वह रात्रि
कोई निधि नहीं है—	गौओंके साथ मौन रहकर बिताकर प्रात:काल गोदानकालमें
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति मातृसमो गुरुः।	ही मौन-भंग करें।
नास्ति सत्यसमो धर्मो नास्ति दानसमो निधि:॥	बृहस्पतिजी बताते हैं कि जो गौके निष्क्रयरूपसे
(महा० अनु० ६२।९२)	उसके बदलेमें मूल्य, वस्त्र अथवा सुवर्ण दान करता है,
तीन अतिदान	उसको भी गोदाता ही कहना चाहिये। मूल्य, वस्त्र एवं
गोदान, भूमिदान और विद्यादान—ये तीन दान	सुवर्णरूपमें दी जानेवाली गौओंका नाम क्रमश: ऊर्ध्वास्या,
महादानोंसे भी बड़े अतिदान कहे गये हैं। अतिदान	भवितव्या और वैष्णवी है। संकल्पके समय इन्हींका
करनेवालेका सब प्रकारके पापोंसे उद्धार हो जाता है, ये	उच्चारण करना चाहिये। यथा—गौके बदले द्रव्यका निष्क्रय
दाताको तार देते हैं—	देनेपर 'इमां ऊर्ध्वास्यां तुभ्यमहं सम्प्रददे' इत्यादि कहे।
त्रीण्याहुरतिदानानि गावः पृथ्वी सरस्वती॥	आगे बृहस्पतिजी मान्धाताको बताते हैं कि साक्षात्
तारयन्ति हि दातारं सर्वात् पापादसंशयम्।	गौका दान लेकर जब ब्राह्मण अपने घरकी ओर जाने
(बृहस्पतिस्मृति १८-१९)	लगता है, उस समय उसके आठ पग जाते-जाते ही
भूमिहरणसे महान् पाप	दाताको अपने दानका फल मिल जाता है—
भूमिदान करनेसे जितने महान् पुण्यकी प्राप्ति होती	'गोप्रदाता समाप्नोति समस्तानष्टमे क्रमे॥'
है, उतने ही पापकी प्राप्ति भूमिहरण करनेवालेको होती है—	(महा० अनु० ७६।१७)
'भूमिदो भूमिहर्ता च नापरं पुण्यपापयोः।'	अन्नदानकी महिमा
	एक बार धर्मराज युधिष्ठिरने बृहस्पतिजीसे पूछा—
भूमिहर्ता यदि करोड़ों गोदान भी करे, तब भी वह	ब्रह्मन्! मनुष्य किस कर्मके अनुष्ठानसे सद्गतिको प्राप्त
शुद्ध नहीं होता—	होते हैं तो इसपर बृहस्पतिजीने बताया—अज्ञानवश अधर्म
'गवां कोटिप्रदानेन भूमिहर्ता न शुध्यति॥'	बन जानेपर उसके लिये प्रायश्चित करना चाहिये और
(बृहस्पतिस्मृति ३९)	मनको वशमें रखकर पुन: पाप न करे। मनुष्यका मन
गोदानकी तात्त्विक बातें	ज्यों-ज्यों पापकर्मकी निन्दा करता है, त्यों-त्यों उसका
एक बार राजर्षि मान्धाताके प्रश्न करनेपर गोदानकी	शरीर उस अधर्मके बन्धनसे मुक्त हो जाता है, यदि
तात्त्रिक बातें बताते हुए बृहस्पतिजीने कहा कि गोदान	सावधान हो ब्राह्मणोंको नानाविध दान करे तो दाताकी
करनेवालेको चाहिये कि वह नियमपूर्वक व्रतका पालन	उत्तम गति होती है, आगे फिर विविध दानोंका निरूपण
करे और एक दिन पूर्व ही ब्राह्मणका सत्कारकर उनसे	करते हुए उन्होंने अन्नदानको ही सर्वश्रेष्ठ बताया—
कहे कि मैं कल आपको एक गोदान करूँगा। फिर	'सर्वेषामेव दानानामन्नं श्रेष्ठमुदाहृतम्।'
गौओंके बीचमें प्रवेशकर निम्न प्रार्थनाकर गौओंकी शरण ले—	(महा० अनु० ११२।१०)
गौर्मे माता वृषभ: पिता मे	अन्नदान करनेवाले वास्तवमें प्राणदान करनेवाले हैं,
दिवं शर्म जगती मे प्रतिष्ठा।	उन्हीं लोगोंसे सनातन धर्मकी वृद्धि होती है—

'ते हि प्राणस्य दातारस्तेभ्यो धर्मः सनातनः॥' तालाब, बाग-बगीचेका जीर्णोद्धार करानेवाला नये तालाब आदि बनवानेका फल प्राप्त करता है। आचार्य बृहस्पति (महा० अनु० ११२।२४) पूर्त-धर्मकी महिमा कहते हैं-हे देवराज इन्द्र! जिसके बनाये हुए तालाब निःस्वार्थभावसे कुआँ, बावड़ी, तालाब, देवालय, आदिमें गर्मीके दिनोंमें भी पानी बना रहता है, सूखता

इस प्रकार हैं-

वापीकूपतडागानि

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

धर्मशाला, विद्यालय, अनाथालय, चिकित्सालय, मन्दिर, पौसला आदि बनवाना तथा उनका जीर्णोद्धार और छायादार एवं फलदार वृक्ष लगाना तथा मार्ग आदि बनवाना—ये सभी लोकोपकार एवं जनहितके कार्य

करना-करवाना पूर्त-धर्म कहलाता है। यह लोकोपकारी दान है, आचार्य बृहस्पतिने पूर्त-धर्मकी विशेष महिमा

गायी है और कहा है कि जो नये तालाबका निर्माण

करवाता है अथवा पुराने तालाबका जीर्णोद्धार कराता है,

वह अपने कुलका उद्धार कर देता है और स्वयं भी स्वर्गलोकमें प्रतिष्ठित होता है। पुराने बावड़ी, कुआँ, भगवन्नामके जपसे मनुष्य क्यासे क्या हो सकता है, इसके ज्वलन्त उदाहरण हैं महर्षि वाल्मीकि। ये प्रचेताके पुत्र हैं। प्राक्तन संस्कारवश कुछ दिन ये व्याध-कर्ममें लगे रहे, किंतु फिर सप्तर्षियोंके सत्संगसे 'मरा-मरा' जपकर वाल्मीकि नामसे प्रसिद्ध हुए और इन्होंने आर्षग्रन्थ

निदाघकाले पानीयं यस्य तिष्ठति वासव। स दुर्गं विषमं कृत्स्नं न कदाचिदवाप्नुयात्॥ (बृहस्पतिस्मृति ६२-६४) महर्षि वाल्मीकिद्वारा निरूपित दान-धर्मकी महिमा

पुनः संस्कारकर्ता च लभते मौलिकं फलम्॥

नहीं, उसे कभी कठोर विषम दु:ख प्राप्त नहीं होता अर्थात् वह सर्वदा सुखी रहता है।' आचार्यके मूल वचन

> यस्तडागं नवं कुर्यात् पुराणं वापि खानयेत्। स सर्वं कुलमुद्धत्य स्वर्गे लोके महीयते॥

> > उद्यानोपवनानि

िदानमहिमा-

इस दिव्य महाप्रबन्धका प्राकट्य हुआ। इसमें भगवान्

श्रीरामकी महत्ता, दयालुता, भगवत्ता और उनकी मर्यादित

जीवन-शैलीका निरूपण हुआ है। भक्ति, ज्ञान, सदाचार,

जप, तप, दान-पुण्य, उपासना तथा नाम-महिमाके गौरवसे

यह ग्रन्थ भरा पड़ा है। महर्षि वाल्मीकि स्वयं भक्ति, योग, तपस्या एवं सदाचारके मूल हैं, वनवासके समय भगवान् श्रीराम इनके आश्रममें आये थे। माता सीताने भी इनके

आश्रममें निवास किया था। महर्षि वाल्मीकिकी वाणी सत्य एवं धर्मसे सदा आप्लावित रही है। उनके दिव्य उपदेश बड़े ही कल्याणकारी और पालनीय हैं। वेदवत् प्रतिष्ठित श्रीवाल्मीकीय रामायणमें मूलतः भगवान्की मंगलमयी

कथाका और उनके पवित्र नामकी महिमाका निरूपण हुआ है, किंतु क्रमप्राप्त नित्य-नैमित्तिक कर्मीं, अपने-अपने वर्ण एवं आश्रमके नियमोंके परिपालन तथा उपासनाके स्वरूपका भी बीच-बीचमें बड़ा ही विशद वर्णन हुआ है। महर्षि वाल्मीकिजीने श्रीराम-कथाके पात्रोंद्वारा सर्वत्र शास्त्रोक्त

धर्मानुष्ठान कराया है। महर्षिने दानको अवश्यकरणीय

कृत्य बताकर दानकी महिमा तथा दान न करनेके /dharma | MADE WITH LOVE BY Ayinash/Sh

* महर्षि वाल्मीकिद्वारा निरूपित दान-धर्मकी महिमा * अङ्क] जिसका सार भाग यहाँ प्रस्तुत है— स्वशरीरं त्वया पुष्टं कुर्वता तप उत्तमम्। दान न करनेका दुष्परिणाम अनुप्तं रोहते श्वेत न कदाचिन्महामते॥ [राजा श्वेतका आख्यान] दत्तं न तेऽस्ति सूक्ष्मोऽपि तप एव निषेवसे। पूर्वकालकी बात है विदर्भ देशमें सुदेव नामके एक तेन स्वर्गगतो वत्स बाध्यसे क्षुत्पिपासया॥ यशस्वी राजा थे, उनके दो पुत्र थे। ज्येष्ठ पुत्रका नाम श्वेत (वाल्मी०रामा०उत्तर० ७८।१५-१६) और छोटेका नाम था—सुरथ। पिताकी मृत्युके अनन्तर ब्रह्माजी पुन: बोले—राजन्! उस वनमें उस सरोवरके श्वेतको राज्य मिला। श्वेत बड़े ही धर्मात्मा राजा थे। निकट जहाँ तुम्हारा दिव्य शव पड़ा है, महर्षि अगस्त्य धर्मके अनुकूल राज्य-शासन चला रहे थे। उन्होंने एक पधारेंगे तो उनकी कृपासे तुम्हारा यह कष्ट दूर हो जायगा। सहस्र वर्षतक राज्य किया, अनन्तर अपने छोटे भाईको इतना कहकर ब्रह्माजी चले गये और राजर्षि श्वेत महर्षि राज्य देकर राजा श्वेत एक दुर्गम वनमें तपस्या करने चले अगस्त्यजीके आगमनकी प्रतीक्षा करने लगे। गये, वहाँ एक सरोवरके तटपर उन्होंने दीर्घकालतक महान् वह समय आ गया। एक दिन अगस्त्यजी उस निर्जन तपका अनुष्ठान किया। तीन हजार वर्षोंतक दुष्कर तपके सुन्दर वनमें प्रविष्ट हुए और उस दिव्य सरोवरके निकट अनन्तर राजा श्वेतको उत्तम ब्रह्मलोक प्राप्त हुआ। किंतु स्थित उन्होंने एक हृष्ट-पुष्ट शव देखा, जो अत्यन्त निर्मल ब्रह्मलोक पहुँच जानेपर भी उन्हें भूख और प्यास बड़ा था। आश्चर्यचिकत हो वे यह दृश्य देख ही रहे थे कि कष्ट देते थे, जिसके कारण उनकी इन्द्रियाँ शिथिल हो आकाशसे एक सुन्दर विमान उतरा और विमानसे एक गयीं और वे बहुत दु:खित रहने लगे। ऐसे ही उनका बहुत सुन्दर पुरुष आकर उस शवका भक्षण करने लगा और समय व्यतीत हो गया। ऐसा क्यों हो रहा है, उनकी सरोवरका जल पीकर पुन: विमानमें बैठकर जानेको उद्यत समझमें भी नहीं आया, वे सोचते थे कि मैंने इतना महान् हुआ, विमानमें अनेक अप्सराएँ बैठी थीं, जो उस पुरुषको दुष्कर तप किया है और दीर्घकालतक धर्मपूर्वक राज्यका पंखा झल रहीं थीं, कौतृहलवश अगस्त्यजीने उस पुरुषसे शासन भी किया है, तब भी भूख-प्यास मेरा पीछा नहीं पूछा—हे देवतुल्य तेजस्वी पुरुष! आप कौन हैं तथा छोड़ती। दु:खित हो वे पितामह ब्रह्माजीके पास गये और किसलिये ऐसा घृणित आहार कर रहे हैं, आपका ऐसा दिव्य बोले—'भगवन्! यह ब्रह्मलोक तो भूख-प्यासके कष्टसे रूप है, आप देवलोकसे विमानसे यहाँ आये हैं और शवका रहित है, किंतु यहाँ भी क्षुधा-पिपासाका कष्ट मुझे छोड़ भक्षणकर वापस जा रहे हैं, इसका क्या रहस्य है, बतानेकी नहीं रहा है, यह मेरे किस कर्मका परिणाम है? हे प्रभो! कृपा करें। इसपर राजर्षि श्वेतने अपना सम्पूर्ण वृत्तान्त बता मेरा आहार क्या है, बतानेका कष्ट करें।' डाला और दान न देनेका ही यह दुष्परिणाम बताया। राजा श्वेतके ऐसा कहनेपर ब्रह्माजी बोले—सुदेवनन्दन! श्वेतने अपने तपके प्रभावसे यह जान लिया कि ये ही तुमने उत्तम तप करते हुए केवल अपने शरीरका ही पोषण मेरा उद्धार करनेवाले कुम्भयोनि अगस्त्यजी हैं, अत: वे किया है, किसीको कभी कुछ भी दानमें नहीं दिया, यह उन्हें प्रणामकर बोले-विप्रवर! मैंने अनेक सत्कर्म तो जान लो कि दान करना—खेतमें बीज बोनेके समान है। किये, किंतु कभी किसीको कुछ भी दानमें नहीं दिया, मेरे दानरूपी बीज बोये बिना कहीं कुछ नहीं जमता-कोई भी भाग्यसे आज आप यहाँ आये हैं, अब कृपाकर मेरे द्वारा भोज्य पदार्थ उपलब्ध नहीं होता। तुमने देवताओं, पितरों दिया जानेवाला यह आभूषण दानमें स्वीकार करें और मुझे एवं अतिथियोंके लिये कभी कुछ थोड़ा भी दान किया अपना कृपाप्रसाद दें। यह आभूषण दिव्य है, जो मनोवांछित हो, ऐसा नहीं दिखायी देता, तुम केवल तपस्यामें ही लगे फलोंको देनेवाला है, मेरा उद्धार करनेके लिये यह दान रहे, इसीलिये ब्रह्मलोकमें आनेपर भी तुम भूख-प्याससे स्वीकारकर आप मुझपर कृपा करें— इदमाभरणं सौम्य तारणार्थं द्विजोत्तम। पीड़ित हो रहे हो और तुम्हें प्रतिदिन मर्त्यलोकमें जाकर अपने ही शवका आहार ग्रहणकर अपनी भूख-प्यास प्रतिगृह्णीष्व भद्रं ते प्रसादं कर्तुमर्हिस॥ मिटानी पड रही है-(वा॰रा॰उत्तर॰ ७८। २३)

 इतिष्ठितम् दानमिहमा− **************************** ऐसे ही पुत्रेष्टि यज्ञके अवसरपर दशरथजीने ब्राह्मणोंको राजा श्वेतकी दु:खभरी बात सुनकर उनका उद्धार करनेकी दृष्टिसे अगस्त्यजीने वह दान स्वीकार कर लिया और प्रभूत धन और सहस्रों गोधन प्रदान किये-दानका यह प्रभाव हुआ कि दान ग्रहण करते ही राजा श्वेतका 'ब्राह्मणेभ्यो ददौ वित्तं गोधनानि सहस्रशः॥' वह पूर्व शरीर (शव) अदृश्य हो गया और राजर्षि श्वेत (वा०रा०बा० १८।२०) परमानन्दसे तृप्त हो प्रसन्नतापूर्वक ब्रह्मलोक चले गये— श्रीराम आदिके विवाहके पूर्व राजा दशरथने प्रत्येक मया प्रतिगृहीते तु तस्मिन्नाभरणे शुभे। पुत्रके मंगलके लिये एक-एक लाख गौएँ (कुल चार लाख) ब्राह्मणोंको दानमें दीं, उन सबके सींग सोनेसे मढे मानुषः पूर्वको देहो राजर्षेर्विननाश ह॥ प्रणष्टे तु शरीरेऽसौ राजर्षिः परया मुदा। हुए थे, सबके साथ बछडे थे और काँसेके दुग्धपात्र थे। (वा॰रा॰बा॰ ७२।२२-२४) श्रीराम जब वन जाने लगे तृप्तः प्रमुदितो राजा जगाम त्रिदिवं सुखम्॥ तो उन्होंने दान देकर सबको तृप्त कर दिया और त्रिजट (वा॰रा॰उत्तर॰ ७८। २७-२८) इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने उक्त आख्यानके नामक एक ब्राह्मणको तो यह कहा कि आप अपना डण्डा जहाँतक फेंक सकें वहाँ तकका गोधन आपका होगा, फिर माध्यमसे यह बताया है कि प्रतिदिन यथाशक्ति अवश्य दान करना चाहिये। अन्य सभी कर्म करो, किंतु दान न करो वैसा ही हुआ भी। ऐसे ही श्रीरामजीका नैमिषारण्यमें तो उसका दुष्परिणाम यह होता है कि दिव्य लोक प्राप्त अश्वमेध यज्ञ सम्पन्न हुआ तो उसमें दान-धर्मकी ऐसी होनेपर भी भूख-प्यास पीछा नहीं छोड़ती, यहाँतक कि उस प्रतिष्ठा हुई कि चिरजीवी आमन्त्रित मुनियोंको कहना पड़ा व्यक्तिको अपने ही शवका भक्षण करना पड़ता है, ऐसी कि ऐसा यज्ञ तो पहले कभी इन्द्र, चन्द्रमा, यम और स्थिति न आने पाये, अतः दान अवश्य करना चाहिये। वरुणके यहाँ भी नहीं हुआ, हमें किसी ऐसे यज्ञका स्मरण महर्षिने अपने महाप्रबन्धमें यत्र-तत्र दान-धर्मका नहीं, जिसमें दानका ऐसा उदार स्वरूप दिखायी दिया हो उल्लेख किया है। दशरथ आदि राजाओंने बड़े-बड़े और सम्पूर्ण यज्ञ दानराशिसे पूर्णत: अलंकृत रहा हो-यज्ञोंपर अनेक प्रकारके दान देकर ब्राह्मणोंको सन्तुष्ट 'नास्मरंस्तादृशं यज्ञं दानौघसमलंकृतम्।' किया, दीनों-अनाथोंको यथेच्छ सामग्री प्रदान की। महाराज (वा॰रा॰उत्तर॰ ९२।१५) दशरथजीने जब अश्वमेध यज्ञ किया तो ऋत्विजोंको सारी इस प्रकार महर्षि वाल्मीकिजीने अपने ग्रन्थमें यत्र-पृथ्वी दानमें दे दी-तत्र दानके अवसरोंपर महनीय उदारताका उल्लेख किया 'ऋत्विग्भ्यो हि ददौ राजा धरां तां कुलवर्धनः॥' है और देश, काल, पात्र, श्रद्धा, द्रव्यशुद्धि, दाता, प्रति-ग्रहीता आदिपर सूक्ष्म विचार किया है। महर्षि वाल्मीकिजीकी (वा॰रा॰बा॰ १४।४५) दृष्टि अत्यन्त दूरदर्शी और धर्मानुगामिनी रही है। धर्मकी इसपर ऋत्विज बोले—महाराज! आप अकेले पृथ्वीकी रक्षा करनेमें समर्थ हैं, हममें इसके पालनकी शक्ति नहीं प्रतिष्ठा बनी रहे, सदाचारकी मर्यादा बनी रहे, सभी है, अतः भूमिसे हमारा कोई प्रयोजन नहीं है। आप हमें अपने वर्ण एवं आश्रम-धर्मींका ठीक-ठीक पालन करें, भूमिके निष्क्रयके रूपमें कुछ दीजिये। तब महाराज दानादि सत्कर्मींका अनुष्ठान करते रहें और भगवान्के दशरथने दस लाख गौएँ, दस करोड़ स्वर्णमुद्रा और उससे मर्यादित क्रिया-कलापोंका अनुपालन करें-यही चाहते चौगुनी रजतमुद्रा अर्पित की, इसके साथ ही उन्होंने अपना थे। महर्षि वाल्मीकि और रामराज्यमें यह सब हुआ भी। सर्वस्व ब्राह्मणोंको दानमें दे दिया। जब उनके पास कुछ वाल्मीकीय रामायण साक्षात् वेदवाणी है। महर्षिने अपने भी नहीं बचा तो एक दरिद्र ब्राह्मण धनकी याचनाहेत् दिव्य ज्ञानके प्रभावसे श्रीरामावतारसे पहले ही रामायणकी उनके पास आये तो उन्होंने हाथका उत्तम आभूषण रचना कर दी थी। ऐसे पवित्रकीर्ति उन वाल्मीकिजीको उतारकर उन्हें दानमें दिया— बार-बार प्रणाम है-कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरम्। 'दरिद्राय द्विजायाथ हस्ताभरणमुत्तमम्॥' आरुह्य कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥ (वा०रा०बा०१४।५४)

राजर्षि मनुका दानविधान

* राजिष मनुका दानिवधान *

भारतीय सनातन संविधानके उद्भावक राजर्षि मनु रहता है, इसका निरूपण करते हुए बताया कि सत्ययुगमें और देवी शतरूपाका सदाचारमय जीवन सभी मानवोंके धर्म अपने चारों चरणों (तप, ज्ञान, यज्ञ तथा दान)-से

लिये सर्वथा अनुकरणीय है। ब्रह्माजी स्वयम्भू कहलाते हैं, उन्हींसे प्रकट होनेसे ये स्वायम्भुव मनु कहलाते हैं। चौदह

मनुओंमें ये आदिमनु हैं। ब्रह्माजीने जब सृष्टि बनायी तो

चित्र सं० महाभारत शान्तिपर्व,

प्रजापालनके लिये इन्हें ही राजा बनाया (महा०शान्ति० ६७। २१-२२), इसीलिये ये आदिराज कहलाते हैं। समस्त मानवोंका पालन करनेके कारण ये पिता भी कहलाते हैं-

'मनुष्पिता' (ऋक्० १।८०।१६)। इनमें ज्ञान, तप, सत्य, सदाचार, यम-नियम, ध्यान-

समाधिकी जैसी प्रतिष्ठा थी, वैसी ही अन्त:करणकी

निर्मलता और भगवद्धिक्तको प्रतिष्ठा भी थी। ये नारायणके अनन्य भक्त थे। आदिराज होनेसे धर्मपूर्वक प्रजाका पालन

करने तथा धर्माचरणका स्वरूप स्पष्ट करनेके लिये इन्होंने वेदसम्मत एक शास्त्रकी उद्भावना की, जो इन्हींके नामसे

मानवधर्मशास्त्र या मनुस्मृतिके नामसे प्रसिद्ध है। इसमें बारह अध्याय हैं। इसके पहले ही अध्यायमें मनुजीने सत्य स्थित रहता है, किंतु चारों चरणोंमेंसे तपका प्राधान्य रहता

रहती है और कलियुगमें महर्षियोंने दानको ही प्रधान धर्म कहा है-

तप:

परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानमुच्यते। यज्ञमेवाहुर्दानमेकं द्वापरे

इस प्रकार मनुजीने कलियुगमें अन्य साधनोंकी सहज साध्यता न होनेसे दानको ही कल्याणप्राप्तिका श्रेष्ठ

साधन बताया है। दानका स्वरूप राजर्षि मनु विधिज्ञ हैं और अत्यन्त दयालु भी हैं,

उन्होंने कलियुगके लिये दानको सहज साधन तो बता दिया, किंतु वे कहते हैं कि दान तभी सफल होता है, तभी

वह धर्मका साधन बनता है जबकि दान उचित देश-कालमें, योग्यपात्रमें श्रद्धाभक्तिपूर्वक विधि-विधानसे दिया जाय—

है, त्रेतामें ज्ञानका प्राधान्य रहता है, द्वापरमें यज्ञकी प्रधानता

कलौ

(मनु० १।८६)

(मनु० ७।८६।[८])

देशकालविधानेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम्। पात्रे प्रदीयते यत्तु तद्धर्मस्य प्रसाधनम्॥

दानमें सत्पात्रकी महत्ता

सत्पात्रमें दिये दानकी प्रशंसा करते हुए वे कहते हैं

कि विद्या एवं तपसे युक्त ब्राह्मणको श्रद्धापूर्वक थोड़ा या

बहुत; जितना भी दिया जाय, वह परलोकमें उसे प्राप्त होता

पात्रस्य हि विशेषेण श्रद्दधानतयैव च। अल्पं वा बहु वा प्रेत्य दानस्य फलमश्नुते॥

(मनु० ७।८६) मनुजी सदाचारी वेदज्ञ विद्वान्को दिये गये दानका

फल अनन्त बताते हैं—**'अनन्तं वेदपारगे'** (मनु० ७।८५)। आदि चारों युगोंमें चतुष्पाद् धर्म किस रूपमें प्रतिष्ठित

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− इतना ही नहीं, वे कहते हैं कि विद्या तथा तपसे और श्रद्धापूर्वक किया जाय। अन्यायसे प्राप्त द्रव्यसे किया समृद्ध ब्राह्मणको दिया गया दान महान् दु:खों तथा महान् गया सत्कर्म फलदायी नहीं होता— पापोंसे छुटकारा दिला देता है—'निस्तारयति दुर्गाच्य श्रद्धयेष्टं च पूर्तं च नित्यं कुर्यादतन्द्रितः। महतश्चैव किल्बिषात्' (मनु० ३।९८)। श्रद्धाकृते ह्यक्षये ते भवतः स्वागतैर्धनैः॥ विधिपूर्वक दान दानधर्मं निषेवेत नित्यमैष्टिकपौर्तिकम्। मनुजी कहते हैं कि दानदाताको विधिपूर्वक देना चाहिये (मनु० ४। २२६-२२७) विविध दानोंके विविध फल और प्रतिग्रहीताको भी विधिपूर्वक ग्रहण करना चाहिये। दानमें संकल्पकी आवश्यकता है। पहले दानदातासे दान लेनेकी राजर्षि मनु दानके स्वरूप तथा उसकी अवश्यकरणीयताको स्वीकारोक्ति ग्रहण करनी चाहिये, फिर उसका वरण करना बतानेके अनन्तर किस वस्तुके दानका क्या फल होता है, इसका संक्षेपमें निरूपण करते हैं ताकि लोग दान अवश्य करें, चाहिये, देयद्रव्यका पूजन करना चाहिये, दानग्रहणके बाद प्रतिग्रहीताको 'स्वस्ति' बोलना चाहिये। दाता पूर्वमुख तथा चाहे फलप्राप्तिकी अभिलाषासे ही लोगोंमें दानकी प्रवृत्ति ग्रहीता उत्तरमुँह बैठे। इत्यादि विधियाँ शास्त्रोंमें विस्तारसे जाग्रत् हो और वे दानधर्ममें प्रवृत्त हों। वे कहते हैं कि जल ही प्राणीका जीवन है, अत: जलदान करनेसे दाता भूख और बतायी गयी हैं। उनका पालन अवश्य करना चाहिये तभी दानका पूर्ण फल प्राप्त होता है अन्यथा देश, काल, पात्रका प्यासकी पीड़ासे निवृत्त होकर सदा सन्तृप्त रहता है। अन्नका ध्यान रखे बिना अविधिपूर्वक दिया गया दान तथा अविधिसे दान करनेवाला अक्षय सुख प्राप्त करता है, तिलोंका दान ग्रहण किया दान अनर्थकारी होता है— करनेवाला मनोभिलषित सन्तित प्राप्त करता है और दीपदान असम्यक् चैव यद्त्तमसम्यक् च प्रतिग्रहः। करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है-स्यादनर्थाय दातुरादातुरेव वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥ (महा०शान्ति० ३६।३९) अपात्रको दिया गया दान निष्फल (मनु० ४। २२९) अपात्रको दिये गये दान आदिके विषयमें मनुजी भूमिदान करनेवाला भूमिका आधिपत्य, सुवर्णदान कहते हैं कि जैसे ऊसर भूमिमें बीज बोनेसे कोई फल करनेवाला दीर्घायु, गृहदान करनेवाला उत्तम भवन तथा बोनेवालेको नहीं मिलता, ऐसे ही विद्याविहीन अथवा चाँदीका दान करनेवाला उत्तम लक्षणोंसे सम्पन्न रूप एवं अपात्र ब्राह्मणको दान देनेसे दाताको कोई फल प्राप्त नहीं सौन्दर्य प्राप्त करता है-होता—'न दाता लभते फलम्' (मनु० ३।१४२)। भूमिदो भूमिमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः। दानमें न्यायोपार्जित द्रव्य तथा श्रद्धाकी महिमा गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ मनुजी बताते हैं कि दानमें जैसे सत्पात्रका विचार है, (मनु० ४। २३०) वैसे ही द्रव्यशृद्धि तथा श्रद्धाकी भी महिमा है। वे कहते हैं— वस्त्रका दान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्वका दान इष्टापूर्तकर्म नित्यकर्म है। इष्ट कहते हैं; यज्ञादि दान-धर्म-करनेवाला अश्विनीकुमारोंके लोक, वृषभ (बैल)-का दान सम्बन्धी धर्माचरणके कार्योंको और पूर्त कहते हैं लोकोपकारकी करनेवाला अखण्ड ऐश्वर्य तथा गोदान करनेवाला प्रकाशमान दृष्टिसे किये गये कर्म यथा—कुआँ, बावली, तालाब, धर्मशाला, सूर्यलोकको प्राप्त करता है-औषधालय-निर्माण तथा वृक्षारोपण आदि। इन्हें आलस्य वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः। छोड़कर अवश्य करना चाहिये अर्थात् दानधर्म आदि कार्योंमें अनदुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥ प्रमाद नहीं करना चाहिये। ये नित्य करणीय पवित्र कृत्य हैं, (मनु० ४। २३१) किंतु ये तभी अक्षय फलदायी होते हैं, जब न्यायोपार्जित यान (सवारी) तथा शय्याका दान करनेवाला सुलक्षणा द्रस्रींभ्रष्माङ्गामुहिद्दवस्य Server https://decapg/ldhaqma THE THE THE PROPERTY AND THE PROPERTY AN

```
* प्रेमदान *
अङ्क ]
अहिंसक व्यक्ति उत्तम ऐश्वर्य, धान्य (गेहूँ, जौ, धान, चना,
                                                                        उदुबोधन
                                                         मनुजी धर्माचरण करनेवालोंको सावधान करते हुए
चावल, मुद्ग आदि अन्न) तथा फलोंका दान करनेवाला
                                                    कहते हैं कि सत्कर्म करके उसकी चर्चा न करें; क्योंकि
शाश्वत सुख और वेद-ज्ञानका उपदेश देनेवाला (वेदकी
शिक्षा देनेवाला) ब्रह्माजीकी समानताको प्राप्त करता है—
                                                    इससे कर्तृत्वाभिमान आता है और फलप्राप्ति नहीं होती-
                                                    'न दत्त्वा परिकीर्तयेत्', 'दानं च परिकीर्तनात्' (मनु०
                        भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः।
     यानशय्याप्रदो
                                                   ४। २३६-२३७) 'मैंने दान दिया या मैं दाता हूँ'—ऐसा
     धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्मसार्ष्टिताम्॥
                                                   कहनेसे दानका फल नष्ट हो जाता है। ऐसे ही वे बताते
                                    (मन्० ४। २३२)
              ब्रह्मज्ञानकी श्रेष्ठता
                                                   हैं कि 'मैं दानी कहलाऊँ' इस प्रसिद्धिको बनानेके लिये
     मनुजी कहते हैं कि जल, अन्न, गौ, भूमि, वस्त्र,
                                                   दान न दें- 'न दद्याद् यशसे दानम्' (महा०शान्ति०
तिल, सुवर्ण और घृत आदि—इन वस्तुओंके दानोंसे
                                                    ३६।३६)।
                                                               सत्कर्मानुष्ठानकी महिमा
ब्रह्मज्ञानके दान (वेदाध्ययन तथा वेदज्ञानकी शिक्षा)-की
                                                         मनुजी कहते हैं कि जिस प्रकार दीमक धीरे-
महिमा विशेष फल देनेवाली है—
                                                    धीरे संचय करके विशाल बॉबीका निर्माण कर लेती
     सर्वेषामेव दानानां ब्रह्मदानं विशिष्यते।
                                                        वैसे ही मनुष्यको धीरे-धीरे पुण्यार्जन करते
     वार्यन्नगोमहीवासस्तिलकाञ्चनसर्पिषाम्
                                                    रहना चाहिये; क्योंकि परलोकमें धर्मके अलावा और
                                    (मनु० ४। २३३)
     दानमें दाताके भावके अनुसार फल
                                                   कोई सहायक नहीं होता। प्राणी अकेला पैदा होता
     मनुजी एक महत्त्वपूर्ण बात बताते हुए कहते हैं कि दान
                                                   है, अकेला ही मरता है और अकेला ही पुण्य-पापका
देनेमें दाताकी जैसी श्रद्धा होती है, दाताका सकाम-निष्काम
                                                   फल भोगता है, मृत शरीरको बन्धु-बान्धव लकड़ी और
                                                   मिट्टीके ढेलेके समान भूमिपर छोड़ देते हैं, कोई उसके
जैसा भाव होता है, तदनुसार ही जन्मान्तरमें उसे फलप्राप्ति
होती है। अत: सात्त्विक भावनासे निष्काम होकर भगवत्प्रीत्यर्थ
                                                    साथ नहीं जाता। केवल धर्म ही उसके पीछे जाता है—
                                                    'धर्मस्तमनुगच्छति' (मनु० ४।२४१) और वही धर्म
दिया गया दान ही महान् कल्याणकारी होता है-
     येन येन तु भावेन यद् यद्दानं प्रयच्छति।
                                                   नरकसे उसका निस्तारण भी करता है। अत: इस लोकमें
     तत्तत्तेनैव भावेन प्राप्नोति प्रतिपूजितः॥
                                                   दान आदि श्रेष्ठ कर्मोंका अनुपालन करते रहना चाहिये—
                                    (मनु॰ ४। २३४) 'दानधर्मं निषेवेत' (मनु॰ ४। २२७)।
                                             प्रेमदान
                              ( पंचरसाचार्य श्रद्धेय स्वामी श्रीरामहर्षणदासजी महाराज )
                          प्रियतम कीजै प्रेम को दान।
                  7
                          प्रेम स्वरूप परात्पर प्रभु ही, राम रसिक रस खान॥
                                                                                 K
                  K
                          तव पद कमल मोर मन मधुकर, रहै सदा मेड़रान।
                                                                                 淡淡
                          नव नव नेह बढ़ै उर निर्मल, आँख रहैं अँसुआन॥
                          सुमिरण छुटै छुनहु जो प्यारे, विकल होंहि मम प्रान।
                                                                                 茶
                          अहनिशि करि कैंकर्य अबाधित, तव सुख रहीं भुलान॥
                          प्रेमिन संग सदा यह पावै, जहँ तिहरो गुण गान।
                  W.
                                                                                 K
                          'हर्षण' भूखो भीखहिं याचत, द्वारे जानकी जान॥
                                                                                 ₩
                                                  [ प्रेषक—पं० श्रीरामायणप्रसादजी गौतम ]
```

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् **िदानमहिमा**− दानवेन्द्र बलिपर भगवान्की अद्भुत कृपा (ब्रह्मलीन धर्मसम्राट् स्वामी श्रीकरपात्रीजी महाराज) राजा बलि तमाम लोक-लोकान्तरोंको जीतकर राजा यमराजने कहा—'तुम दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकके इन्द्र हो गया। लोग पहले सौ अश्वमेध करते हैं तब इन्द्र मालिक बने।' होते हैं, परंतु राजा बिल पहले इन्द्र हो गया, फिर सौ जुआरी दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका मालिक बना, अश्वमेधकी उसने तैयारी की। इन्द्रासनपर विराजमान हुआ। अप्सराएँ गुणगान करने आयीं, गन्धर्व गुणगान करने आये। उन गन्धर्वीमें नारद भी कहते हैं, बलि पूर्वजन्मका कोई जुआरी था। एक दिन जुएमें कहीं कुछ पैसे पाये। उन पैसोंकी उसने एक थे। नारदको हँसी आ गयी, हँस दिये। माला खरीदी अपनी प्रियतमा वेश्याके लिये। माला हाथमें जुआरी बोला—बताओ, क्यों हँसते हो? लिये वह जा रहा था। किसी पाषाणसे ठोकर खाकर गिर नारदजीने कहा-हमको श्लोक याद आता है, पड़ा। मूर्च्छित हो गया। कुछ देरमें होश हुआ तो उसने इसको पूर्वमीमांसक भी मानते हैं और नैयायिक भी मानते अनुभव किया, 'अब मैं मर जाऊँगा।' सोचने लगा—मेरी हैं— इस मालाका क्या होगा? मेरी यह बहुत खूबसूरत माला सन्दिग्धे परलोकेऽपि कर्तव्यः पुण्यसञ्चयः। मेरी प्रियतमातक तो पहुँची नहीं। हाँ ठीक है, कभी मैंने नास्ति चेन्नास्ति नो हानिरस्ति चेन्नास्तिको हतः॥ महात्माके मुखसे सुन रखा है, वस्तु 'शिवार्पण' कर देनेसे (श्लोकवार्तिक, कुमारिलभट्ट) बहुत लाभ होता है। 'शिवार्पण' कर देनेसे कुछ होता होगा अर्थात् परलोकमें संशय हो तो भी पुण्यका संचय तो हो जायगा। न होगा तो मर तो रहा ही हूँ, माला तो करते चलो। अगर परलोक नहीं है तो आस्तिक का कोई बेकार जा ही रही है। इस दृष्टिसे जुआरीने माला नुकसान नहीं है। कहीं परलोक सत्य हुआ तो नास्तिक शिवजीको अर्पण कर दी। मारा जायगा। जुआरी माला 'शिवार्पण' करके मर गया। यमराजके नारदजीने कहा—'जुआरी! तू जन्म (जीवन)-भर दूत पकड़कर ले गये। यमराजके सामने खड़ा किया। जुआ खेलता था। जुएमें कोई निश्चित आमदनी तो होती उन्होंने चित्रगुप्तसे कहा—'देखो, इसका बहीखाता।' नहीं—'लग गया तीर नहीं तो तुक्का।' तूने यही सोचा कि चित्रगुप्तने कहा—'यह तो जन्म-जन्मान्तर, युग-'शिवार्पण' करनेसे कुछ होता होगा तो हो जायगा, न होगा तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको

युगान्तर, कल्प-कल्पान्तरका पापी है। बस, अभी-अभी तो मर तो रहे ही हैं, माला तो बेकार जा ही रही है, शिवको थोड़ी देर पहले द्यूतमें पैसा पाकर इसने माला खरीदी थी अर्पण कर दें। इस दृष्टिसे तूने शिवार्पण किया और वेश्याके लिये। ठोकर खाकर रास्तेमें गिर पड़ा। इसने देखा उसका परिणाम यह हुआ कि दो घड़ीके लिये इन्द्रलोकका कि माला अब निरर्थक हो रही है तो शिवार्पण कर दिया। स्वामी है। इसलिये मुझे हँसी आयी।'

बस, यही एक इसका पुण्य है।' जुआरी सिंहासनसे उतरा और नारदजीसे बोला— धर्मराज जुआरीसे बोले—'भाई! तुम पहले पुण्यका 'गुरुदेव! अब हम सारे इन्द्रासनपर तुलसीदल रख देते हैं।'

फल भोगोगे या पापका?' किसी ब्राह्मणको बुलाया और चिन्तामणिका दान कर जुआरीने कहा—पाप तो जन्म-जन्मान्तरके हैं, उनको दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाया और नन्दनवनका दान कर

भोगने लगेंगे, तो उनके अन्तका कुछ पता नहीं, इसलिये दिया। किसी ब्राह्मणको बुलाकर ऐरावतका दान कर दिया, पहले पुण्यका फल चाहिये। अमृतके कुण्ड-के-कुण्डका दान कर दिया। इस तरह

इतनेमें दो घड़ी बीत गयी। इन्द्र आया और बोला—'हमारा ऐरावत हाथी कहाँ गया?'

उत्तर मिला—'जुआरी दान कर गया।'

इन्द्र बोला—'कामधेनु आदि कहाँ हैं?'

बड़े बिगड़े इन्द्र। यमराजके पास आये। यमराज भी जुआरीको डाँटने लगे।

उत्तर मिला—'सब कुछ जुआरीने दानमें दे डाला।'

जुआरीने कहा—'भैया! हमें जो करना था हमने कर लिया, अब आपको जो करते बने, सो आप करो।'

यमराजकी आँखें खुलीं। उसने कहा—अब यह नरक नहीं जायगा, अब तो यह इन्द्र ही होगा। जब

नाजायज उद्देश्यसे खरीदी हुई, नाजायज पैसेकी मालाको संशय रहनेपर भी 'शिवार्पण' कर दिया, उसके फलस्वरूप

दो घड़ीके लिये इन्द्र बना, तो अब इसने विधिवत् इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये यह इन्द्र ही

इन्द्रलोकका ही दान कर दिया है। इसलिये होगा। वही जाकर राजा बिल बना।

इन्द्र प्राय: त्यागी नहीं होते। अविवेकी इन्द्रोंमें औदार्य नहीं होता। तभी वे अक्षर तत्त्वके अनुसन्धानमें तत्पर और

जगत्से पूर्ण विरक्त महापुरुषोंको भी धन-जन और स्वर्गादिमें आसक्त होकर ही तपस्या करनेवाले समझकर उपद्रव करते हैं। लेकिन राजा बलि ऐसा नहीं था। बड़ा

त्यागी था। अपना सर्वस्व भगवान् वामनको उसने शुक्राचार्यके मना करते रहनेपर भी सौंप दिया। यह देखकर शुक्राचार्यजी नाराज हो गये। शाप दे

दिया, पर बलिने दान कर दिया। फिर क्या बात थी।

पगमें मैंने तेरा सब कुछ ले लिया। एक पग तो बाकी ही रहा। भगवान्के पार्षदोंने वारुण-पाशमें राजा बलिको बाँध दिया।

बिलने कहा—'पूछ लूँ एक बात!' भगवान्ने कहा—'पूछ लो।' बिलने कहा—'धन बड़ा होता है कि धनवान् बड़ा होता है ?'

भगवान्को उसके लिये कहना पड़ा—'राजन्! धन बड़ा नहीं होता, धनवान् बड़ा होता है।' बिल—'भगवन्! धनवान् बड़ा होता है धनसे आपको

यह मान्य है न?' भगवान्—'हाँ-हाँ, मान्य है।' बलि—'तो मैं धनवान् हूँ न? मैं अपने-आपको ही

अर्पित कर रहा हूँ, तीसरा पैर पूरा करनेके लिये। तीसरा हर पग मेरे सिरपर धरो और बस मेरा दान पूरा हो गया।''जब धनसे बड़ा धनवान् है'यह मान्य ही है तो सांगता-सिद्धिके

गया।' दान-पूर्ति और सांगता-सिद्धिके लिये मुझ धनवान्के
 सिरपर ही आपके श्रीचरण प्रतिष्ठित हों।
 भगवान्ने ब्रह्माजीसे कहा—'हमने इस (बलि)-का
 यश दिग्दिगन्तमें विकीर्ण-विस्तीर्ण करनेके लिये यह सब

लिये जो कुछ चाहिये, उसके सहित मेरा दान पूरा हो

गड़बड़ किया है, परंतु इसने कोई गड़बड़ नहीं की।

इसका ढंग बहुत सौम्य है। भगवान् बोले—'भाई! तुम्हें

क्या दें?' बिल बोले—'महाराज! हमारी जिधर भी दृष्टि जाय, उधर हम आपका ही दर्शन करें।' कहते हैं, राजा बिलकी बैठकके बावन दरवाजे हैं।

भगवान्ने सोचा, न जाने किस दरवाजेपर बलिकी दृष्टि चली जाय? तो बावनों दरवाजोंपर शंख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए सर्वान्तरात्मा ब्रह्माण्डनायक भगवान् पहरेदारके रूपमें विराजमान हैं।

जीवोंपर श्रीभगवान्की अहैतुकी कृपा सदा ही रहती है। जीव केवल अपने त्याग, तपस्या आदि साधनोंके बलपर इस

सम्पूर्ण जगत्की सृष्टि की है, पर यहाँ जो कुबुद्धि हैं, वे भवसागरसे कभी तर नहीं सकता। बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्र, महात्मागण अनन्त जन्मोंतक त्याग-तपस्या आदि साधनकर आपकी इस सम्पत्तिपर अपना स्वामित्व अंगीकार करते श्रीभगवान्के पास पहुँचते हैं। किंतु जब भगवान्की भास्वती हैं।' वस्तुत: सारा विश्व भगवान्का है; अत: सर्वस्व अनुकम्पा भक्तोद्धारके लिये आतुर हो जाती है, तब श्रीभगवान् समर्पण ही मनुष्यका परम कर्तव्य है। इसमें भी भगवत्कृपा स्वयं भक्तके पास जानेके लिये बाध्य हो जाते हैं और वे उसका ही कारण होती है। कृपापूर्वक उद्धार करते हैं। श्रीभगवान्ने वामनरूप धारणकर श्रीप्रह्लादजीने कहा कि 'प्रभो! लोग कहते हैं कि दानवेन्द्र बलिको बाँध लिया। वह घटना सचमुच बड़ी ही भगवान् देवताओंका पक्षपात करनेवाले हैं, किंतु आज यह करुणापूर्ण थी। जिसने अपना सर्वस्व समर्पित कर दिया हो, बात विदित हो गयी कि तत्त्वत: आप असुरोंके भी उस बलिके प्रति श्रीभगवान्का यह व्यवहार आपातत: सहसा पक्षपाती हैं, उनपर भी आपकी अजस्त्र कृपा रहती है। तभी बड़ा कठोर-सा प्रतीत होता है, किंतु विचार करनेपर ज्ञात होता तो आप बलिके घरमें उनके सभी द्वारोंपर चक्र लिये हुए है कि इस लीलाके मूलमें भी उन कृपालुकी अनन्त कृपा ही खड़े दिखायी पड़ते हैं। यह कैसी विशेषता है कि आप किसी देवताके यहाँ चक्र लिये खड़े नहीं दीखते, पर छिपी है। ब्रह्माजी कुछ कहना चाहते थे, पर इसी बीच महामना बलिके यहाँ पहरा दे रहे हैं।' बलिकी पत्नी श्रीविन्ध्यावलीजी श्रीभगवान्के सामने आ जाती हैं। वे कहती हैं— यह महान् आश्चर्य है कि भगवान् वामनरूपमें क्रीडार्थमात्मन इदं त्रिजगत् कृतं ते दानवेन्द्र बलिके सभी द्वारोंपर खड़े दीखते हैं। बलिकी स्वाम्यं तु तत्र कुधियोऽपर ईश कुर्यु:। आँखें जहाँ जाती हैं, वहीं श्रीभगवान् दिखायी पड़ते हैं। बलिका जीवन परम धन्य है। वस्तुत: यह सब बलिके (श्रीमद्भा० ८। २२। २०) अर्थात् 'प्रभो! आपने अपनी क्रीडाके लिये ही इस दानकी महिमा है।

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

[दानमहिमा-

दानका फल

भूप्रदो मण्डलाधीशः सर्वत्र सुखितोऽन्नदः॥

तोयदाता सुरूपः स्यात् पुष्टश्चान्नप्रदो भवेत् । प्रदीपदो निर्मलाक्षो गोदातार्य्यमलोकभाक् ॥

स्वर्णदाता च दीर्घायुस्तिलदः स्याच्य सुप्रजः। वेश्मदोऽत्युच्चसौधेशो वस्त्रदश्चन्द्रलोकभाक्॥

लक्ष्मीवान् वृषभप्रदः। सुभार्यः शिबिकादाता सुपर्यङ्कप्रदोऽपि च॥ दिव्यदेहो

श्रद्धया प्रतिगृह्णाति श्रद्धया यः प्रयच्छति । स्वर्गिणौ तावुभौ स्यातां पततोऽश्रद्धया त्वधः॥

भूमिदान करनेवाला मण्डलेश्वर होता है, अन्नदाता सर्वत्र सुखी होता है और जल देनेवाला सुन्दर रूप पाता है। भोजन देनेवाला हृष्ट-पुष्ट होता है। दीप देनेवाला निर्मल नेत्रसे युक्त होता है। गोदान देनेवाला

सूर्यलोकका भागी होता है, सुवर्ण देनेवाला दीर्घायु और तिल देनेवाला उत्तम प्रजासे युक्त होता है। घर देनेवाला

बहुत ऊँचे महलोंका मालिक होता है। वस्त्र देनेवाला चन्द्रलोकमें जाता है। घोड़ा देनेवाला दिव्य शरीरसे युक्त होता है। बैल देनेवाला लक्ष्मीवान् होता है। पालकी देनेवाला सुन्दर स्त्री पाता है। उत्तम पलंग देनेवालेको भी

यही फल मिलता है। जो श्रद्धापूर्वक दान देता और श्रद्धापूर्वक ग्रहण करता है, वे दोनों स्वर्गलोकके अधिकारी

बेमोतबैंगाङ्गत क्रिङ्खेले के डोंक्रिक्स भारतहाः क्रिडाट है gydratta हा ाध MADE WITH LOVE BY Avinash/Sh

* सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा * सनातन हिन्दू संस्कृतिमें दान-महिमा [ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबाजीके उपदेश] एक बारकी बात है, भक्तिरसमय श्रीवृन्दावनधाममें बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रविहं न रामु। यमुना नदीके तटपर ब्रह्मलीन श्रीदेवराहा बाबा दानके राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह बिश्रामु॥ स्वरूपपर अपना अनुभव प्रस्तुत कर रहे थे। उन्होंने (रा०च०मा० ७।९०क) भगवान्की कृपा बिना न तो उनमें विश्वास होता है बताया— देनेका भाव 'दान' कहा जाता है। दानद्वारा ही और न उनका भजन ही होता है। भजन करना भक्तका आत्मसमर्पण-भाव है। आत्म-समर्पण-भावके बिना भगवान्का मनुष्यका अन्त:करण पवित्र होता है और पवित्र अन्त:करण होनेपर ही भगवान्की प्राप्ति होती है। दानका अर्थ केवल अनुभव अपने हृदयमें नहीं होता है। इस प्रकार आत्मसमर्पण-रूप दानकी महिमा अपार है। यह मानव-शरीर भगवान्की धनका ही दान नहीं है, बल्कि दानका अर्थ भगवानुके प्रति मन, बुद्धि, श्रद्धा और विश्वास अर्पित करना भी है। सब भक्ति-साधनामें लगनेके लिये ही प्राप्त हुआ है, अत: इसे

कुछ भगवान्ने ही हमें दिया है, हमारा अपना कुछ नहीं है। भगवान्द्वारा दी हुई वस्तु भगवान्को ही देना दानका सच्चा स्वरूप है। दान आत्मकल्याणका महत्त्वपूर्ण साधन है। भगवान्ने गीता (१८।५)-में कहा है-

यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्। यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥ अर्थात् यज्ञ, दान और तपरूप कर्मका त्याग कभी नहीं करना चाहिये। ये मनीषियोंको पवित्र करते हैं। दान करनेकी सामग्रियाँ तथा शक्तियाँ अनन्त रूपोंमें भगवान्ने हमें दी हैं। उनका सदुपयोग करनेकी विवेकशक्ति भी

उन्होंने हमें प्रदान की है। लेकिन उधर ध्यान नहीं देनेके कारण उस नित्यप्रभुके नित्ययोगका अनुभव हमें नहीं होता। यदि प्रभुको अपने हृदयमें देखना चाहते हो तो सत्संग, स्वाध्याय, नाम-कीर्तन तथा प्रभुकी लीलामें अपने मन एवं बुद्धिको जोड दो, यही जीवनदान सच्चा

विषयमें कहा है-मय्येव मन आधत्स्व मयि बुद्धिं निवेशय। निवसिष्यसि मय्येव अत ऊर्ध्वं न संशय:॥

पारमार्थिक दान है। भगवान्ने भी इसी जीवनदानके

(गीता १२।८) नाम-साधनामें लगना श्रद्धा और विश्वासका दान है। दान वास्तवमें भगवान्के प्रति श्रद्धा और विश्वासरूप

आत्मसमर्पण है, जिसकी अनुभूति प्रकट करते हुए

तुलसीदासजी महाराजने कहा है-

भगवानुमें लगाना ही जीवनमें सच्चा दान है। दानकी महिमा हृदयसे ही समझी जाती है। आत्मभाव तथा ईश्वरभावमें रहनेवाले मनुष्य देवमानव

कहे जाते हैं तथा शरीर एवं संसारके भावमें रहनेवाले मनुष्य

असुरमानव कहे जाते हैं। देवमानवकी प्रवृत्ति दैवीप्रवृत्ति और असुरमानवकी प्रवृत्ति आसुरीप्रवृत्ति कही जाती है। सब प्रकारके धन भगवान्के ही दिये हुए हैं, ऐसा समझकर मानव भगवद्भावसे जो दान देता है, वह सर्वश्रेष्ठ दान है। दानकी क्रिया शास्त्रविहित शुभकर्म है, लेकिन इसका सम्बन्ध भगवान्के साथ न होनेपर केवल कर्ममात्र ही रह

शुद्धि अर्थात् आत्मशुद्धि नहीं हो पाती। शरीर और जीव—दोनोंके मालिक भगवान् हैं, अत: भगवान्की भावनासे ही दान करना सर्वोत्तम है। मनुष्योंका अधिकार केवल उतने ही धनपर है, जितनेसे उनकी भुख मिट जाय। इससे अधिक सम्पत्तिको

जो अपनी मानता है, वह चोर है, उसे दण्ड मिलना चाहिये। मनुष्यको प्रारब्धसे प्राप्त और दान आदिसे बचे हुए धनका ही उपयोग अपने जीवनमें करना चाहिये। आत्मभाव ही भगवान्का भाव है। सबमें भगवान् देखते हुए नित्य दान करना चाहिये।

सात्त्विक दान करनेसे आत्मसाक्षात्कार होता है। दान करनेसे दाताका मन पवित्र बनता है और दुर्गुण एवं

जाता है। अज्ञान और स्वार्थभाव रहनेसे दानद्वारा अन्त:करणकी

दुराचारकी मात्रा घटती ही है। मनुस्मृतिमें बताया गया है कि इस कलियुगमें धर्मके चार चरणोंमें केवल एक धर्म 'दान' ही बच गया है— हो जाता है जो मानव-जीवनका अन्तिम लक्ष्य है। दानका सच्चा रूप आत्म-समर्पण है। अतः भक्तिभावसे दान 'दानमेकं कलौ युगे।' तुलसीदासजीने इसीका भाव बताते हुए कहा है— करना उचित है। दानका लक्ष्य भगवत्प्राप्ति है। भगवत्प्राप्तिमें देहासिक तथा कर्मफलासिक मिट जाती है। प्रगट चारि पद धर्म के किल महुँ एक प्रधान। तुलसीदासजीने दानकी भावनाको धर्म तथा भक्तिमणि, जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ दोनों कहा है। उनकी वाणी देखी जाय-(रा०च०मा० ७।१०३ख) पर हित सरिस धर्म निहं भाई। पर पीड़ा सम निहं अधमाई॥ अर्थात् किसी भी प्रकारसे दान दिया जाय तो दाताका कल्याण ही होता है। इसलिये मनुष्यको दान देनेका चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं॥ स्वभाव अवश्य बनाना चाहिये। दान देना शुभ कर्म है और सो मिन जदिप प्रगट जग अहई। राम कृपा बिनु निहं कोउ लहई।। इससे शुभ संस्कार बनते हैं। जिससे अन्त:करण निर्मल (रा०च०मा० ७।४१।१, ७।१२०।१०-११) बनता है, उसे संस्कार कहते हैं। छोटे-से-छोटा और साधारण-से-साधारण कर्म भी पूज्य बाबाने दानके सम्बन्धमें विशेष बात बताते हुए यदि भगवान्के उद्देश्यसे निष्कामभावपूर्वक किया जाता है कहा—'बच्चा! भक्तमें एक भगवद्भावनाकी विशेषता रहती तो उससे भगवत्प्राप्ति हो जाती है। भगवान्की प्राप्तिमें है। वह भगवद्भावनासे दान देकर भगवान्को प्रसन्न करता क्रियाकी प्रधानता नहीं है, बल्कि श्रद्धाकी विशेष महत्ता है। कलियुगमें नाम-संकीर्तनकी विशेष महिमा है। भक्त है। आध्यात्मिक संस्कृतिमें साधककी श्रद्धाका विशेष मूल्य भगवान्का नाम-संकीर्तन करते हुए ही कोई वस्तु दूसरोंको है। अतः दान ईश्वर-भावसे करना चाहिये। दानद्वारा देता है। भगवान्की भावनासे दान करनेपर भक्त गुणातीत भगवत्प्राप्ति होती है, यह दानकी अपार महिमा है। बन जाता है और उसे भगवान्के समग्र रूपका अनुभव [प्रेषक — श्रीरामानन्दजी चौरासिया 'श्रीसन्तजी']

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

९८

दानमिहमा−

दानकी महिमा

(पं० श्रीदेवेन्द्रकुमारजी पाठक 'अचल') दान ही को मान होत, दान ही महान होत, से विनम्रता नम्रता, फरत दुर्भाव जात, वैरी अभाव सुबेलि ही सुमन से झरत ही से ज्ञान होत दान ही से ध्यान होत, जियत दम्भ ही से हारे देव दान से विजय स्वमेव, भोर द्वारे है॥१॥ ध्वजा फहरत बिकानो मरजाद डोम के हरीचंद नहीं गीलो मृत पुत्र देख चीरो अरकसिया चला पुत्र, हित गर्वीलो है ॥ मोरध्वज दुढ़, दान भूमि बलि दियो साढ़े पग बामन नपायो हठीलो तन अलग कहाँ लौं बखान में में चलिबे पथरीलो है॥२॥ सूदो

* दानकी रूपरेखा*** अङ्क] ********************* दानकी रूपरेखा (ब्रह्मलीन स्वामी श्रीअखण्डानन्दसरस्वतीजी महाराज) सामवेदमें एक सेतुगान है। सेतुगान उसे कहते हैं, समझी ? हाँ, समझी। खुब अच्छी तरह समझी। हमलोग जो सेतुका काम करे। जीवनमें चार चहारदीवारियाँ हैं, बड़े कामुक हैं, भोग-परायण हैं, इसलिये आपने हमारे जिनसे तुम बँधे हुए हो। वे चहारदीवारियाँ क्या हैं? वे लिये उपदेश दिया है कि इन्द्रियोंका दमन करो, दमन हैं—अश्रद्धा, असत्य, लोभ और क्रोध। जेलखानेमें जैसे करो। अपनी इन्द्रियोंको जिनमें स्वच्छन्द, उच्छुंखल, चहारदीवारी होती है-उसीकी तरह इनका वर्णन है। ये बेधड्क, बेरोक-टोककी प्रवृत्ति है, उसपर काबू करो। तुमको आगे बढ़ने नहीं देतीं। अब ब्रह्माजीने मनुष्योंको बुलाया और उनसे पूछा कि तुम अश्रद्धया श्रद्धां असत्येन सत्यं अक्रोधेन क्रोधं दानेन अदानम्। हमारे उपदेशको ठीक-ठीक समझ गये। हाँ महाराज, समझ गये। आपने यह कहा कि हमलोग बड़े लोभी हैं। दुस्तरान् सेतुं स्तर दुस्तरान्। इतना संग्रह न तो कोई देवता करता है और न कोई दैत्य श्रद्धासे अश्रद्धाकी चहारदीवारी पार करो। सत्यसे असत्यकी चहारदीवारी पार करो। अक्रोधसे क्रोधकी करता है। यह जो हमारे जीवनमें लोभ है, इसके लिये चहारदीवारी पार करो और दानसे लोभकी चहारदीवारी आपने 'द' शब्दका उच्चारण करके बताया कि तुमलोग दान करो। ब्रह्माजीने तीनोंकी समझका समर्थन किया। पार करो। वेदके एक मन्त्रमें आता है कि एक बार देवता, दैत्य उन्होंने काम-निवारणके लिये उपदेश दिया देवताओंको, क्रोध-निवारणके लिये उपदेश दिया दैत्योंको और लोभ-और मनुष्य तीनों प्रजापतिके पास गये और उन्होंने कहा निवारणके लिये उपदेश दिया मनुष्योंको। इसीलिये कि आप बड़े-बूढ़े हैं-हमारे पिता-पितामह हैं-हमें कुछ मनुष्योंके जीवनमें जो दान है, यह उनका विशेष धर्म है। उपदेश कीजिये। ब्रह्माजीने तीन बार कहा-द-द-द।

पहले बहुत सरल और बहुत विस्तारसे उपदेश नहीं किया जाता था। वैदिक रीति यही थी कि बात संक्षेपमें कह दी जाय। श्रोता विचार करके और अपनी बुद्धिका प्रयोग करके किसी विषयको समझे तो उसकी बुद्धि बढ़ेगी।

यदि उपदेश करनेवाला ही सरल करके खोलकर उसको बता देगा तो श्रोताकी बुद्धि नहीं बढ़ेगी। सरल रूपसे समझानेपर काम तो वह कर सकेगा, पर श्रोताकी समझदारी नहीं बढ़ेगी। पहलेके बड़े-बढ़ोंको यह ध्यानमें रखना पड़ता था कि हमारे बच्चोंकी समझ बढ़े और वे संकेतकी भाषा भी समझें। इसलिये ब्रह्माजीने दैत्योंको बुलाया और पूछा कि मेरे प्यारे बच्चो! तुमने मेरे 'द' का क्या अर्थ समझा? उन्होंने कहा कि समझ गये महाराज! अच्छी तरह समझ गये। हमलोग अपने हृदयमें बहुत क्रोध रखते हैं, द्वेष रखते हैं, हमारे अन्दर यह दोष है, यह दुर्गुण

है, आपने जो 'द' का उच्चारण किया, उसका अर्थ है

'दया'। आपने हमारे अनुरूप उपदेश किया है कि हम दया

करें, क्रूरता न करें। इसके बाद प्रजापितने देवताओंको

बुलाया और उनसे पूछा कि देवताओ! तुमने मेरी बात

मनुष्यके लिये आवश्यक है कि वह स्वयं खा-पीकर सन्तोष न करे, बल्कि दूसरोंको खिला-पिलाकर सन्तोष करे, नहीं तो कितना भी इकट्टा कर लो, अन्तमें उसको छोड़कर जाना पड़ता है। इसलिये श्रुति कहती है कि 'तस्मात् दानं परमं वदन्ति'—दान परमधर्म है। यदि दाता बुद्धिमान् हो तो दान करके अपनेको पवित्र कर सकता है। जैसे लोग अपनेको यज्ञसे पवित्र करते हैं, जलसे पवित्र करते हैं, ध्यानसे पवित्र करते हैं, ज्ञानसे पवित्र करते हैं, वैसे ही बुद्धिमान् दाताको दान परम पावन बना देता है। 'पावनानि मनीषिणाम्' का

अर्थ है कि 'मनीषिणां पावनानि न तु मूर्खाणाम्।'

ऐसा क्यों? इसलिये कि मूर्खको दान अभिमानी बना

देता है। पावन माने वह जो स्वयं पवित्र हो और

सम्बन्धमें लोगोंको बहुत कम जानकारी है। जो देते हैं,

उनको भी बहुत कम जानकारी है। लोग दान करते हैं-

यह ठीक है। परंतु यह समझना चाहिये कि दान कैसे

इस प्रकार दानमें बड़ा सामर्थ्य है; किंतु दानके

दूसरोंको भी पवित्र कर दे।

 इतिष्ठितम् दानमिहमा− ********************** करना चाहिये, क्यों करना चाहिये और उसके भीतर क्या बाबूजीकी तनख्वाह कम हो गयी। उन्होंने अपने रसोइयेसे होना चाहिये? वकालत करना है तो किसी बड़े वकीलके कहा कि खर्च कुछ कम करो; क्योंकि मेरी तनख्वाह कम नीचे रहकर सीखना पड़ता है और डॉक्टरी करनी हो तो हो गयी है। इसपर रसोइयेने बाबूजीको तो रूखी रोटी दे डॉक्टरके नीचे रहकर सीखना पडता है, उसी तरह पढना दी और स्वयं घीकी चुपड़ी रोटी खाने लगा। बाबूजी बोले हो तो पण्डितके साथ रहकर पढना पडता है। लेकिन दान कि यह क्या करते हो भाई! रसोइया बोला कि बाबूजी! करनेकी जो रीति-नीति है, उसको तो लोग सीखते ही आपकी तनख्वाह कम हुई है, लेकिन मेरी तनख्वाह कम नहीं हैं। नहीं हुई। मैं पहले ही कह देता हूँ कि आपलोग मुझसे दानकी इसका मतलब यह है कि अपने जो अधीन हैं, महिमा, उसकी रीति-नीति तो सुनो, लेकिन इसे सुनकर उनको पीडा पहुँचाये बगैर ही यज्ञ करना चाहिये, दान मुझको कुछ मत देना। अरे बाबा! जो तुमको देता है, वही करना चाहिये। पहले अपनी शक्तिको तौल लें और अपनी मुझको भी देता है। जो तुम्हारे घरमें भेजता है, वही हमको श्रद्धाको देख लें। दानके पूर्व इन दोनों बातोंका होना भी भेजता है। दाता तो एक ही है। उससे तुम्हारा रिश्ता आवश्यक है। इसके बाद यह विचार करें कि आप दान ज्यादा है और हमारा रिश्ता कम है-ऐसा तो हम मानते किस भावसे कर रहे हैं? आपका अन्त:करण शुद्ध हो, इसके लिये आप दान नहीं। कर रहे हैं या आपकी पूँजी बहुत है, इसलिये कर रहे हमारे शास्त्रमें जो दानका वर्णन है, उसकी एक रूपरेखा मैं आपको बताता हूँ। दातामें दानके पूर्व दो बात हैं। एक सेठने देखा कि हमारे दीवालिया होनेकी चर्चा होनी चाहिये। एक तो श्रद्धा हो और दूसरे दान देनेकी चारों ओर चल रही है। लोग कह रहे हैं कि मेरे यहाँ पैसा शक्ति हो। यदि आप श्रद्धासे दान करते हैं तो वह यज्ञ हो नहीं रहा है, जिनके रुपये मेरे यहाँ हैं-वे लोग अपने-जाता है। अश्रद्धासे आप जो भी दान करते हैं, वह निष्फल अपने रुपये उठायेंगे। तो उन्होंने घोषणा कर दी कि मैं हो जाता है, न तो इस जीवनमें फल देता है और न मरनेके एक करोड़ रुपयोंका मन्दिर बनाने जा रहा हूँ। उन्होंने बाद। अन्त:करण-शुद्धि भी नहीं करता; क्योंकि अश्रद्धा अपनी योजना प्रकाशित कर दी कि एक करोड़ रुपयेका तो स्वयं अन्त:करणकी अशुद्धि है। हम किसीको बुरा भी मन्दिर बन रहा है। इसपर लोग यह कहने लगे कि इनके पास तो इतना धन है कि ये एक करोड़ रुपयेका मन्दिर समझते जायँ और देते भी जायँ, यह ठीक नहीं। जिसको दीजिये, भगवत्-भावसे दीजिये और समझिये कि इसके बनाने जा रहे हैं, इसलिये अब उनके यहाँसे रुपये रूपमें तो भगवान् अपनी ही वस्तु लेनेके लिये आये हैं। उठानेकी कोई जरूरत नहीं है। तो होनी चाहिये हृदयमें श्रद्धाके साथ-साथ देनेकी आप यह देखिये कि अन्त:करण-शुद्धिके लिये दान शक्ति। देनेकी शक्तिके बारेमें मनुस्मृतिमें ऐसा निर्णय किया कर रहे हैं कि पूँजी बढ़ानेके लिये दान कर रहे हैं। हम लोगोंके यहाँ दानका प्रसंग आता है तो लोग क्या करते हुआ है कि जब तीन वर्षोंतक अपने परिवारके लोगोंका भरण-पोषण करने और नौकर-चाकरोंको वेतन देनेकी हैं? दान करके अपनी बेटी, बूआ या बहनके घर भेज शक्ति अपने पास हो, तब दान करना चाहिये। यह नहीं देते हैं। कहते हैं कि ये भी तो ब्राह्मण ही हैं ना? लेकिन कि दान तो करे, लेकिन अपने परिवार और सेवकोंको बेटी, बूआ, बहनको जो दान दिया जाता है, उसका नाम कष्ट देकर। लोग यज्ञके नामपर रात-दिन अपने सेवकोंसे धर्म-दान नहीं होता। काम लेते हैं और कहते हैं कि हमारे यहाँ यज्ञ हो रहा एक बार रक्षाबन्धनके दिन एक सभामें कोई सेठ है, तुम भी इसका फल पाओगे, इसमें कुछ बिना लिये-बैठे थे। उस समय एक महिला प्रिन्सिपल आयी और दिये काम करो-यह ठीक नहीं है। यदि आप उनसे कुछ उसने सेठजीको राखी बाँध दी। सेठजीने कहा कि अब ज्यादा काम लें तो उनको अधिक वेतन देना चाहिये। तुम बहन हो गयी, बताओ—मैं तुमको क्या दुँ? वह बोली Hinghism Biscord Serval https://dsc.jgg/gharmaj MADE-WITHEOVE BY: Ayinash Shi

* दानकी रूपरेखा * अङ्क] पर जो कालेज मैं चलाती हूँ, उसमें धनकी कमी रहती ओर दान लेनेवालेको यह देखना चाहिये कि दान कैसा है। इसलिये आप उसको पाँच हजार रुपया दीजिये। है ? यह नहीं कि जिसने जो कुछ लाकर दे दिया, उसको सेठजीने कह दिया कि हाँ देंगे। वे भरी सभामें ना कैसे ले लिया। बोलते ? पर जब घर आये. तब सिर पीटकर पछताने लगे एक महात्मा थे ऋषिकेशमें। बम्बईके एक सेठजी कि इतना धन मैंने पानीमें फेंक दिया। इसको कहते हैं आये और उन्होंने उन महात्माको एक शाल ओढाया। महात्माने कहा कि सेठ! हम तो यहाँ कि सर्दी-गर्मी सह लज्जा–दान। एक होता है हर्ष-दान। जब घरमें बेटेका जन्म होता लेते हैं और आनन्दमें रहते हैं, हमें शालकी जरूरत नहीं है या कोई विशेष आमदनी हो जाती है या मनमें कोई है। सेठने कहा-महाराज! हम आपकी जरूरतसे थोड़े ही और खुशी होती है, तब हम हर्षमें भरकर किसीको कुछ देते हैं? हमको जरूरत है देनेकी, इसलिये देते हैं। हम देते हैं तो उसका नाम हर्ष-दान होता है। आपको यहाँ एक शाल देंगे तो स्वर्गमें जानेपर हमें सौ एक होता है भय-दान। हम इसको कुछ देंगे नहीं शालें मिलेंगी। हम तो अपनी वृद्धि कर रहे हैं। महात्माजी तो यह हमारा नुकसान कर देगा। इसके हाथमें चोर हैं, बिचारे सीधे-सादे थे, चुप हो गये। जब सेठजी पौन घण्टा गुण्डे हैं। यह हमारी मिलमें हड़ताल ही करा देगा। यह सत्संग करके जाने लगे तब महात्माने कहा कि सुनो सेठ! मजदूरोंका नेता है। इस भावनासे जब हम किसीको कुछ तुम्हारे सौ शालका कर्जा हमारे ऊपर हो गया। तुम एक देते हैं। तो वह भय-दान होता है। एक बार मैं बम्बईमें शाल तो यहीं ले लो, जब तुम परलोकमें हमको मिलोगे किसी सेठके घर गया। उसकी मिलमें बहुत दिनोंसे तब निन्नानवे शाल तुमको और दे देंगे। हड़ताल चल रही थी। मैंने पूछा तो बोले कि अब चालू तो दाताका क्या भाव है देनेमें, यह लेनेवालेको हो गयी है। मैंने फिर पूछा कि कैसे चालू हुई? तो बताया देखना चाहिये। वह सदाचारी है कि नहीं, समझदारीसे रहा कि वह जो मजदूरोंका नेता है, जो हडताल करवा रहा है कि नहीं, उसकी कमाई अच्छी है कि नहीं। इस तरह था-मैंने उसको मिलाकर कुछ मशीनें उसके हिस्से कर दान लेनेवालेको दाताके बारेमें जानकारी होनी चाहिये। दी हैं कि उन मशीनोंसे जो कपड़े बनेंगे और जो आमदनी केवल विद्वान् होने या बुद्धिमान् होनेसे कोई दानका होगी, वह उसके पास जाती रहेगी। इसके बाद अब खूब अधिकारी नहीं हो जाता। उसका सदाचारी होना भी आवश्यक है। यदि वह बुद्धिमान् होनेपर भी दुराचारमें रत आनन्दसे हमारी मिल चल रही है। इसीको कहते हैं भय-है तो वह दानका पात्र नहीं है। पात्र माने होता है आधार। दान। इसी तरह काम-दान होता है। हम जानते हैं कि **'पतनात् त्रायते'**—जो हमको नीचे गिरनेसे बचाये, उसका बड़े-बड़े सेठ लोग सिनेमाकी सुन्दर अभिनेत्रियोंको बहुत नाम होता है-पात्र। जैसे हम दूधको एक पात्रमें डालते रुपये देते हैं, बल्कि उनको कोई विभाग ही दे देते हैं कि हैं तो वह पात्र दूधको बिखरनेसे बचाता है। हमारे पास तुम इसको सम्हालो। इसको बोलते हैं काम-दान। जो धन है, वह बिखरकर बुरे काममें न चला जाय-पात्रमें असलमें दानमें होनी चाहिये श्रद्धा। आप गीतामें ही जाना चाहिये। जो आपको पतित होनेसे बचाता हो-पढ़ते ही हैं-जहाँ दान करनेसे आप पतित होनेसे बच जायँ—उसका दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। नाम होता है पात्र। दाता भी होना चाहिये सदाचारी और लेनेवाला भी होना चाहिये सदाचारी। जिसको हम जानते देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ हैं कि यह दुराचारी है, व्यभिचारी है, जुआरी है, शराबी (१७।२०) इस श्लोकमें दानके लिये देश, काल और पात्र इन है—उसको दान नहीं देना चाहिये। दाताकी योग्यता, तीनोंका ध्यान रखनेके लिये कहा गया है। जहाँतक ग्रहीताकी योग्यता और इसके बाद वह देय वस्तु जो हम पात्रताका प्रश्न है वह लेनेवाले और देनेवाले दोनोंसे दे रहे हैं, कौन-सी है, इसपर विचार करना चाहिये। सम्बन्धित है। एक ओर दातामें श्रद्धा और शक्ति तो दूसरी देय वस्तुका भी महत्त्व होता है कि आप आखिर

 इतिष्ठितम् [दानमहिमा-दे क्या रहे हैं! हम गुजरातमें अहमदाबाद जाते हैं, तो कीजिये। इस प्रकार सेठने मीठी-मीठी बातें कीं। फिर वहाँका दृश्य देखनेमें बड़ा मजा आता है। सेठ लोग महात्माने कहा-कि देखो सेठ! तुम भगवान्का नाम नहीं जेबमेंसे पाँच हजार रुपये निकालते हैं, उसमें-से सौके नोट लेते, आजसे तुम भगवान्का भजन करनेका निश्चय करो-हरे राम, हरे राम, राम-राम, हरे हरे। हरे कृष्ण, अलग रख देते हैं, पचासके अलग, दसके अलग और हरे कृष्ण, कृष्ण-कृष्ण, हरे हरे॥ सेठने भगवन्नाम पाँचके अलग। फिर एक-एक रुपयेके दो नोट निकालते और उसको भी अँगुठेसे दबाकर अलग-अलग करके लेनेकी प्रतिज्ञा की। महात्माने कहा कि अच्छा जाओ, अब दिखा देते हैं कि हम दो दे रहे हैं। दाताका भी महत्त्व छः महीनेमें तुम नहीं मरोगे। इससे ज्यादा जिओगे। होता है कि कौन दे रहा है? तो इस कहानीका अर्थ यह है कि दाता प्रतिग्रहीताकी एक बार सन् १९४८ ई० में हमलोग बदरीनाथ जा अवज्ञा, तिरस्कार न करे। देय वस्तु कितनी बड़ी है, इससे रहे थे। एक मारवाड़ी परिवारके सैकड़ों स्त्री-पुरुषोंके साथ मतलब नहीं है। मतलब इससे है कि आपके हृदयमें श्रद्धा ज्योतिर्मठमें ठहर गये थे। वहाँ हम लोगोंको सूर्यास्तके बाद है कि नहीं ? दानके साथ श्रद्धा अनिवार्य है। कहीं ठहरनेकी जगह नहीं मिली। फिर हम लोग उन्हीं दानके लिये देश और कालका विचार भी आवश्यक लोगोंके पास चले गये और हमने कहा कि रातको ठण्ड है। जिस जगह जो वस्तु मिलती न हो, उस जगह उस बहुत है और हमको सोनेकी जगह नहीं मिल रही है। वस्तुकी व्यवस्था करनी चाहिये। जहाँ अन्नकी कमी हो वहाँ अन्न, जहाँ पानीकी कमी हो वहाँ पानी देना चाहिये। उन्होंने अपने नौकरोंको एक जगह कर दिया और हम लोगोंके लिये स्थान बना दिया, फिर हमारे भोजनके लिये जहाँ दवा न मिलती हो, वहाँ दवा देनी चाहिये। जहाँ ठण्ड पूड़ी-साग बनानेकी आज्ञा दे दी। रसोइयेने सोचा कि हम हो, वहाँ गर्म कपड़ा देना चाहिये। पहले लोग बदरी-लोग तो भिखारी साधु हैं, हमारे खानेके लिये अच्छा केदारकी ओर जाते थे, तो दानके लिये सुई और धागा भोजन क्या बनाना? किंतु परसनेके लिये आयी सेठजीकी लेकर जाते थे। उन दिनों मोटरें तो जाती-आती नहीं थीं, बेटी। उसने पूड़ियोंको देखकर थाली पटक दी और कहा उधरके लोगोंको सुई-धागा मिलना बड़ा मुश्किल था। कि मैं अपने हाथसे मोटी-मोटी और कच्ची-कच्ची इसके सिवाय दानमें और भी कई बातें देखनेयोग्य होती पूड़ियाँ परोसूँ? उसके बाद हम लोगोंको बढ़िया भोजन हैं। मिला। इसका मतलब इतना ही है कि देनेवालेको अपने दान किसको देना चाहिये? जो पढ रहे हों, अध्ययन स्वरूपके अनुरूप देना चाहिये। कर रहे हों, वे दानके अधिकारी हैं; जो त्याग, ब्रह्मचर्य एक दूसरी बात बम्बईकी है। एक सेठजी मेरे मित्र आदिके व्रतोंसे युक्त हैं और अध्ययनशील हैं, उनके थे। उनकी गद्दीपर एक दिन एक साधु आ गया, उसको भोजन-वस्त्रकी व्यवस्था तो होनी ही चाहिये। जहाँके लोग देखते ही सेठजी बिदक गये कि तुम ऊपर कैसे चढ़ बिना व्रतके हैं, बिना अध्ययनके हैं, जो जुआ खेलते हैं, चोरी करते हैं, छल करते हैं और भिक्षा लेनेके समय आये ? कोई गुमाश्ता नहीं है क्या ? फिर गुमाश्तेको बुलाकर बोले कि इसको चवन्नी दे दो और जल्दी विदा साधुका वेष बनाकर पहुँच जाते हैं, उनको जिस गाँवमें करो। साधुने कहा-कि देखो सेठजी! हम तुमसे चवन्नी भी भिक्षा मिलती है, उस गाँवपर सामूहिक जुर्माना कर या रुपया लेने नहीं आये हैं। भगवान्की कृपासे हम तो देना चाहिये। यह बात मैं नहीं कहता, हमारे धर्मशास्त्र तुमको एक बात बताने आये हैं। वह बात यह है कि अब कहते हैं। एक नहीं दस स्मृतियोंमें ये नियम आते हैं। तुम्हारी उम्र सिर्फ छ: महीनोंकी है। बस, अब मैं जा रहा कोई दान निष्फल होता है, उसका कोई फल नहीं हूँ। हमें तुमसे न कुछ लेना है और न कुछ देना है। अब होता। कोई दान हीन फल देता है। दान होता है बड़ा, तो सेठजीने तुरंत गद्दीसे उठकर उस साधुका पाँव पकड़ लेकिन उसका फल होता है छोटा; क्योंकि वह अखबारोंमें लिया और बोले—महाराज! आप कहाँ जा रहे हैं? दो-छप जाता है और लोग तारीफ कर देते हैं। उस दानसे चार मिनट ठहरिये। कुछ फल खाइये, कुछ नाश्ता अन्तरंगमें, हृदयमें जो फल होना चाहिये, वह बाहर चला

* दानकी रूपरेखा * अङ्क] आता है। जो फल स्वरूपमें मिलना चाहिये, मरनेके बाद निष्फल, हीनफल, पुण्यफल, अधिकफल और अक्षयफल— मिलना चाहिये, वह धरतीपर आ जाता है और जो इन छ: फलोंको ध्यानमें रखकर दान किया जाता है। अन्त:करण-शुद्धिके लिये होना चाहिये, वह बाहर चला अक्षय फल क्या है ? यही है कि अन्त:करण शुद्ध हो जाता है। जाय और परमात्माका अनुभव इसी जीवनमें होने लगे। वैसे तो सर्वस्व-दान भी होता है। लेकिन आपके दान कैसे-कैसे आप जितना देंगे, उतना आपको मिलेगा। किसीको जुता दे देना, किसीको पहननेके लिये कपडा दे देना, होते हैं, इसका थोडा संस्कार पड़े, इसके लिये मैं संक्षेपमें आपको ये बातें सुना रहा हूँ। गीतामें तीन प्रकारका दान बताया किसीको छाता दे देना, किसीको एक मुट्ठी अन्न दे देना— इनको बड़े दानोंमें नहीं माना जाता। ये छोटे दान होते हैं। गया है—सात्त्विक, राजस और तामस। इसी प्रसंगमें देश, गोदान, कन्या-दान, वृत्ति-दान, भवन-दान, स्वर्ण-दान, रक्त-काल और पात्रकी महिमा भी गीतामें भरपुर है। लेकिन इसमें दान-ये बड़े दान होते हैं। विद्या-दान इन सबसे बड़ा कोई परिवर्तन किये बिना ही भागवतमें थोड़ा संशोधन है। आप जो यह समझते हैं कि देय वस्तु मेरी है और मैं किसीको दान है। दे रहा हूँ — इसका नाम दान नहीं है। वह देय वस्तु तो ममतासे बम्बईमें हमारे एक परिचित सेठ थे। एक बार वे शराब पीकर बहुत मतवाले हो गये थे। डॉक्टरने फोन करके मुझको उच्छिष्ट हो गयी, जूठी हो गयी। आपने ही उसको 'मेरी-बुलाया कि आप आइये और इनकी शराब छुड़वा दीजिये, मेरी' करके जूठी कर दिया; क्योंकि सब वस्तु भगवान्की नहीं तो ये मर जायेंगे। मैं उनके घर गया। उनके यहाँ नौ कुत्ते है। जो कुछ स्वर्गमें है, जो कुछ धरतीपर है और जो कुछ थे और उनको सम्भालनेके लिये कई नौकर थे। खुद तो मांस अन्तरिक्षमें है; सब-की-सब भगवान्के द्वारा निर्मित भगवान्की शराब खाते-पीते थे ही, उनके कुत्तोंके लिये भी मांस आता वस्तुएँ हैं। था। अन्तमें उनका लीवर खराब हो गया और वे मर गये। फिर दान क्या है ? दान यह है कि चीज थी भगवानुकी वे उन नौ कुत्तोंपर जो खर्च करते थे, उससे चाहते तो कम-और उसको मैं अपनी मान रहा था। न तो मैंने हीरा पैदा किया, से-कम तीन-चार मनुष्योंको बहुत योग्य बना सकते थे। न सोना पैदा किया, न चाँदी पैदा किया, न जमीन पैदा की, कुत्तोंपर नौकर रखने, उनको मांस खिलाने, उनकी डॉक्टरी न बीज पैदा किया। अन्नका बीज भी भगवान् द्वारा निर्मित कराने, उनकी सफाई आदिकी देख-भाल करने, उनको है। तब उसमें अपनी चीज क्या है? पंचभूत अपना है कि घुमाने-फिराने आदिपर जितना खर्च हो रहा था, उतना यदि सोना अपना है कि हीरा अपना है कि मोती अपनी है। क्या एक-एक मनुष्यपर होता तो कितने ही मनुष्योंका जीवन-अपना है ? पहली भूल तो यह थी कि हमने पैसेको अपना निर्माण हो जाता। माना-अब यदि हम सब कुछ भगवान्का मानने लग जायँ एक दान होता है वह, जो हम लोग देते हैं। आप लोग तो हम एक सत्यपर आ जाते हैं। सौ-का-सौ भगवान्का न समझते हैं कि हम धन देते हैं तो बहुत कुछ देते हैं। लेकिन मानें तो उसमें-से एक पैसा निकालकर किसीको दे दीजिये। जो हम लोग देते हैं उसका नाम है—अभय-दान। जो लोग लेकिन यह ध्यानमें रखिये कि आप उसको देते नहीं हैं बल्कि भूत-प्रेतसे डरते हैं, ग्रहोंसे डरते हैं, भविष्यसे डरते हैं, नरकसे उसपर उसका भी उतना ही अधिकार है, जितना आपका है। डरते हैं, अपने पिछले कर्मोंसे डरते हैं और वर्तमान परिस्थितिसे आप उसको देकर उसके ऊपर कोई एहसान नहीं लादते, उसको कृतज्ञ नहीं बनाते। वह वस्तु तो आपकी भी और डरते हैं, उनको आत्मज्ञान कराकर हर तरहसे निर्भय कर देना—यही संन्यासीकी प्रतिज्ञा है, दान है। 'अभयं सर्वभृतेभ्यो उसकी भी है। उस दानसे आपका लाभ यह हुआ कि आपकी ददाम्येतद् व्रतं मम'-आजसे हम प्रतिज्ञा करते हैं कि ममताकी चहारदीवारी पहले सौ पैसेपर थी। अब उसमें-से किसीको भय नहीं देंगे, भय नहीं दिखायेंगे और यदि उसके जब एक पैसा आपने निकाल दिया तो ममताकी चहारदीवारी मनमें भय होगा तो उस भयसे उसे मुक्त कर देंगे। ऐसी प्रतिज्ञा थोड़ी छोटी हो गयी। इसी अंशमें आपका जो ममत्व अन्त:करणमें संन्यासी जब संन्यास लेता है तब करता है और इस अभय-था, वह कम हो गया। इसी तरह आपको अपने मोह और दानसे बडा शास्त्रमें और कोई दान नहीं माना जाता। दुष्फल, ममताका विस्तार मिटाना है और यह समझना है कि 'त्वदीयं

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्* दानमिहमा− वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये'—'हे भगवान्, आपकी आसमानमें और लेकिन जो दुराग्रह है, परिग्रह है, संग्रह वस्तु आपको समर्पित है।' भागवतका कहना है कि चीज है है-ये सब दुष्ट ग्रह हैं और हमारे हृदयमें रहते हैं। यदि भगवान्की और हम देते हैं भगवान्को। यह बात हमारे ग्रहोंको हृदयसे निकाल दो तो आसमानके ग्रह तुम्हारा कुछ धर्मशास्त्रोंमें भी बड़े अच्छे ढंगसे आयी है। नहीं बिगाड सकेंगे। आपको शायद मालूम ही है कि आकाशमें कितने हमारे हृदयमें रहनेवाले ग्रह हमको पीड़ा देते हैं। उपग्रह होते हैं। हमारे ज्योतिषी लोग इनकी चर्चा करते वहीं आग्रह करते हैं कि ऐसा हो, वैसा हो और जब वह रहते हैं। राहु, केतु, मंगल आदि ग्रह सब आसमानमें रहते नहीं होता है तब हमें पीडा पहुँचाते हैं। आकाशके ग्रह हैं। पर ये सब देखते तो हैं आसमानकी ओर और पाँव हमारे दुराग्रह, विग्रह, संग्रह, परिग्रहको ही पीड़ा पहुँचाते हैं, दूसरेको नहीं पहुँचाते। दान क्या है ? अपनी ममता और रखते हैं धरतीपर, फिर तो जरूर गडबडायेंगे। अरे भाई, जहाँ पाँव रखना हो, वहाँ देखकर पाँव रखो। आसमानकी मोहको मिटाना। ये सब वस्तु ईश्वरकी हैं, पहलेसे हैं, तुम ओर देखते हुए धरतीपर चलोगे तो कहीं-न-कहीं गड्ढेमें भूलसे उसको अपना मानते हो तथा जिसको देते हो, गिरोगे। धरतीपर देखकर पाँव रखना चाहिये। बहुत खसुरी उसपर अपना एहसान जताते हो और दान करके एक नहीं होना चाहिये। खसुरी माने आसमानके चुगलखोर। अभिमान और मोल ले लेते हो। इसलिये दानके सम्बन्धमें आसमानकी चुगली ज्यादा नहीं करना चाहिये। जहाँ देखो, इन बातोंको ध्यानमें रखना चाहिये। वहाँ पाँव रखो, ऐसा होना चाहिये। सब ग्रह तो रहते हैं ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः अमृत-फल दानका एक रोचक आख्यान— [श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीकी अमृतवाणी] संन्यासीका आगमन होता है। इधर-उधर देखकर वह सीधे बीसवीं शताब्दीकी विश्वविभृति श्रीश्रीमाँ आनन्दमयीके अध्यात्म ज्ञानके देदीप्यमान आलोकसे तत्कालीन सन्तसमाज महाराजके सामने जाकर खड़े हो जाते हैं। अपने राजोचित स्वभावके अनुकूल महाराज तुरंत प्रभावित था। न केवल अध्यात्म, अपितु मानव-समाजके विभिन्न पहलुओंपर दृष्टान्तके तौरपर श्रीश्रीमाँके श्रीमुखसे सिंहासनसे उठकर संन्यासीके सामने आकर खड़े हो जाते हैं, समय-समयपर अनेक कहानियाँ सुनी गयी हैं। यह कथानक उनको यथोचित आसनपर विराजमान कराते हुए महाराजने देहरादून, राजपुर-रोडस्थित श्रीश्री मॉॅंके आश्रम 'कल्याण-दोनों हाथोंको जोड़ते हुए विनयपूर्वक पूछा—'महात्मन्! मेरे वन' में पू० श्री हरिबाबाजी, पू० श्रीशरणानन्दजी (मानव सेवा द्वारा आपकी कौन-सी सेवा हो सकती है?' महाराजके आग्रहको देखते हुए संन्यासी बोले—'महाराज! संघ), पू॰ श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी आदि महापुरुषोंकी सन्तसभामें तुम्हारी ख्याति मुझे तुम्हारे पास खींच लायी है, मुझे तुमसे कुछ श्रीश्रीमाँने उपस्थित संगतको सुनाया था। माँगना है, माँगनेसे मिल जायगा?' एक राजा थे, उनके राज्यमें कोई दु:खी नहीं था। सब उस राज्यमें सुखी थे। उसका कारण यह था कि उस राज्यके सारी सभा मूक दृष्टिसे संन्यासीको देख रही थी, सबके राजा अत्यन्त परोपकारी थे। वे सर्वदा अपने राज्यमें घूमकर चेहरोंपर कौतूहलका भाव था। सर्वत्यागी संन्यासीको किसकी चाह!

राजिंद्राबीरां हुंग समित्रवात हुं eryer https://dshipg/dharma मह MARE all प्रमिन्ति, र्ह्स्के पूर्व रहे प्राधानकार प्रमानिक कर्मा करें

महाराजने अत्यन्त सहज रूपसे विनम्रताके साथ जवाब

दिया—'महात्मन्! मैं आपका सेवक हूँ। यह जो कुछ दिख रहा है, यह सब आपका ही है, आप नि:संकोच अपनी बात कहिये।'

देखा करते थे, कौन दु:खी है, किसको कौन-सी चीजकी आवश्यकता है। इस तरहका कुछ देखते ही वह उसके निराकरणके

लिये तत्पर हो उठते थे। देश-विदेशमें राजाकी ख्याति थी।

एक दिनकी बात है, राजा अपने सिंहासनपर बैठे हैं,

अङ्क] * अमृत	-फल* १०५
<u> </u>	****************************
खड़े हुए और राजाके दोनों हाथोंको पकड़कर बोले—'तुम्हारा	इतना कहकर साँप चला गया।
यह राज-पाट मुझे चाहिये।'	अब महाराजने बन्दरको निकाला। बन्दरने कहा—
महाराज जरा भी विचलित न होते हुए विनम्र कण्ठसे	भैया! कुएँमें पड़े आदमीको नहीं निकालनेमें ही तुम्हारी
बोले—'ऐसा ही होगा, महाराज, इसी क्षणसे यह राज्य आपका	भलाई है। मैं दण्डकारण्यमें रहता हूँ, आपने मुझे प्राणदान
है।'ऐसा कहते हुए एक लोटा और कम्बल लेकर राजभूषणादिका	दिया। जब भी आप उधरसे गुजरोगे तो मेरेसे अवश्य मिलना,
त्याग करके तपस्वीके वेशमें महाराज वनको चल पड़े।	आवश्यकता पड़नेपर मैं भी तुम्हारा उपकार करनेकी कोशिश
यह संवाद पूरे राज्यमें फैल गया। चलते-चलते महाराजको	करूँगा। अब मैं चलता हूँ।
प्यास लगी। सामने ही एक कुआँ था, पानी निकालनेके लिये	शेर, वानर, साँप सब चले गये। महाराजने सोचा अब
जैसे ही राजा आगे बढ़े तो देखते हैं; कुएँमें चार प्राणी हैं। महाराजने	क्या करूँ! एक आदमी कुएँमें पड़ा हुआ है, उसको बाहर
भलीभाँति देखनेके लिये कुएँमें झाँका तो चारों प्राणी एक साथ	न निकालकर पड़ा रहने दूँ—ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है,
चीख पड़े—आप कौन हैं ? हमें बचाइये, हमें प्राण-दान दीजिये।	जो होना होगा होने दो। इसको भी निकाल लेता हूँ, ऐसा
उनकी आवाजको सुनकर महाराजने कुएँमें झाँका,	सोचकर राजाने उस व्यक्तिको भी बाहर निकाला।
उन्होंने देखा, तो वहाँ एक मानव, एक शेर, एक वानर और	बाहर आते ही उसने अपना परिचय देते हुए महाराजसे
एक साँप है। महाराज अचरजमें पड़कर सोचने लगे, आखिर	कहा—मैं उदयपुर राजका स्वर्णकार हूँ। आपने मुझे प्राणदान
ये सब वहाँ कैसे पहुँचे!	दिया है, मेरी इच्छा है, मैं भी कभी आपकी सेवामें लग सकूँ।
परोपकारी महाराजने तुरन्त अपने मनके कौतूहलपर	यदि आप कभी उदयपुर पधारें तो आपकी सेवाका अवसर
लगाम लगायी और अपने काममें जुट गये। उन्होंने कन्धेपर	पाकर मैं अपनेको धन्यभाग महसूस करूँगा। इतना कहकर
रखी रस्सीको कुएँमें फेंक दिया और उन फँसे हुए प्राणियोंको	उसने भी विदा ली। परोपकारका काम पूरा करके महाराज
निकालने लगे।	घूमते-घूमते दण्डकारण्यके जंगलमें पहुँचे, वहाँ उसी शेरसे
पहले उन्होंने शेरको निकाला। शेर बाहर आते ही	भेंट हो गयी। शेर अपने जीवनदाताको सामने देखकर फूला
धन्यवाद देते हुए राजासे बोला—मैं हिंसक प्राणी अवश्य हूँ,	न समाया। शेर वनका राजा था, अत: उसने अपनी वन्य प्रजासे
पर कृतघ्न नहीं हूँ, यद्यपि मैं भूखा हूँ, पर आपको हानि नहीं	महाराजको नमन करनेको कहा। सभी वन्य पशु महाराजका
पहुँचाऊँगा। मेरा निवास दण्डकारण्य है। आपको प्रणाम, जब	अभिवादन करने लगे। शेरकी कृतज्ञताको देख महाराजकी
कभी आवश्यकता होगी, उस वनमें मेरा पता करनेसे मैं मिल	आँखोंमें पानी भर आया। इतना ही नहीं वनराजने जंगलकी
जाऊँगा। अब मैं जाता हूँ, जानेसे पहले आपको एक बात	श्रेष्ठ चीजोंका उपहार भी दिया अपने प्राणदाताको। उन
बताना चाहूँगा—आप सबको कुएँसे निकाल लें, पर उस	वस्तुओंमें एक अनोखा रत्नहार था। राज्याधिकारी होनेपर भी
आदमीको मत निकालना। इतना कहकर शेर चला गया।	ऐसा सुन्दर हार महाराजने कभी नहीं देखा था। महाराज सोचने
अब आयी साँपकी बारी, महाराजने साँपको बाहर	लगे—'में तो घुमक्कड़ हूँ, यह हार कहाँ रखूँगा।' ऐसा
निकाला। विषधर नाग था, उसे सामने देख राजा थोड़ा-सा	सोचकर उन्होंने शेरको वह हार वापस करना चाहा, पर शेरने
घबड़ाये। साँपने कहा—यद्यपि मैं विषधर सर्प हूँ, पर अकृतज्ञ	उसे स्वीकार नहीं किया। आखिर महाराजको रत्नहार स्वीकार
नहीं हूँ। आपने मुझे प्राणदान किया है, आपको कभी भी मेरेसे	करना ही पड़ा।
किसी प्रकारके अनिष्टकी आशंका नहीं रहेगी, वरन् किसी	महाराजकी यात्रा आगे बढ़ी, अब महाराज पहुँचे उदयपुर।
भी आवश्यकतामें मेरा स्मरण करते ही मैं आपके समक्ष	उदयपुर पहुँचकर उन्होंने राजस्वर्णकारका पता किया और
उपस्थित हो जाऊँगा। अब मैं चलता हूँ, जाते-जाते एक बात	उनके पास पहुँचे। महाराजने उक्त रत्नहारको स्वर्णकारको
और कह दूँ, वह यह कि कुएँमें पड़े व्यक्तिको मत निकालना।	दिखाते हुए पूछा—इसका मूल्य कितना होगा, क्या आप बता

१०६ $*$ दाने सर्व क्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक्रक	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-
—————————————————————————————————————	था, इधर सर्पदंशसे पीड़ित राजा मृत्युके गलियारेमें पहुँचते
संयोगकी बात थी, यह रत्नहार इसी स्वर्णकारका	नजर आ रहे थे।
बनाया हुआ था, जो कि इसी राज्यके राजकुमारके लिये बनाया	जब चारों ओर हाहाकार मच रहा था, तब परोपकारी
गया था, उदयपुरके राजकुमार एक दिन शिकार करने गये	महाराजने वधके मंचसे उतरकर सर्पद्वारा दिये हुए मन्त्रके
थे और दैववश वहाँसे कभी नहीं लौटे, तबसे इस रत्नहारका	बलसे मृत राजामें प्राण फूँक दिये। मन्त्रके प्रभावसे उदयपुर
पता भी किसीको नहीं लगा।	् राजा इस तरह उठ बैठे, मानों नींदसे अभी–अभी जागे हों।
हारको देखते ही स्वर्णकार पहचान गया। अब उसकी	वधभूमिमें आनन्दोल्लासका शोर-शराबा था। यह तो एक
मनोवृत्ति लालचके घेरेमें घिर गयी। उसने सोचा युवराजका	् चमत्कार था। दण्डित राजाने पलक झपकते उदयपुरराजको
यह हार यदि मैं राजाको सौंप दूँ तो अवश्य ही वे बड़े पुरस्कारसे	प्राणदान दिया।
मुझे पुरस्कृत करेंगे। साथ ही यदि मैं इस व्यक्तिको हारके साथ	देखते-ही-देखते सम्पूर्ण राज-परिवार तथा राजा परोपकारी
युवराजका हत्यारा कहकर पकड़वा दूँ तो महाराज अत्यधिक	महाराजके परम मित्र बन गये। आदर-सत्कारके साथ महाराजको
प्रसन्नतामें मुझे दो-एक गाँव भी दे देंगे। जैसा सोचना वैसा	राजभवन ले जाया गया।
करना। उसने महाराजको हारके साथ पकड़वा दिया।	धीरे-धीरे उदयपुरराजको स्वर्णकारके इस षड्यन्त्रका
उदयपुर राजाको इस बातपर किसी प्रकारकी शंका नहीं	पता चला। अब महाराजके बदले स्वर्णकारके मृत्युदण्डका
रही, क्योंकि हार वही था। अब परोपकारी राजाको मृत्युदण्डका	आदेश हुआ।
आदेश दिया गया।	इस आदेशको सुनकर परोपकारी महाराज दु:खी हो
महाराजको वधभूमिपर लाया गया। सारी तैयारियाँ होने	गये। उन्होंने अपने मित्र उदयपुरके राजासे स्वर्णकारके प्राणोंकी
लगीं।	भिक्षा माँगी, केवल इतना ही नहीं, उन्होंने उसके लिये
वधभूमिपर आते ही महाराजको कुएँसे निकाले गये	भारी परिमाणमें पारितोषिककी भी व्यवस्था करवा दी। केवल
सर्पकी बात याद आयी।स्मरण करते ही अन्तरिक्षके मार्गसे सर्प	राजाके आदेशसे स्वर्णकारको उदयपुर त्याग करना पड़ा।
वधभूमिपर उपस्थित हो गया। उसने सारी परिस्थिति भाँप ली।	परोपकारी महाराज अपनी यात्रामें पुन: निकल पड़े।
महाराजकी रक्षा करना उसका धर्म था, उसने महाराजसे	इस बार उनकी मुलाकात कुएँसे निकाले गये बन्दरसे हुई।
कहा—इस राज्यके राजा अभी आपका मृत्युदण्ड देखने	बन्दरने अतिशय आनन्दसे उनका स्वागत किया और उनको
आयेंगे। उनके आते ही मैं उनको डँस लूँगा, तब आप इस	एक अमृत-फल भेंट किया। फल देखते ही महाराज पहचान
मन्त्रसे उनको जीवित कर देना। ऐसा होनेसे राजासे आपकी	गये—यह अमृत-फल है। परोपकारी राजाने सोचा, यह फल
मित्रता हो जायगी। तब आप सत्य घटना विस्तृत रूपसे राजासे	किसीको दिया जाय तो कितना अच्छा हो। अमृत-फलके
कहना, तब स्वर्णकारके इस षड्यन्त्रका भण्डाफोड़ हो जायगा	खानेसे लोग अमर हो जाते हैं। यह सोचकर महाराजने सोचा—
और आपके बदले स्वर्णकार ही मृत्युदण्डका अधिकारी	यह फल वह उसी संन्यासीको देंगे, जिसको उन्होंने पूरा
बनेगा। इतनेमें उदयपुरके राजा वधभूमिपर पधारे। महाराजके	राजपाट दानमें दिया है।
वधकी पूरी तैयारी हो चुकी थी।	राजा अमृत-फल लेकर अपने राज्यमें पहुँचे, संन्यासीने
जल्लाद महाराजपर जब वार करनेवाला था तो ठीक	फलको देखते ही कहा—इस फलके खानेसे लोग अमर हो
उसी समय सर्पने उदयपुरके राजाको डँस लिया। राजा साथ-	जाते हैं, पर मेरे अकेलेके अमर होनेसे क्या लाभ है ? मेरी
ही-साथ वहींपर लुढ़क गये। अब क्या था! बिजलीकी तरह यह	महारानीके लिये यदि एक और फल मिल जाय, तब ही मैं
संवाद पूरे राज्यमें फैल गया। प्रजा एवं परिवारजन सब	इस फलको ग्रहण कर सकता हूँ।
एकत्रित हो गये, राजाकी प्राणरक्षाका प्रयास किया जा रहा	संन्यासीकी बातको सुनकर महाराज सोचमें पड़ गये

 पत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान » अङ्क] कि क्या उपाय किया जाय, उन्होंने संन्यासीसे कहा—'यह विचार करके वे लोग उस राजाकी खोजमें धरतीपर लौट फल बन्दरने मुझे दिया है, उसके पास चलते हैं, शायद एक चले। धरतीपर पहुँचकर ही वे पहले संन्यासी-राजाके राजमें और फल मिल जाय।' संन्यासी और राजा बन्दरके पास गये। सब सुनकर आये। वहाँ आते ही उन्होंने देखा, वैकुण्ठका एक दूत बन्दरने कहा-मेरे पास तो और फल नहीं है। बजरंगबली अमृतकाननका दान-पत्र लेकर परोपकारी राजाकी प्रतीक्षामें महावीरने यह फल मुझे दिया था। चलो, हम हनुमान्जीके बैठा है। पास चलें, संन्यासी, राजा और बन्दर हनुमान्जीके पास चले। संन्यासी-राजाने उस दान-पत्रको विष्णुदूतसे लेकर हनुमान्जीने सब बात सुनकर कहा—'यह फल कहाँ पाया उसे परोपकारी महाराजके हाथोंमें देते हुए कहा—'महाराज, जाता है, यह मैं नहीं जानता, यह तो शंकरजीने मुझे दिया था।' यह लो तुम्हारे अमृतकाननका अधिकार-पत्र और स्वीकार हनुमान्जी सबको लेकर भगवान् शंकरके पास गये। शंकरजीने करो तुम्हारा यह राज-पाट। मैं नारायणका ही दूत हूँ। तुम्हारी कहा—यह फल भगवान् विष्णुने उनको दानमें दिया था। अब परीक्षा लेनेके लिये ही नारायणने मुझे भेजा था। तुम मेरी सभी महादेव शंकर सबके साथ वैकुण्ठधाम पहुँचे। लक्ष्मीनारायणकी परीक्षाओंमें उत्तीर्ण हुए हो; तुम्हारा परोपकार, तुम्हारी दया, निवासस्थली वैकुण्ठधाम। भगवान् नारायणसे उन्होंने अपने तुम्हारी सबका कल्याण करनेकी इच्छा—यह सब लेकर आनेका कारण निवेदन किया। स्वयं नारायण भी और एक तुमने देवत्वको प्राप्त किया है। एक नरपतिका आदर्श तुममें प्रकट (प्रस्फुटित) हुआ है। तुम धन्य हो, तुम जीवन्मुक्त हो, फलकी व्यवस्था नहीं कर सके। उन्होंने कहा-'जिस अमृतकाननमें यह अमृत-फल राजन्! अब मैं चलता हूँ।' लगता है, अब उसपर उनका अधिकार नहीं है। धरतीके ही इतना कहकर वे संन्यासी अदृश्य हो गये। स्वर्गसे किसी परोपकारी राजाके पुण्यफलसे उनको यह कानन भेंट परोपकारी महाराजके मस्तकपर देवलोकके पुष्प बरसने किया गया है। अब इस काननपर यदि किसीका अधिकार लगे। है तो वह उसी परोपकारी राजाका है।' श्रीश्रीमाँने कहा-यही है सच्चे दानकी महिमा। नारायणकी बात सुनकर सब निराश हो गये। सोच-[प्रेषिका—डॉ० ब्र० गुणीता, विद्यावारिधि, वेदान्ताचार्य] पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान (गोलोकवासी संत पूज्यपाद श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारीजी महाराज) धेनूनां नियुते प्रादाद् विप्रेभ्यः समलङ्कते। चाँदीके खुर करो सींग सोनेतें मढ़िकें। तिलाद्रीन् सप्त रत्नौघशातकौम्भाम्बरावृतान्॥ सुन्दर वस्त्र उढ़ाइ पूँछ मोतिनितें जड़िकें॥ (श्रीमद्भा० १०।५।३) माँगें जितनी जो गऊ, तितनी तिनकूँ दानमहँ। श्रीशुकदेवजी कहते हैं-राजन्, नन्दजीने बीस लाख देहु न होवे नेकहू, कमी मान सम्मानमहँ॥ गौएँ ब्राह्मणोंको दीं, वे सब-की-सब वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत सूतजी कहते हैं-मुनियो, नन्दजी महामना थे। थीं। सात तिलके पर्वत भी दिये, जो रत्नोंसे तथा सुनहरे उनका चित्त अत्यन्त ही उदार था। व्रजमें उनकी उदारता काम किये हुए वस्त्रोंसे ढके हुए थे। सर्वविदित थी। सहस्रों वेदज्ञ ब्राह्मणोंको उन्होंने आश्रय दे रखा था। व्रजके जितने गोप हैं, सब उन्हें अपने पिताके छप्पय समान मानते थे। जिसे जिस वस्तुकी आवश्यकता होती, पुनि बुलवाये गोप कही खिरकनिकूँ खोलो। मनमानी द्विज धेनु लेहिँ मत तिनतें बोलो॥ अपने घरके समान नन्दजीके यहाँ जाते और उठा ले जाते

 इतिष्ठितम् दानमिहमा− ******************** थे। भाग्यसे ऐसा ही स्वभाव श्रीमती यशोदामैयाका भी था। छाँट लेते, फिर सोचते और गौओंका ले जाना तो सरल दोनोंकी अवस्था ढल चुकी थी। सभी गोप बूढ़े नन्दजीको है, इन्हें रखें कहाँ, बाँधेंगे कहाँ फिर इनकी देख-रेख कौन बाबा कहकर ही पुकारते थे। यशोदाजीका तो नाम ही मैया करेगा। यही सब सोचकर वे सबको छोड देते, दो-चार प्रसिद्ध हो गया। मैयाके यहाँ मुझे जाना है कहनेपर अपनी ले जाते। इस प्रकार दिनभर यही लीला होती रही। मैयाको कोई न समझता। सभी समझते कि यशोदारानीके एक ब्राह्मण था, घर तो उसका छोटा था, किंतु तृष्णा यहाँ जाना है। दोनोंको ही अब सन्तानकी आशा नहीं रही बडी थी। अच्छी-अच्छी सुन्दर पचास गौएँ ले आया। थी। जब वृद्धावस्थामें उनके पुत्र उत्पन्न हुआ और पुत्र भी इसकी स्त्री कुछ ऐसी ही सट्ट-पट्ट थी। वह तो बड़े ऐसा-वैसा नहीं; विश्वविमोहन साक्षात् साकार सौन्दर्यने ही उत्साहमें बडी प्रसन्ततामें गौओंको लाया। उसने सोचा-पुत्रका रूप रख लिया। तब तो उनके हर्षका ठिकाना ही मेरी घरवाली अत्यन्त प्रसन्न होगी। आते ही उसने घरमें. नहीं रहा। उन्होंने कहा—देखो भाई, हम तो गोप हैं। गौएँ ऑंगनमें, पैरीमें, द्वारपर सर्वत्र खुँटे गाड़ दिये। फिर भी गौएँ हमारा धन हैं। हमारे जितने गौओंके खिरक हैं उन सबको न समायीं। तब उसने रसोईघरमें खुँटे गाड़े। अब घरमें एक खोल दो, जिस ब्राह्मणको जितनी गौएँ चाहिये, वे उतनी तिल रखनेको भी स्थान न रहा। गौएँ फिर भी शेष थीं। गौएँ ले जायँ। छाँटकर जो उन्हें अच्छी लगें, उन्हें ही उसने अपनी घरवालीसे पूछा—सुनती हो, सुक्खाकी माँ! ये गौएँ बच रही हैं, इन्हें कहाँ बाँधूँ? बतायें। सजाकर हम उन्हें दे देंगे। अब क्या था, व्रज चौरासी कोशमें हल्ला मच गया, उसने कहा-एक खूँटा मेरे सिरपर गाड़ दो, उसमें दस महीनेसे ब्राह्मण आशा लगाये बैठे थे। झुण्ड-के-झुण्ड बाँध दो। ब्राह्मण आने लगे और खिरकोंमें घुसने लगे। नन्दजीके यहाँ ब्राह्मण बोला-अरी, क्रोध क्यों करती है, कैसी एक-से-एक दुधार, एक-से-एक सुन्दर, स्वच्छ, सबल सुन्दर-सुन्दर तो मैं गौएँ लाया हूँ, तुझे प्रसन्न होना चाहिये। तथा दर्शनीय गौएँ थीं। जो ब्राह्मण जिस गौको देखता उसे उलटे व्यंग्य-वचन बोल रही है। ही लेनेकी इच्छा करता। एक गोष्ठसे दूसरे गोष्ठमें दौड़ा उसने तुनककर कहा-- और कहाँ स्थान बताऊँ ? घर जाता। पहले जो छाँटी थीं उन्हें छोड़ देता, फिर और तो तुम्हारा जितना बड़ा है, उतना ही रहेगा। वह बड़ा तो अच्छी-अच्छी छाँटता। नन्दबाबाने वहाँ सहस्रों गोप बैठा हो सकता नहीं। चौके-चूल्हेको भी तो तुमने घेर लिया है। रखे थे, कोई पगडी लिये बैठे थे, किसीके पास दुपट्टे थे, चूल्हेपर खूँटा गाड़ दिया है, अब मैं रोटी कहाँ करूँगी? अँगरखे थे, किसीके पास दुशाले थे, तो किसीके सम्मुख ब्राह्मणने कहा-अब रोटीका क्या काम? अब तो मोतियोंका पहाड़ लगा था। कोई सुवर्णकी मालाओंको ही खीर बनाओ और दोनों हाथोंसे सपोटो। लिये बैठा था, किसीके पास काँसेकी दोहनी ही थी। स्त्री बोली—खीर बनानेको भी तो स्थान चाहिये। किसीके आगे अन्नका ढेर लगा था। नन्दबाबाके १०८ ब्राह्मण बोला-बरोसीमें बने, यदि तेरी इच्छा होगी गोष्ठ थे। सभीमें ऐसा ही प्रबन्ध था। ब्राह्मण छाँट-छाँटकर तो कुछ गौओंको ससुराल भेज देंगे। यह सुनकर स्त्री प्रसन्न हो गयी और उसने गौओंको ले जाते, गोप तुरंत उनके खुरोंको चाँदीसे मढ़ देते। सींगोंमें सोना लगा देते। कण्ठमें सुवर्णकी माला पहना ब्राह्मणकी बातको स्वीकार कर लिया। इस प्रकार दिनभर देते। ऊपरसे सुवर्णके कामका दुशाला उढ़ा देते। पूँछमें गौओंका दान होता रहा। जब सब चले गये तो नन्दजीने मोतियोंको लगा देते। काँसेकी दोहनी दे देते। अन्न रख पुछा—सब कितनी गौएँ दान दी गयीं? सेवकोंने गणना करके बताया—बीस लाख गौएँ देते, ब्राह्मणको भी अँगरखी, पगड़ी, पेंच, दुपट्टा, साफी तथा मणिमुक्ताओं और सुवर्णकी मालाएँ पहना देते। इस अबतक दान हुई हैं। नन्दजीने कहा—इतनेसे तो हमारी तृप्ति नहीं हुई। उन्होंने प्रकार अलंकृत गौओंको अलंकार किये हुए ब्राह्मणों के लिये तुरंत दे देते थे। किसीको रोक नहीं, टोक नहीं, जिसे ब्राह्मणोंसे कहा-ब्राह्मणो, मेरी तो इच्छा यह होती है कि जितामार्वमाहिक चेहिन्दू जिहारा के जिहार है। अपित प्रतिकार स्वाधिक से स्वाधिक के स्

************************ ब्राह्मण बोले—बाबा, साक्षात् सुमेरु न भी हो तो भी छप्पय पुराणोंमें ऐसे उपाय हैं कि सुमेरु-दानका फल मिल जाता है। सबकी आशा लगी नित्य ही टोह लगावें। नन्द बाबा बोले-हाँ, हाँ, वह उपाय मुझे अवश्य नँदरानी कब कमलनयन लालाकूँ जावें॥ बताओ। उसे मैं करूँगा। धुनि भेरीकी सुनी सुनत सब जन हरषाये। ब्राह्मण बोले—बाबा, तिलोंका एक ऐसा ढेर लगाओ जामा पगड़ी पहिन दौरि गोकुलमहँ आये॥ जिसके पीछे खड़े होनेपर मनुष्य दिखायी न दे। उसे दूरिहतें अति मुदित मन, जय जयकार सुनाइकें। रत्नोंसे ढक दो, उसके ऊपर पीला वस्त्र ढककर आशिष सुतकूँ देहि शुभ, गीत मनोहर गाइकें॥ ब्राह्मणोंको दान कर दो। सुमेरु पर्वतके दानका फल हो सृतजी कहते हैं-मृनियो, नन्दरायके लाला हुआ है। जायगा। यदि ऐसे सात पर्वत दान कर दो तो ब्रह्माण्डदानका यह बात सम्पूर्ण व्रजमण्डलमें रातों-रात फैल गयी। सभी लोग आशा लगाये तो बैठे ही थे। रात्रिभर भेरी, नगाडे तथा फल हो जायगा। दुन्दुभियोंकी तुमुल ध्वनियाँ सुनकर ही सबने समझा नन्द बाबा बोले-तो ब्राह्मणदेवता! आप मुझसे ऐसे सात तिलोंके पर्वतोंका ही दान करायें। लालाके जन्मका ही महोत्सव है। सभी बधाई देने गोकुलकी ओर दौडे। मार्गमें उन्होंने देखा सहस्रों ब्राह्मण फिर क्या था, इस समाचारसे सबके हर्षका ठिकाना नहीं रहा। सहस्रों बोरियोंमें भरे तिल मँगवाये गये। उतने लाखों गौओंको लिये जा रहे हैं, सब बडे उत्साहसे ही मणि-मुक्ताओं आदि रत्नोंके समूह मँगाये गये। सुनहरे पूछते—क्या व्रजराजजीके लाला हुआ है? कामके बहुत-से पीले रंगके बहुमूल्य दुशाले मँगाये ब्राह्मण कहते—लाला नहीं हुआ है, सब सुख-समृद्धि गये। सात स्थानोंमें तिलोंके बडे-बडे सात पर्वत बनाये देनेवाला हुआ है, तुम जाओ, जो इच्छा हो माँग लाओ। कोई गये। उनके ऊपर मणि-मुक्ता इस प्रकार बिछाये गये भी वहाँसे निराश या रिक्तहस्त न लौटने पायेगा। कि तिल दिखायी ही न दें। फिर वे सब पीले दुशालोंसे यह सुनकर याचक तथा सूत, मागध, वन्दी तथा ढक दिये गये। उनको ब्राह्मणोंके लिये दान कर दिया अन्यान्य विद्योपजीवीजन परम प्रमुदित होते। सब बडे उत्साहके साथ, अत्यन्त उमंग, आह्लाद और शीघ्रताके साथ गया । यह सुनकर शौनकजी बोले-सूतजी, पुत्र उत्पन्न गोकुलकी ओर दौडे जाते। होनेपर वृद्धिसूतक लग जाता है। सूतकमें तो ब्राह्मण उस नन्दजी बडे-बडे गोपोंसे घिरे चौपालपर बैठे थे। घरका जल भी नहीं पीते, फिर इतने दान ब्राह्मणोंने सूतकमें इतनेमें पगड़ी बाँधे लम्बा अँगरखा पहिने, तिलक-छापा कैसे ले लिये? लगाये, दो-चार बाल-बच्चोंके सहित पोथी-पत्रा बाँधे सूतजीने कहा-महाराज, पुत्र उत्पन्न होनेपर सूतक सूतजी वहाँ आ गये। तभी लगता है जब नालच्छेदन हो जाय। जबतक नालच्छेदन नन्दजीने कहा-आओ, आओ महाराज, आप कौन नहीं होता तबतक सूतक नहीं माना जाता। उस समयमें दान हैं ? कहाँसे पधारे ? आगत वृद्धने नन्दजीका जय-जयकार लेनेमें कोई दोष नहीं, ऐसा शास्त्रका प्रमाण है।* किया और कहा— गोपेश्वर व्रजराजजी, मैं तुम्हारो हूँ सूत। सौमङ्गल्यगिरो विप्राः सृतमागधवन्दिनः। गायकाश्च जगुर्नेदुर्भेयों दुन्दुभयो मुहु:॥ दौर्खा आयो सुनत ही, भयो तुम्हारे पूत॥ नन्दजीने कहा-धन्य-धन्य महाराज, कुछ सुनाइये, (श्रीमद्भा० १०।५।५) श्रीश्कदेवजी कहते हैं—राजन्! श्रीनन्दजीके पुत्रोत्सवके आप तो पौराणिकी गाथा सुनाया करते हैं, सुनाइये कुछ। यह सुनकर सूतजी सुनाने लगे— समय ब्राह्मणगण तथा सूत, मागध और वन्दीजन सुन्दर मंगलयुक्त वचन बोलने लगे। गायक लोग गाने लगे तथा भेरी-दुन्दुभि आदि बाजे स्वयं बार-बार बजने लगे। व्रजराज! कहैं सब सूत हमें, मुनि व्यास कृपा करिके अपनाये। * यावन्न छिद्यते नालस्तावन्नाप्नोति सूतकम्। छिन्ने नाले ततः पश्चात्सूतकं तु विधीयते॥

* पुत्रजन्मके उपलक्ष्यमें श्रीनन्दरायजीद्वारा दिया गया दान *

अङ्क]

स्तुनिक सूत जम्म उमंग भरे, दियमहें हुल्मसे सरसे इत आये। निकार निकार भरे, धन थेनु सुमेस समान लुटाये। जमके सुनिक सूत्र जम्म उमंग भरे, दियमहें हुल्मसे सरसे इत आये। निकार निकार निकार भरे, धन थेनु सुमेस समान लुटाये। जमके सुनिक सुत्र जमें पहिले पहिले पहिले सुनिक समान लुटाये। जमके सुनिक सुत्र जमें पहिले पहिले सुनिक समान लुटाये। जमके सुनिक सुत्र जमें वहितर सुनिक समान लुटाये। जमके सुनिक सुत्र अपित सुनिक सु	१ १० * दाने सर्वं	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-
तान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेर समान लुटाये। जनसह विहरें पूंचची पहिरें, वर देह जिही तनु धूर्ग लगाये। नरवाबाने कहा—सूराजी, कुछ हमारी समझमें बात आयी नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न, पृथिवी, हाथी, जां, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अनन, वस्त्र आप जो चाहें माँग लें। यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सुत बोले— महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह काँन है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते—माँगते वाल सफेद हो गये। जीवन हो बीत गया। अब तो यही सम्पता हैं कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर क्याय किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अनित्म याचना हो। नर्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। हतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रही। दूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? सुत बोले—आप तो महान् हें, उदारिशरोमणि हैं। सोरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानह न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मुरित निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहीं बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ बजमाहि डेरा डातोंगो। कुलको तुस्हारो सुत, नयो नयो भयो पुत, धृतताई छाँहि अब जीवन सुधारोंगे। नेहतें निहारि मुख समुद्ध श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सुरत पै सरवसु हाँ बातोंगो। नरदाजी के पुरान ज्ञान भयो नहीं बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ बजमाहि हेरा डातोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहीं बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ बजमाहि हेरा डातोंगो। कुलको तुस्हारो सुत, नयो नयो भयो पुत, धृतताई छाँहि अब जीवन सुधारोंगे। नेहतें निहारि मुख समुद्ध श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सुरत पै सरवसु हाँ बातोंगो। नरदाजी के उतारा। कई बार शीप-शीप पानोंको पारदाजी उत्सुकताके साथ जगाने ऊँटसे बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाहीवाला बुड़ा है। उसका जामा धुरनीतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे–आगे खींच रहा है। लम्बी-लस्बी गरदन किय कैंद सत्ताने पुत्र ज्ञान सित देवराज सुत। कैंद सुत हितिय पुत्र जयसम भये सित।	*******************************	**************************************
नन्दबाबाने कहा—सूतजी, कुछ हमारी समझमें बात आयी नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न, पृथिबी, हाथी, घोड़ा, ऊँ-ट, बछेरा, गी, रथ, घर, भृमि तथा और भी अन्न, वस्त्र आप जो चाहें माँग लें। यह सुनकर आँके लालाको जानता हूँ कि वह कौन है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते-माँगते वाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अन्तिम याचना हो। नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इसता धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे बात रहा। दूसरेक यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहृ न माँगों भूण, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहीं बाढ़्यों मान, दान पाहि आड़ बजमाहिँ डेरा डारोंगो॥ नुस्तों हैं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पीराणिकी कथा सुनाया करें। स्तरीजीन नन्दजीको जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बढ़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बृढ़ा है। उसका जामा धुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नेकल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये कँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी हैं, बच्चे भी-आगे स्त्री सुन्न पुन्न अप्रता। कहे वात्रान पुन्न श्रीपुत। कहे सुन्त एक और संकेत करके बोला— स्त्रेया वात्रा हो। स्तर्भ संगरित ने प्रता क्रें। कंत महारा हो। सामने सामने माँगकर फिर संगरित वेदा वात्रा हो। वेदा हो कि एक वार आपके सामने माँगकर फिर संगरित बड़ा कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्यी मंद्रा हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्यी मंद्रा हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्यी मंद्रा हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्यी मंद्रा हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्या हो हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्या हो हो कार कार प्रता कुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्या हो हो कार कार प्रता कुला हो ये सुला करते पिचकी विचरी हमरो जिह भया। नद्या हो हो कार कार प्रत हो सुला हो सुला हो ये सुला हो ये सुला हो ये सुला हो सुला हो ये सुला हो	दान निहारि निहाल भये, धन धेनु सुमेरु समान लुटाये।	ऊँटोंमें ये इतनी बहियोंको लादकर क्यों लाये हो?
अयो नहीं। आप क्या चाहते हैं, धन, रत्न, पृथिवी, हाथी, घोड़ा, ऊँट, बछेरा, गाँ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न, वस्त्र आप जो चाहें माँग लें। यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सुत बोले— महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ िक वह कौन है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते-माँगते व्यक्ता सफेर हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ िक एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अन्तिम याचना हो। नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरे वहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। मेंगते विता सबनिक्तं, सब गांपिनके वंशा आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। फिर नन्दजीने पुछ, 'भैया! इन ऊँटोंपर क्या लदा हैं? जाा बोला— बत्ता धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरे के यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। फिर नन्दजीने पुछ, 'भैया! इन ऊँटोंपर क्या लदा हैं? जाा बोला— बत्ती धन धाम धान मानहू न माँगों भूग, मोहन की मोहिनी-सी मुति निहारिगो। कुलको तुम्हागे सुत, नचो नची भयो पृत, धृतनाई छाँड़ अब जीवन सुधारोंग।। नहतं निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँबरी-सी सुत पै सरवसु हों बारोंग।। नत्र जो कथे पुत का जयकार किया। इतनेमें हो देखते हैं। पुताने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें हो देखते हैं। उसका जामा पुटनींतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़ अगो-आगे खीँच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये उँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी		3
वस्त्र आप जो चाहें माँग लें। यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सूत बोले— महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन है? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते—माँगते बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अतिम याचना हो। नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। हतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। हूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहिं बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ बजमाहिं डेरा डारोंगो। कुलको तुम्हारों सूल, नयो नयो भयो पूत, धृतताई छाँड़ अब जीवन सुधारींगो। नेहतें निहारि सुख समुझ स्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सुरत पै सरबसु हीं बारोंगो। नन्दजी बड़े प्रसन् हुए और बोले—अच्छा-अच्छा- इन सुतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिको कथा सुनाया करें। पूत्जीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये जँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द सुत द्वितय पुत्र जयसेन भये तिनि। होता तन्त द्वितय पुत्र जयसेन भये तिनि। होता के सुत भीचे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द सुत द्वितय पुत्र जयसेन भये तिनि।	3, 3	
यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सूत बोले— महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन हैं? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते—माँगते वाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अतिम याचना हो। निर्वाची कें असीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अतिम याचना हो। न्तर्जीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इसे गया निर्वची हमरों जिह भैया। वहा माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरे के यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्ता बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहें बाहुयो मान, दान पाहि आड़ बजमाहिं डेरा डारोंगो। कुलको तुम्हारो सुत, नयो नयो भयो पृत, धूतताई छोड़ि अब जीवन सुधारोंगो। नेहतें निहारि सुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सुरति पुराव केंद्रे यहाँ वारोंगो। नेहतें निहारि सुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सुरति पुराव केंद्रे यहाँ वारोंगो। नेहतें निहारि सुख समुझि श्याम सत्यमुख, इन सूतजीको यहाँ एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहाँ हमें पौराणिको कथा सुनाया करें। पूत्जीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लाबी-लामों गरदन किये उँट बलवाला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द्र सुत द्वितय पुत्र जयसेन भये तिनि।	घोड़ा, ऊँट, बछेरा, गौ, रथ, घर, भूमि तथा और भी अन्न,	नन्दजीने हँसकर कहा—अरे भैया, तू तो बड़ा
सहराज! में आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन हैं? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते—माँगते वाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अतिम याचना हो।	वस्त्र आप जो चाहें माँग लें।	तुनकबाज है। ये सब और कौन हैं?
है ? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है । माँगते—माँगते वाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर भाँग चढ़ाइ नहाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिँ रुपैया। अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अन्तिम याचना हो।	यह सुनकर आँखोंमें आँसू भरके सूत बोले—	यह सुनकर एक ओर संकेत करके बोला—
बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पड़े, यही अनिम याचना हो। नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। स्तृत बोले—आप तो महान् हैं, उदारशिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मृरति निहारोंगो। पिक्के पुरान ज्ञान भयो निहं बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारोंगो॥ कुलको तुम्हारो सुत, नयो नयो भयो पूत, धृतताई छाँड़ अब जीवन सुधारोंगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हाँ वारोंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। स्तृतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी	महाराज! मैं आपके लालाको जानता हूँ कि वह कौन	सवैया
माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर थाँग चढ़ाइ महाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिँ रुपैया। याचना हो। नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। स्तृत बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। स्तृत बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। सहा की मोहिनी-सी मृरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहें बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारोंगो॥ कुलको तुम्हारो सुत, नयो नयो भयो पृत, धृतताई छाँड़ अब जीवन सुधारोंगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारोंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसान हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सुतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बृढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये कैंट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी कतननेन्दु सुत द्वितय पुत्र जयसेन भये तिनि।	है ? जीवनभर मैंने पुराणोंमें यही पढ़ा है। माँगते-माँगते	धोती फटी कछु नाक कटी पिचकी चिपटी हमरो जिह भैया।
अन्य किसीके सामने हाथ न पसारना पढ़े, यही अन्तिम याचना हो।	बाल सफेद हो गये। जीवन ही बीत गया। अब तो यही	कंठ सुरीलो रँगीलो बड़ो चटकीलो छबीलो बड़ो ही गवैया॥
याचना हो।	माँगता हूँ कि एक बार आपके सामने माँगकर फिर	भाँग चढ़ाइ नहाइ मलाई उड़ाइ चुराइ सदाहिँ रुपैया।
नन्दजीने उत्साहके साथ कहा—हाँ, हाँ ठीक है। इसे गैया दिला दो। इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। प्रिर नन्दजीने पूछा, 'भैया! इन ऊँटोंपर क्या लदा दूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूग, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारौंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहें बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिं डेरा डारौंगो॥ कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धृतताई छाँड़ अब जीवन सुधारौंगो। नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हीं बारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा—अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिको कथा सुनाया करें। स्तुजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बृह्हा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। कँटकी नकेल पकड़े आगे—आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी हैं, बच्चे भी	•	
इतना धन माँग लो कि जीवनभर बैठे-बैठे खाते रहो। दूसरेके यहाँ याचना करनेकी क्या आवश्यकता है? स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारशिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहें बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ ब्रजमाहिँ डेरा डारोंगो॥ कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धृतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारोंगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँबरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारोंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिको कथा सुनाया करें। स्तुतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। लंदबी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी		
है ? जगा बोला— स्त बोले—आप तो महान् हैं, उदारशिरोमणि हैं। मेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहिं बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ ब्रजमाहिं डेरा डारोंगो॥ कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारोंगो। नहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारोंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। स्तृजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी		
सूत बोले—आप तो महान् हैं, उदारिशरोमणि हैं। सेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरित निहारौंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहिं बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिं डेरा डारौंगो॥ स्वताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो। नहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा—अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। स्तर्जीन नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी अप सबनिक मुकुट मिन, गोपवंश अवतंश॥ नन्दजीने उत्सुकताके साथ कहा—अच्छा, हमारे वंशको सुनाओ। इतना सुनकर बड़े हर्षके साथ जगाने ऊँटसे बहुत- सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको पलटकर उसे उठाकर नन्दबाबाके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— इसमेंसे पढ़ते हुए बेल साथ जगाने ऊँटसे बहुत- सी अवहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र पानेको। इसमेंसे पढ़ते हुए बोला— इसमेंसे पढ़ती हुए बेल साथ जगाने उत्तर बार शीघ्र पानेको। इसमेंसे पढ़ती हुए बेल साथ जगाने उत्तर बार शीघ्र पानेको। इसमेंसे पढ़ती हुए सुक्त से स्वर्य के साथ जगाने उत्तर बार पीच्य हुए सुक्त से सुक्त प्राच		- ,
भेरी तो यही भीख है— धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारौंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहँ बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारौंगो॥ कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धृतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी जाप सबनिके मुकुट मिन, गोपवंश अवतंश्र॥ नन्दजीने उत्सुकताके साथ कहा—अच्छा, हमारे वंशको सुनाओ। इतना सुनकर बड़े हर्षके साथ जगाने ऊँटसे बहुत-सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र पन्नोंको पल्टकर उसे उठाकर नन्दबाबाके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरिभजी। भीमक तिनके पुत्र भये तिनि महाबाहुजी॥ तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ छण्णय धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ कंतननेन्द्र सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
धरती धन धाम धान मानहू न माँगों भूप, मोहन की मोहिनी-सी मूरति निहारौंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहें बाढ़्यो मान, दान पाहि आड़ ब्रजमाहिं डेरा डारौंगो॥ कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो। नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हों वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी	` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` ` `	-
मोहन की मोहिनी-सी मूरित निहारोंगो। पढ़िके पुरान ज्ञान भयो निहैं बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमािंह डेरा डारोंगो॥ सी बिहयोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारोंगो। नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हीं वारोंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी इतना सुनकर बड़े हर्षके साथ जगाने ऊँटसे बहुत- सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको पलटकर उसे उटाकर नन्दबाबाके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— इसमेंसे पढ़ते हुए बोला— प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी। प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी। तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। कंजनाभि तिन तनय यशस्वी अति अनुरगगी॥ कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ उपप्रय धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥		
पढ़िके पुरान ज्ञान भयो नहिँ बाढ़्यो मान, दान पाहि आइ ब्रजमाहिँ डेरा डारौंगो॥ सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो। उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हीँ वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये कँगनोन्द सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
दान पाहि आइ ब्रजमाहिं डेरा डारोंगो॥ सी बहियोंको उतारा। कई बार शीघ्र-शीघ्र पन्नोंको कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, पलटकर उसे उठाकर नन्दबाबाके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी मूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये केंद्र बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी सी हतने सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
कुलको तुम्हारो सूत, नयो नयो भयो पूत, धूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारौंगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी पलटकर उसे उठाकर नन्दबाबके समीप आया और उसमेंसे पढ़ते हुए बोला— प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरभिजी। भीमक तिनके पुत्र भये तिनि महाबाहुजी॥ कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ छण्पय धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ कंजननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		·
भूतताई छाँड़ि अब जीवन सुधारींगो। नेहतें निहारि मुख समुझ श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हौं वारौंगो॥ नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी		
नेहतें निहारि मुख समुझि श्याम सत्यमुख, साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हों वारौंगो॥ प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरिभजी। नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। कंजनािभ तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते कंजनािभके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। हों, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लेगा आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द्र सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
साँवरी-सी सूरत पै सरबसु हों वारौंगो॥ प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरिभजी। नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी प्रथम गोपकुल मुकुट भये नृप चन्द्र सुरिभजी। भीमक तिनके पुत्र भये तिनि महाबाहुजी॥ तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ उँटप्पय धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।	3.	
नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और बोले—अच्छा-अच्छा, इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते कंजनाभिके पुत्र सुिठ, वीरभानु आभीरवर। हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ कंजननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
इन सूतजीको यहीं एक महल दिला दो, इसमें रहें, यहीं तिनिके सुत गोपेश काननेचर बड़भागी। हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
हमें पौराणिकी कथा सुनाया करें। सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥ कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ छुप्पय धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ कंजनाभि तिनि तनय यशस्वी अति अनुरागी॥	•	-
सूतजीने नन्दजीका जयकार किया। इतनेमें ही देखते कंजनाभिके पुत्र सुठि, वीरभानु आभीरवर। हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ छण्पय है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द्र सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।	•	·
हैं, कई ऊँटोंपर बड़ी-बड़ी बहियोंको लादे हुए बहुत-से कृती तनय तिनि गोपपित, धर्मधीर सुत धीरधर॥ लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्द्र सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		G
लोग आ रहे हैं। सबसे आगे एक सफेद दाढ़ीवाला बूढ़ा है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
है। उसका जामा घुटनोंतक लटक रहा है। ऊँटकी नकेल धर्मधीरके भद्रश्रवा तिनि देवराज सुत। पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
पकड़े आगे-आगे खींच रहा है। लम्बी-लम्बी गरदन किये देवराजके नवल नवलके द्वै सुत श्रीयुत॥ ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।		
ऊँट बलबला रहा है, उसके पीछे स्त्री भी है, बच्चे भी काननेन्दु सुत द्वितिय पुत्र जयसेन भये तिनि।	_	•
हैं। उनके पास भी ऊँट हैं। उन्होंने नन्दजीका जयकार 💎 हेवमीद्र मधरेश संग त्याही करूरा जिनि।।	हैं। उनके पास भी ऊँट हैं। उन्होंने नन्दजीका जयकार	काननन्दु सुत ।द्वातय पुत्र जयसन मय ।तान। देवमीढ़ मथुरेश संग ब्याही कन्या जिनि॥

* दान-प्रश्नोत्तरी ***** अङ्क] नन्दजीने कहा—हाँ, भाई सुनाओ। ताके सुत परिजन्यजी, नानाकी गोदी गये। तिनिके अति सुन्दर सुघर, पुत्र पाँच पैदा भये॥ तब वह भाट कहने लगा— कवित्त ते पाँचों ई शूर अति, भये ज्येष्ठ उपनन्द। नन्दको दुलारो सुत प्यारो व्रजवासिनिको, नन्दन अरु सन्नन्दजी, अभिनन्दन श्रीनन्द॥ कोई कहे कारो परि जग को उजारो है। वेद निहँ पायो भेद ताही को नाल छेद, छप्पय आँगन में गाढ़ि तापैं अगिहानो वारो है॥ मातामहकी गोद गये गोकुलमहँ गोपति। भक्तनिको जीवनधन गोपिनिको प्राण मन, वृद्ध भये परिजन्य गये तपहित हर्षित अति॥ बालनिको बन्धु धेनु धनको रखवारो है। गद्दीको अधिकार पाइ उपनन्द सिहाये। यशुमतिको लाल व्रजगोपिनको ग्वालबाल, सुकृति मूर्ति श्रीनन्द यशस्वी भूप बनाये॥ इतनो जानूँ वंश मैं, नारायण किरपा करी। दर्शनतें निहाल होहुँ सरबस् हमारो है॥ नन्दजी बोले—भैया, तैंने तो मेरे लालकी बड़ी उपमा वृद्धावस्थामहँ बहुरि, गोद यशोदाकी भरी॥ यह सुनकर नन्दजी बड़े प्रसन्न हुए और सब बढ़ायी। बड़ी सुन्दर कविता सुनायी। अच्छा तू चाहे जितना धन लोगोंको सुनाकर बोले-अरे भैया, यह तो हमारा वंश ले जा, छकडा भर ले जा, चाहे जितनी गौएँ हँकवा ले जा। जानता है। इसे जो माँगे सो तुरंत दो। गौएँ दो, वस्त्र दो, छप्पय आभूषण दो, द्रव्य दो। जो माँगे उससे दुगुना-चौगुना दो। अति आनन्दित नन्द सबनिको स्वागत कीन्हों। इतनेमें एक आदमी खिरकीदार पाग बाँधे हुए बहुत-जाने जो जो करी, याचना सो सब दीन्हों॥ से बाल-बच्चोंको साथ लिये हुए आया। नन्दजीने उससे बार बार है मुदित गीत लालाके गावें। पूछा-अरे, भाई तुम कौन हो? गोप गान अरु वाद्य सुनत अतिशय हरषावें॥ वह बोला-अन्नदाता! हम रायभाट हैं। हमारा काम नन्दलालके जन्मको, घर-घर में उत्सव भयो। ही है, तुरंत रचना करके तुरंत कवित्त कहना। यदि मानो व्रज मण्डल सकल, मंगलमय ही बनि गयो॥ श्रीमान्की आज्ञा पाऊँ तो मैं भी स्वरचित कवित्त सुनाऊँ? [प्रेषक — श्रीश्यामलालजी पाण्डेय] दान-प्रश्नोत्तरी (साध्वेशमें एक पथिक) प्रश्न—त्याग और दानमें क्या अन्तर है? करना चाहिये। (सुखी दशामें दान और दु:खी दशामें उत्तर-फेंकनेको, छोड़ देनेको त्याग कहते हैं। दोषोंका त्याग किया जाता है)। विधिपूर्वक स्थापनको, बोनेको दान कहते हैं। फेंकने और प्रश्न-देनेयोग्य उत्तम वस्तु क्या है? बोनेमें जो अन्तर है, वही त्याग और दानमें अन्तर है। उत्तर—जिस अवस्थामें तुमने जो कुछ पाया है, उसी अवस्थावाले व्यक्तिको उसी प्रकार देना उत्तम दान (त्यागसे सम्बन्ध टूट जाता है, किंतु दानसे सूक्ष्मतर-सूक्ष्मतम सम्बन्ध दृढ़ होता जाता है। अशुभ, असुन्दरका है। त्याग किया जाता है, शुभ तथा सुन्दरका दान किया जाता (दानमें सदा शुद्ध, सुन्दर तथा आवश्यक वस्तु ही है)। देनी चाहिये। अशुद्ध, जूठी, काममें लायी हुई, अनावश्यक प्रश्न—दान कब करना चाहिये? वस्तुका दान नहीं होता)। उत्तर-जब देनेयोग्य पात्र मिल जाय तभी दान प्रश्न—दान किसे देना चाहिये?

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− वही दान करनेयोग्य है। जो धन प्राप्त हो, उसका दसवाँ उत्तर—बालकको, विद्यार्थीको, वृद्धको, विरक्तको, रोगीको, असहाय अभावपीडितको तथा असमर्थको केवल भाग देनेका विधान है। जो अपनी आवश्यकतासे अधिक हो, उसे ही दूसरोंकी आवश्यकतापूर्तिके लिये देश-काल, रक्षामात्रके लिये आवश्यक वस्तु देनी चाहिये। जो दूसरोंको पात्रका विचार रखते हुए दान करना धर्मदान है। इसी दे सके, उसे विद्या और धन देना चाहिये। प्रश्न—दान क्यों देना चाहिये? प्रकार लोभवश दान, कामासक्त होकर दान, लज्जित होकर उत्तर—चॅंकि कभी लिया गया है, इसलिये उऋण दान, भयातुर होकर दान और हर्षित होकर दान-ये दानके होनेके लिये देना चाहिये या फिर कई गुना अधिक पानेके छ: भेद हैं। दानमें भेद होनेसे फलमें भी भेद होता है। प्रश्न—दान न करनेसे क्या हानि है? लिये देना चाहिये। उत्तर—जो दान नहीं करते; वे लोभवश आगे प्रश्न—दानमें क्या लेना चाहिये? उत्तर—जिससे जीवनका निर्वाह हो, जिससे जीवनमें चलकर मूर्ख होते हैं, रोगी होते हैं, दूसरोंके सेवक सद्गति हो, जिसकी वृद्धि की जा सके और दूसरोंको दी बनकर दु:खी होते हैं। भिखारी बनते हैं। दरिद्रतासे पीड़ित रहते हैं। जा सके, वहीं लेना चाहिये। प्रश्न—दातासे उऋण कैसे हुआ जा सकता है? प्रश्न—दानसे क्या लाभ है? उत्तर-धर्मपूर्वक दान करनेवाले लाभके लोभी न उत्तर—जिस दशामें जिस अवस्थामें तुमने दातासे पाया है, उसी अवस्थामें जब किसीको अपने सम्मुख देखो रहकर उदार होते हैं, श्रद्धा आदि दैवी गुणोंके धनी बनते जाते हैं, शरीरसे निरोग होते हैं; अनुकूलतासे, सुविधाओंसे उसे तुम भी मिली हुई वस्तुका दान करो, यही दातासे उऋण होनेका उपाय है। (देनेकी वस्तु शुद्ध हो, सुन्दर हो, सुखी रहते हैं; धनी कुलमें जन्म लेते हैं और विरक्त होते समयोपयोगी हो)। जाते हैं। प्रश्न—दानका फल लोक-परलोकमें कैसे मिलता प्रश्न—उत्तम कोटिका दान किसे कहते हैं? उत्तर—जिसके पीछे अभिमान न हो, बदलेमें कुछ है ? लेनेकी इच्छा न हो, देकर पश्चात्ताप न हो, किसी दूसरेको उत्तर-श्रेष्ठ पुरुषोंको सात्त्विक धर्मदानका फल दु:ख न हो, वही उत्तम कोटिका दान है। परलोकमें मिलता है। अविवेकी, लोभी, मोही, कामीको प्रश्न—दानके योग्य पात्र कौन है? दानका फल इस लोकमें मिलता है। जो देकर पश्चात्ताप उत्तर—जो सन्तोषी हो, परिश्रमी हो, उदार हो, करता है, जो अपात्र-कुपात्रको देता है, अश्रद्धापूर्वक देता तपस्वी हो, दोषोंका त्यागी हो और भगवद्भक्त अथवा है, उसे कहीं भी दानका फल नहीं मिलता है। वह जो आत्मज्ञानी हो, वही सुपात्र है। कुछ देता है-उसके संग्रहकी चिन्तासे मुक्त हो जाता है, जो मिले हुएका अपने निर्वाहमें उपयोग करे, उसका इतना ही लाभ होता है। तमोगुणी दानका फल कामोपभोगकी भोगी न बने और बच जानेपर दूसरोंको देते हुए प्रसन्न सुविधा है। रजोगुणी दानका फल धन और मानकी प्राप्ति रहे। जो उत्तम कुलीन हो, सदाचारी हो, विद्वान् हो, है। सतोगुणी दानका फल भोगोंसे विरक्ति और दैवी स्वावलम्बी हो, दयालु हो, कर्तव्यपरायण हो, आस्तिक हो, सम्पत्तिकी प्राप्ति है। प्रश्न—भिखमंगोंको दान देना चाहिये या नहीं? वही सुपात्र है। प्रश्न—कितना भाग दान करना चाहिये? उत्तर-भिखमंगोंको अन्तकी भीख तो देनी चाहिये, Hinghism Piscord Server hit too: // descapola harma all MAREA VANT File ANTE BY PARIA SENTAN

* दान-प्रश्नोत्तरी *अङ्क] प्रभुका साम्राज्य है। जब भीतर प्रेम होता है, तभी बाहर सदाचारी, सद्गुणोंसे सम्पन्न ब्राह्मणको ही देनी चाहिये। श्रम करते हुए जो परिवारकी आवश्यकताओंकी सब प्रभुमय दीखने लगता है। जिसकी दुष्टिमें सभी पूर्तिके योग्य धन नहीं कमा पाते, उनकी आवश्यकतापूर्तिके प्रभुमय है तभी दान करना सहज स्वभाव हो जाता है, लिये सहायता करनी चाहिये। आलसी, विलासी, हिंसक, भेदभाव मिट जाता है, कोई शत्रु रह ही नहीं जाता, क्रोधी, धर्मविमुख दानका पात्र नहीं होता। सर्पमें, फूलमें, काँटेमें, जीवनमें, मृत्युमें प्रभुकी ही क्रीड़ा-प्रश्न-कोई माता या पतिव्रता पत्नी प्रेमका दान लीला दीखने लगती है। जबतक हृदय प्रेमसे भरपूर करते हुए महात्मा-सन्त क्यों नहीं कही जाती? नहीं होता, तबतक ही विषयोंमें प्रतीत होनेवाले उत्तर-अधिकतर माता अथवा पत्नी प्रेमका दान सुखोपभोगकी कामना तथा लोभ, मोह, ममता, रागद्वेष, करते हुए बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेकी अपेक्षा रखती हैं। ईर्घ्या, क्रोध-कलह, निन्दा, घृणा आदि दुर्विकारोंसे अहंकार अधिकतर प्रेमके बदलेमें कोई धन चाहते हैं, कोई मान घिरा रहता है। जिस दिन हृदय प्रेमसे भर जाता है, तथा अधिकार चाहते हैं। कोई प्रेमके बदलेमें प्रेम चाहते उसी दिन दुर्विकारोंके मेघ छिन्न-भिन्न हो जाते हैं तब हैं; क्योंकि अपनेको प्रेम करनेवाले मानते हैं। जो कर्ता तो चारों ओर परमात्माका बोध होने लगता है। तभी है, वही भोक्ता बनता है। जहाँ कर्ता भोक्ता है, वहीं जीवनका सत्य, जीवनका आनन्द, जीवनका सौन्दर्य अहंकारकी सीमा है। जहाँतक अहंकार है वहाँतक प्रेम आलोकित होता है। इसके विपरीत दिशामें हम लोभसे-ढका हुआ है। अहंकार दानी नहीं हो पाता; क्योंकि कामसे-भयसे-दु:खसे-अशान्तिसे तथा चिन्तासे घिरे हुए अहंकार भिखारी है, दरिद्र है। अहंकार जो कुछ भी हैं। हमें प्रेमको पूर्ण करनेकी साधनाके लिये दृढ़ संकल्प करना है। अपना मानकर देता है, उसके बदलेमें कुछ-न-कुछ पानेके लिये ही देता है। माता-पिता-पुत्र-पत्नी आदि प्रश्न-भिखारियोंको देना क्या उन्हें आलसी नहीं जितने सम्बन्धी हैं, वे अहंकारके ही नामरूप हैं। अहंकार बनाना है ? अपना मानकर आरम्भमें ही अपनी सन्तुष्टिके लिये लेता उत्तर—जबतक किसी प्रकारकी चाह है, तबतक है, अपना मानकर दानी बनता है, त्यागी बनता है, सभी भिखारी हैं। कोई मुखसे माँगते हैं, कोई पापोंसे अहंकार ही प्रेमी बनता है। अहंकार ही प्रेमकी पूर्णतामें तरसते रहते हैं, कोई पूर्तिके लिये मनसे व्यथित रहते बाधक है। अहंकार न रहनेपर जो शेष है, वही शान्तात्मा हैं। कोई पैसा माँगता है, कोई संयोग-भोगका सुख माँगता है-महात्मा है-परमात्मा है। है। कोई मान चाहता है। कोई प्यार तथा अधिकार प्रश्न-दान करना चाहते हैं, फिर क्यों नहीं कर चाहता है। कोई वस्तु चाहता है, कोई वोट ही चाहता है। संसारसे चाहनेवाला सदा भिखारी ही बना रहता है। पाते ? उत्तर—दान करनेकी अभिलाषा मानवी स्वभाव जो किसीसे कुछ लेता है, उसे देना भी चाहिये। देनेवाला है। अदानवृत्ति अर्थात् न देनेकी रुचि राक्षसी स्वभाव है। उदार होता है लेनेवाला दरिद्र, दीन बना रहता है, अत: दैवी वृत्ति उदारतापूर्वक दानके लिये उत्सुक होती है, कुछ-न-कुछ पात्रकी योग्यताके अनुसार देनेयोग्यको देते परंतु लोभकी प्रधानतामें राक्षसी वृत्ति दान नहीं करने रहना ही शुभ है, सुन्दर है। हर किसीको उसके श्रमानुसार देती है। जहाँ लोभ है, वहीं भय है। जहाँ भय है, वहीं योग्यता तथा आवश्यकताका निर्णय करते हुए जहाँतक भेद है। जहाँ भेद है, वहाँ प्रेम नहीं विकसित होता। जो कुछ दे सको-धन, मान, प्यार, अधिकार, सुख, जहाँ भय है, वहाँ शैतानका राज्य है; जहाँ प्रेम है, वहाँ सन्तोष देते रहो।

* अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति * अङ्क] अन्नदानात्परं दानं न भूतो न भविष्यति [अन्नदानसे श्रेष्ठ दूसरा दान नहीं] (ब्रह्मचारी श्रीत्र्यम्बकेश्वरचैतन्यजी) भारतीय संस्कृति उत्सर्गप्रधान संस्कृति है। सम्पूर्ण उसका विनियोग करना चाहिये [प्रदर्शन आदिके लिये विश्वमें इसके औदार्यकी, सौशील्यकी प्रशंसा की जाती नहीं]— है। भारतमें अवतरित होकर अखिलकोटिब्रह्माण्डनायक न्यायोपार्जितवित्तस्य दशमांशेन धीमतः। परात्पर पूर्णतम पुरुषोत्तम श्रीमन्नारायणने भी इस वसुन्धराकी कर्तव्यो विनियोगश्च ईश्वरप्रीत्यर्थमेव च॥ प्राणभूता अनुपम संस्कृतिका मान बढाया। हमारी ये पितामह ब्रह्माजीने हिंसा-प्रवृत्तिवाले दैत्योंको दयाकी सनातन संस्कृति पारमार्थिक भावसे भरी है, जहाँ तुच्छ शिक्षा दी, भोगवादी-प्रवृत्तिवाले देवताओंको इन्द्रियसंयमरूप स्वार्थको त्यागकर औरोंके लिये जीनेका पाठ स्तन्यपान दमनकी शिक्षा दी तथा लोभाभिभूत मानसिकतावाले करते-करते शिशुओंको शैशवमें ही प्राप्त हो जाता है। मनुष्यको आत्मोद्धारार्थ दानकी शिक्षा प्रदान की। भारतका मानव ही नहीं पशु-पक्षीतक भी परोपकारमयी २. दानकी अवश्यकर्तव्यता—श्रद्धापूर्वक देना उत्सर्गोन्मुखी उदात्त संस्कृतिके संरक्षणमें—परिपालनमें सदैव चाहिये, अश्रद्धापूर्वक नहीं। पवित्र देशमें (तीर्थ आदिमें), सजगतापूर्वक प्रवृत्त रहा है। जटायु, सम्पाती, कपोत, पवित्र समयमें (पूर्णिमा, संक्रान्ति आदि), पवित्र सच्चरित्र मृगी, गौ इत्यादिके आख्यान पुराणोंमें बहुधा प्राप्त होते पात्रको (वेदवेत्ता ब्राह्मण न मिले तो जात्या ब्राह्मणको ही) हैं। 'दान' भारतीय सनातन संस्कृतिका स्वभाव है (धर्म दान देना चाहिये। है)। जैसे व्यक्तिके, पदार्थके स्वभाव (अग्निमें दाहकता, देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्। जलमें शीतलता आदि)-के बिना उस व्यक्तिका, पदार्थका (गीता १७।२०) अस्तित्व सम्भव नहीं, ठीक वैसे ही दानके बिना 'श्रद्धया देयम् अश्रद्धयादेयम्।' भारतीय संस्कृतिका अस्तित्व संदिग्ध हो जायगा। स्वसामर्थ्यानुसार देना चाहिये, उदारतापूर्वक देना औपनिषत्-आख्यानोंमें दानकी महिमाका वर्णन विस्तारसे चाहिये [श्रिया देयम्], विनम्रतापूर्वक [प्रत्युपकारकी प्राप्त होता है। महानारायणोपनिषत्में कहा गया है— भावनासे नहीं] देना चाहिये [हिया देयम्], दान नहीं 'सर्वाणि भूतानि प्रशःसन्ति दानान्नातिदृश्चरं तस्मात् करूँगा तो परलोकमें प्राप्त नहीं होगा—इस भयसे देना दाने रमन्ते" सर्वभूतानि उपजीवन्ति दानेन चाहिये। अथवा भगवान्ने मुझे आवश्यकतासे अधिक कुछ आरातीरपानुदन्त दानेन द्विषन्तो मित्रा भवन्ति दाने भी धरोहरके रूपमें समाज-कल्याणके लिये पात्र मानकर दिया है, तो औरोंको दूँ, अन्यथा भगवान्को क्या मुख सर्वं प्रतिष्ठितं तस्मात् दानं परमं वदन्ति।' (खण्ड २१) अर्थात् दानकी प्रशंसा सब प्राणी करते हैं, किंतु दिखाऊँगा-इस भयसे देना चाहिये [भिया देयम्]। भगवत्कृपाके बिना दान करनेकी प्रवृत्ति दुष्कर ही है। ज्ञानपूर्वक विधिपूर्वक देना चाहिये। प्रमादसे या उपेक्षापूर्वक सभी जीव दानसे उपजीवित हो रमण करते हैं। दानके नहीं [संविदा देयम्]। आदरपूर्वक, उदारतापूर्वक देना द्वारा शत्रु भी मित्र हो जाते हैं। द्वेष-भाव दूर हो जाता चाहिये, चाहे जैसे दो किंतु देना चाहिये। (तैत्तिरीयोपनिषत्, है। सब कुछ दानमें ही प्रतिष्ठित है, अत: दानको शीक्षावल्ली) श्रेष्ठ कहा गया है। **३. दाताकी भावना**—जिस प्रकार एक किसान **१. आयका दशांश भगवत्प्रीत्यर्थ**—मनुष्यमात्रके अपने खेतकी सफाई करके उसमें हल चलाकर उसे तैयार करके बीज बोता है, पानी-खाद देता है, रक्षा भी करता कल्याणके लिये शास्त्रोंने उपदेश किया कि न्यायद्वारा

उपार्जित वित्तसे दशांश भाग निकालकर भगवत्प्रीत्यर्थ

है, ठीक उसी प्रकार दाताको बड़े पवित्र मनसे विश्वासपूर्वक

१७० * दाने सर्वं	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-
**************************************	**************************************
दान करना चाहिये। आवश्यकता खेतको नहीं किसानको	५. दानके भेद —अन्न, घृत, मधु, तिल, स्वर्ण, गौ,
है, वह थोड़ा देकर अधिक पाना चाहता है। किसान	हाथी, अश्व, अभय, विद्या, कन्या, शय्या, तुला, भूमि-
खेतपर उपकार नहीं करता, अपने लाभके लिये उत्सर्ग	भवन, उपवन तथा तडागदान आदि—ये सभी दान यद्यपि
करता है; क्योंकि खेत माँगता नहीं। दानी भी दान करके	अपने-अपने स्थानपर श्रेष्ठ हैं, किंतु इन सबका आधार
उपकार नहीं करता अपितु दानी किसान है, लेनेवाला खेत	जीवनाधायक दान है—अन्नदान।
है, आवश्यकता लेनेवालेकी न समझी जाय। हम जो दे	६. अन्नदान —जबतक दाता-प्रतिग्रहीता [देने-
रहे हैं, ये हमारी आवश्यकता है। हम अपने हितके लिये	लेनेवाले]-को भूख-भावका अनुभव है, तबतक सकल
देते हैं। नहीं देंगे तो नहीं पा सकेंगे। अत: देना ही चाहिये।	प्रपंचमें अन्नदानसे बढ़कर कोई दान नहीं है। भूमि, स्वर्ण,
जैसे खेतमें बीज नहीं बोयेंगे तो नहीं पा सकते। उचित	वस्त्र आदिको पानेके बाद भी प्राप्तकर्ताके मनमें प्राप्तिकी
समयपर, उचित खेतमें, उचित बीज बोनेसे फसल	प्रसन्नता क्षणभर भी नहीं ठहरती, अधिक पानेकी इच्छा,
(पर्यावरण-देशकालानुसार) अच्छी होती है, ठीक वैसे ही	और अच्छा पानेकी इच्छा उसको और अधिक व्याकुल
देश-काल-पात्रका विचार करें। उपेक्षापूर्वक अवज्ञापूर्वक	बना देती है, प्रसन्नताकी झीनी-सी चादरसे ढकी ये
प्रमादवश दिया दान व्यर्थ चला जाता है।	लालसा अधिक बलवती होकर इस प्रसन्नताको ही निगल
४. दया और दान —दया कभी भी, कहीं भी,	जाती है।
किसीपर भी, कोई भी, कैसे भी कर सकता है। यहाँ देश,	सभी दान देश, काल और पात्रकी अपेक्षा करते हैं,
काल, पात्र और विधि अपेक्षित नहीं है। दयाके लिये सभी	किंतु अन्नदानके लिये समागत-अभ्यागत अतिथि चाहे जो
स्थान, सभी व्यक्ति [प्राणीमात्र], सभी समय उपयोगी हैं,	हो, वह भगवान्का प्रतिनिधि नहीं, अपितु भगवान् ही होता
अनुकूल हैं। किंतु दानके विषयमें ऐसा नहीं है, कुदेशमें,	है, [अतिथिदेवो भव] अत: बिना नाम-गाँव-जाति-कुल
कुसमयमें और कुपात्रको दिया गया दान तामस होता है—	पूछे ही उनका आदरपूर्वक पूजन करे, अन्न [भोजन]-
'अदेशकाले यद्दानं अपात्रेभ्यश्च दीयते।'	दान करे। वही सर्वश्रेष्ठ पात्र है, जब वे पधारें तभी सर्वश्रेष्ठ
(गीता १७।२२)	समय है, जहाँ वे पधारें वही सर्वश्रेष्ठ देश हो जाता है।
दया पानेके अधिकारी सब हैं, किंतु दान पानेके	भोजनसे तृप्त भोक्ताकी सुतृप्त सन्तुष्ट दृष्टिरूपी सुरसरितामें
अधिकारी केवल ब्राह्मण ही हैं। अपात्रको दिया दान	अवगाहन करके अपने मनको तृप्त करके देखें, जैसा
विनाशका कारण बन सकता है।	आनन्द वहाँ मिलेगा, वैसा अन्यत्र नहीं मिल सकेगा।
जब भूमिमें डाला गया बीज व्यर्थ नहीं जाता, तब	७. अन्नदान सर्वश्रेष्ठ है— (१) अन्य दानोंके
गौ-ब्राह्मणके मुखमें दी गयी आहुति, विप्रके हाथमें दिया	पानेपर प्रचुरताकी तृष्णाजन्य आकुलता बढ़ती है, जबिक
गया विधिपूर्वक दान कैसे व्यर्थ जा सकता है? इसमें	अन्नदानसे तृप्त्यनुकूल वितृष्णा बढ़ती है।
शंकाकी तो जगह ही नहीं है। कोई कहे कि हम तो	(२) प्राणिमात्रके जीवनका आधार होनेसे सर्वश्रेष्ठ है।
निष्काम भावसे देते हैं, तो विधि वहाँ आवश्यक नहीं है।	(३) अन्नदान ब्रह्मदानके समान ही पुण्यप्रद है
देश, काल, पात्रका झंझट नहीं है। तब उनसे निवेदन होगा	[अन्नं ब्रह्मत्वात्]।
कि निष्काम भावसे करनेमें विधि आवश्यक नहीं—ऐसा	(४) श्रवण, मनन, निदिध्यासन, यज्ञ, योग, तप,
कहाँ लिखा है? विधिपूर्वक करनेसे निष्काम कर्म शीघ्र	भक्ति, ज्ञान, विचार, त्याग, वैराग्य, सत्संग, स्वाध्याय,
निर्वृत्ति प्रदान करता है, किंतु इसे दानका नाम न दिया	उपासना, समाज-सेवा आदिका आधार होनेसे अन्नदान
जाय। अन्यथा अभिमानरूपी अहि (सर्प) कर्तृत्व–विषदंशसे	सर्वश्रेष्ठ है।
डस लेगा, जिसका परिणाम अशान्ति—विकलता ही होगी।	(५) सभी दानोंका आधार अन्नदान ही है।

अङ्क] * अन्नदानात्परं दानं	न भूतो न भविष्यति * १७१
(६) विश्व-प्रपंचका आधार अन्नदान है।	प्रजाः प्रजायन्तः।' (प्रश्नोप० १।१४) तपसे ब्रह्म, ब्रह्मसे
अन्नदान सद्यः लोकोत्तर तृप्तिकी अनुभूति करानेकी	
जनादान सद्य: लाकातर शृत्याका अनुमूत करानका क्रियात्मक साकार उपासना है, किंतु यह उपासना	
क्रियात्मक साकार उपासभा हे, किंगु वह उपासभा निरिभमानपूर्वक सेवक-भावसे की जाय, स्वामी-भावसे	
नहीं, स्वयंको कृतकृत्य मानते हुए की जाय। हमारे	
पुण्यवर्धनके लिये ही सन्त-अतिथि-याचक हमारे द्वारकी	
शोभा बढ़ाने आते हैं, हमारी सेवाको स्वीकार करके वे	
हमपर उपकार करते हैं।	१०. उपाख्यान —पद्मपुराणमें महाराज श्वेतका वर्णन
यदि कोई सोचे कि पर्याप्त धनधान्यसम्पन्न होनेपर	
ही दान करेंगे तो शास्त्र कहते हैं, अरे भाई! अपने	
एक ग्रासमेंसे भी आधा ग्रास देनेमें प्रसन्नता समझो	पीड़ित राजाके पूछनेपर ब्रह्माजी बोले—राजन्! तुमने
और उद्यत रहो; क्योंकि इच्छानुरूप सम्पदा कब किसको	
मिल सकेगी—	अत: अब अपना वह शरीर ही खाओ, भूखके मारे
ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किन्न दीयते।	राजा प्रतिदिन भारतमें आकर अपना मृत शरीर खाते
इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥	थे। एक दिन अगस्त्यऋषिकी कृपासे उन्हें मुक्ति मिली।
(व्यासस्मृति)	जिन्होंने अन्नदान नहीं किया, वे परलोकमें भूखे ही
८. अन्नदान-महिमा— भारतमें ब्राह्मणको अन्नदान	रहते हैं
करनेवाला दाता अन्नकणोंके प्रमाणवर्षोतक शिवलोकमें	'बुभुक्षिताः यान्ति अनन्नदाः।' (बृहस्पतिस्मृति)
निवास करता है, ब्राह्मण ही क्या मनुष्यमात्रको अन्नदान	अन्नदानसे बढ़कर सद्गतिका अन्य कोई उपाय
करनेवाला शिवलोक पाता है। तीनों कालोंमें अन्नदानसे	नहीं—
बढ़कर कोई और दान नहीं। इस दानमें देश–काल–पात्रकी	'अन्नदानात् परं नास्ति प्राणिनां गतिदायकम्॥'
परीक्षाका नियमतक नहीं है—	११. अन्नदानसे ब्रह्मप्राप्ति —महाराज रन्तिदेवकी
अन्नदानं च विप्राय यः करोति च भारते।	कथा शास्त्रसिद्ध है, लोकप्रसिद्ध है, उन्होंने स्वयंकी परवाह
अन्नप्रमाणवर्षं च शिवलोके महीयते॥	किये बिना जीवनके आधार अपने भोजन और जलतकको
अन्नदानं महादानमन्येभ्योऽपि करोति यः।	कातर होकर दूसरोंको दे दिया, परिणामत: उसी समय
अन्नदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति।	उन्हें भगवान् मिल गये।
नात्र पात्रपरीक्षा स्यात् न कालनियमः क्वचित्॥	पद्मपुराणके सृष्टिखण्डमें राजा विनीताश्वका प्रसंग
(श्रीमद्देवीभागवत ९।३०।२—४)	है—उन्होंने सब कुछ दान किया, किंतु अन्नको उपेक्षित
जिस अन्नदानीका अन्न वेदपाठद्वारा पचाया जाता है,	मानकर अन्नदान नहीं किया। अत: उन्हें स्वर्गमें सबकुछ
उसकी इक्कीस पीढ़ियाँ तर जाती हैं—	मिला, पर अन्न नहीं मिला। भूख-प्याससे त्रस्त
कुक्षौ तिष्ठति यस्यान्नं वेदाभ्यासेन जीर्यति।	विनीताश्वको भारत आकर शरीर खानेको विवश होना
तारयेत् पूर्वजान् तस्य दशपूर्वान् दशापरान्॥	पड़ा। अपने पुरोहितके कृपा-प्रसादसे उन्होंने तिलधेनु,
९. अन्नमहिमा —अन्न ही प्रजापित है, अन्तसे ही	
देहसारसर्वस्वभूत रेत बनता है, उसीसे ये प्रजा उत्पन्न होतीष <mark>्रहे</mark> णां <mark>अम्नि वेऽप्रजापितः स्तर्भह</mark> िष्टीस् <mark>रह्मस्तरमास्स्</mark> रीत	अन्न मिला। पुरोहितने कहा—हे राजन्! तुमने अपने ha smani M& Afrak VT H LA V E B कियोvi <u>श्वas</u> h/Sha

(पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड ३६।१२९) श्रीमद्भागवतके तृतीय स्कन्धमें भगवान् विष्णु सनकादिकोंसे कहते हैं, 'मैं ब्राह्मणोंके मुखमें जाती हुई सरस घृताप्लुत आहुतियोंसे जितनी तृप्तिका अनुभव करता हूँ, उतनी तृप्ति मुझे अग्निकुण्डमें प्रदत्त आहुतिसे भी नहीं होती।' (श्रीमद्भा० ३।१६।८) लोकोक्ति भी है 'मधुरान्नप्रदानेन सर्वे तुष्यन्ति जन्तवः।' इहलोक और परलोक—उभयविध लोकसुख-सौविध्यप्राप्तिका साधन अन्नदान है। अतः प्राणिमात्रको यथाशक्ति अन्नदान अवश्य करना चाहिये।

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् *

भागवतांक पृ० २८८

प्रेरक-प्रसंग-

गरीबके दानकी महिमा गुजरातको प्रसिद्ध राजमाता मीणलदेवी बड़ी उदार थोड़ा-सा बिना नमकका सत्तू दिया। उसके आधे हिस्सेसे

थी। वह सवा करोड़ सोनेकी मोहरें लेकर सोमनाथजीका मैंने भगवान् सोमेश्वरकी पूजा की। आधेमेंसे आधा दर्शन करने गयी। वहाँ जाकर उसने स्वर्ण-तुलादान

स्वल्पं मत्वा यथा त्वया।'

आदि किये। माताकी यात्राके पुण्य-प्रसंगमें पुत्र राजा सिद्धराजने प्रजाका लाखों रुपयेका लगान माफ कर दिया। इससे मीणलके मनमें अभिमान आ गया कि

'न अन्नं दत्तं तेन किञ्चित्

मेरे समान दान करनेवाली जगत्में दूसरी कौन होगी! रात्रिको भगवान् सोमनाथजीने स्वप्नमें कहा—'मेरे मन्दिरमें एक बहुत गरीब स्त्री दर्शन करने आयी है, तू उससे

उसका पुण्य माँग।' सबेरे मीणलदेवीने सोचा, 'इसमें कौन-सी बडी

बात है। रुपये देकर पुण्य ले लूँगी।' राजमाताने गरीब स्त्रीकी खोजमें आदमी भेजे। वे यात्रामें आयी हुई एक गरीब ब्राह्मणीको ले आये। राजमाताने उससे कहा—

'अपना पुण्य मुझे दे दे और बदलेमें तेरी जितनी इच्छा हो, उतना धन ले ले।' उसने किसी तरह भी

स्वीकार नहीं किया। तब राजमाताने कहा—'तूने ऐसा क्या पुण्य किया है, मुझे बता तो सही।' ब्राह्मणीने कहा—'मैं घरसे निकलकर सैकडों गाँवोंमें भीख माँगती हुई यहाँतक पहुँची हूँ। कल तीर्थका

उपवास था। आज किसी पुण्यात्माने मुझे जैसा-तैसा

एक अतिथिको दिया और शेष बचे हुए से मैंने पारण किया। मेरा पुण्य ही क्या है! आप बड़ी पुण्यवती हैं; आपके पिता, भाई, स्वामी और पुत्र—सभी राजा हैं। यात्राकी ख़ुशीमें आपने प्रजाका लगान माफ करवा

> इतना पुण्य कमानेवाली आप मेरा अल्प-सा दीखनेवाला पुण्य क्यों माँग रही हैं? मुझपर कोप न करें तो मैं निवेदन करूँ। राजमाताने क्रोध न करनेका विश्वास दिलाया।

> पुण्यसे बहुत बढ़ा हुआ है। इसीसे मैंने रुपयोंके बदलेमें इसे नहीं दिया। देखिये-१. बहुत सम्पत्ति होनेपर भी नियमोंका पालन करना, २. शक्ति होनेपर भी सहन करना, ३. जवान उम्रमें व्रतोंको निबाहना और ४. दरिद्र होकर भी दान करना-ये चार बातें थोड़ी होनेपर

> भी इनसे बड़ा लाभ हुआ करता है।' ब्राह्मणीकी इन बातोंसे राजमाता मीणलदेवीका

> दिया, सवा करोड़ मोहरोंसे शंकरजीकी पूजा की।

तब ब्राह्मणीने कहा-'सच पूछें तो मेरा पुण्य आपके

िदानमहिमा-

अभिमान नष्ट हो गया। शंकरजीने कृपा करके ही ब्राह्मणीको भेजा था।

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् ************ सम्पत्तिको विपत्ति बननेसे बचाता है —दान

960

(श्रीबालकविजी वैरागी)

दानमिहमा−

महात्मा संत कबीरके अध्येता और शोधकर्ता ही इस को। सृष्टिमें जबसे 'सम्पत्ति' शब्द आया, तभीसे उसका सहोदर शब्द भी हमारे सामने बैठा है। वह शब्द है

प्रचलित दोहेके बारेमें प्रामाणिक तौरपर कुछ कह सकते

हैं कि यह दोहा कबीर साहबका है या पाठान्तर, रूपान्तर 'विपत्ति'। सचमुच सम्पत्तिसे बड़ी कोई विपत्ति नहीं

अथवा अवान्तरसे चल रहा है। जो भी हो मौलिकतापर

होती। सबसे बड़ी विपत्तिका नाम है—सम्पत्ति। अध्ययन

बहस किये बगैर हम दोहेको मर्म, धर्म और कर्मसे समझ

करके देख लो, शोध कर लो; यदि सम्पत्तिका सदुपयोग

नहीं है तो वह विपत्ति है। इस विपत्तिसे निबटनेकी

लें तो बहुत बड़ी बात होगी। दोहा है-

चिड़ी चोंच भर ले गई नदी घट्यो नहिं नीर।

दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥

किसीका मोहताज नहीं है। पंक्तियोंका मर्म, धर्म, कर्म

और अर्थ स्पष्ट है। दान देनेसे धन घटता नहीं है।

चिड़ियाकी चोंचमें समाता ही कितना है? चोंचमें समायी

इस एक बूँदसे नदीका नीर, उसका प्रवाह, उसकी गति,

उसका धर्म, उसका कर्म, उसकी प्रांजलता रत्तीभर भी

कम नहीं होती। अपने सागर-लक्ष्यसे वह भटकती भी

नहीं। उसकी दिशा और दशा नहीं बदलती। अपने

रास्तेपर अपनी गतिसे वह सतत, अनवरत और निरन्तर

बढ़ती जाती है। चिड़ियाको जीवन और नदियोंको अपना

लक्ष्य मिल जाता है। दानकी यही महिमा है। इस

महिमाका एक अप्रकट अर्थ और भी है। यह निहितार्थ

अत्यन्त गम्भीर है। दोहेको पढ़नेवाले इस गम्भीर निहितार्थतक

नहीं पहुँचते। निहितार्थ यह है कि जो बूँद चिड़ियाकी

चोंचमें गयी, बस वही मीठी रही; शेष नदी, सागरमें जाकर अपनी मिठास, अपना मूल स्वाद खो बैठी—खारी

हो गयी। धन-सम्पत्ति और सम्पदा उतनी ही सार्थक है,

जो किसीकी धर्मरक्षा और प्राणरक्षामें काम आये। शेषको

तो अन्ततः निरर्थक होना ही है। महाराजा भर्तृहरिने अपने

नीतिशतकमें धनकी तीन गतियाँ सदियों पहले स्पष्ट कर

दी हैं। ये स्थितियाँ अज्ञात नहीं, सर्वज्ञात हैं—(१) दान,

(२) भोग और (३) नाश। प्रारब्ध और पुरुषार्थके बलपर

प्राप्त सारा राज-वैभव भोगनेके बाद भर्तृहरिने धनकी

पहली गति लिखी और सुझायी वह है—'दान'। दूसरे

क्रमपर रखा 'भोग' को और तीसरेपर जगह दी 'नाश'

अपने प्रकट और प्रचलित लोकार्थके मामलेमें दोहा

पहली सीढी है—'दान'।

संसारके हर धर्म और हर भूभागमें दानका अपना

स्थान है। उसकी अपनी शैली है। हर जगह दानकी

अपनी आचरण-संहिता है। अपनी महिमा है। भारत इस

मुकामपर भी अकेला है। भारत ही वह देश है, जहाँ

दाताको समझाया गया है कि जिसे भी दो, उसे इस तरह

दो कि उसकी कृतज्ञता चेतन है कि अचेतन-इसका

आभासतक किसीको नहीं हो। तुम जानो, लेनेवाला जाने

और तीसरा बस तुम्हारा अन्तर्यामी ईश्वर जाने। तुम्हारे

बाँये हाथको भी यह पता नहीं चले कि तुम्हारे दाहिने

हाथने किसको, कब और कितना तथा कैसा-क्या दिया।

इसके इतर दिया हुआ उपहार, भेंट या पुरस्कार पाखण्डमें

स्थान पायेगा। दान नहीं होगा। 'दान' तुम्हें मोक्षतक ले

जायगा। भेंट, पुरस्कार और उपहार तुम्हें यशका स्वाद

चखा सकते हैं। वे 'दान-दर्शन' के दायरेसे बाहरके

द्वारपाल हैं। यशलिप्सा मनुष्यको पाखण्डकी गलियोंका पदयात्री बना देती है। आपकी अपनी बस्तीमें इसके

पचासों उदाहरण आपके आस-पास बिखरे पड़े हैं। यहाँ-

वहाँ लगे लाखों पत्थर, छोटे-बड़े द्वार, ऊँचे-नीचे शिलापट्ट

और न जाने क्या-क्या आप देखते हैं, पढ़ते हैं, पर

भारतीय दान-दर्शनने उन्हें दान नहीं माना है। वे हमारी

यशैषणाके स्मारक हैं। हमारी यशेच्छा उन्हें प्रेरक और

प्रोत्साहक मान सकती है, पर भारतकी आत्मा उन्हें दान

नहीं मानती। अपनी सम्पत्ति, अपने धन और अपनी

लक्ष्मीका सदुपयोग माननेतक बात गले उतर जायगी, पर

दानकी महिमाके करोड़ों उदाहरण भारतमें घर-घर

दानकी श्रेणीमें इस लिप्साको नहीं रखा जायगा।

पढ़ी जानेवाली पोथियोंके पृष्ठोंपर फैले पड़े हैं। एक-से-भी दान दी गयी वस्तु—उद्दालक-पुत्र नचिकेता सशरीर एक बढ़कर चौंकाने और चिकत करनेवाले प्रकरण हमारे यमलोक जा पहुँचा। यम अपने लोकसे बाहर भ्रमणपर थे। तीन दिनतक नचिकेता यमलोकके द्वारपर खडा रहा सामने हैं। प्राय: अविश्वसनीय, किंतु सत्य। तब फिर

महाकवि रहीमका वह दोहा सैकड़ों साल पीछे घूमकर ढूँढ्नेका मन करता है, जिसमें रहीमने दानकी महिमाको

अङ्क]

व्याख्यायित किया था। उनसे किसीने पूछा—'महाकवि!

आप अपने सामने आनेवाले जरूरतमन्दको चुपचाप इतना सारा दे देते हो, फिर भी आपकी नजरें नीची क्यों रहती हैं?' रहीमने उत्तर दिया—देनेवाला कोई और है, लेकिन

लोग मेरा नाम धरते हैं, इससे मेरी आँखें और नजरें नीची रहती हैं।' दान और दाताका तात्त्विक अर्थ यहाँ आकर समझमें आता है।

'दान' के सन्दर्भमें यदि किसी एक संज्ञाका सर्वाधिक अपमानजनक दुरुपयोग हमारे आस-पास प्रतिदिन हो रहा है तो वह संज्ञा है 'भामाशाह'। महाराणा प्रताप और भामाशाहका प्रसंग विश्वविख्यात है। क्या महाराणा प्रतापको

भामाशाहने कोई दान दिया था? क्या मेवाड़के सूर्यने भामाशाहसे कोई दान माँगा था? नहीं, कदापि नहीं। वह देशभक्ति और राष्ट्ररक्षाका एक अद्भृत युद्ध-प्रसंग था। स्वप्रेरित भामाशाहने युद्धरत प्रतापको अपना जीवन-संचित सर्वस्व जीवन अर्पित ही नहीं किया, बल्कि उनके

संकल्पपर न्यौछावर कर दिया था। क्या वह दान था? नहीं,

वह राष्ट्ररक्षाके बलियज्ञका हविष्य था। आज क्या हो रहा है ? 'भामाशाह अलंकरण' कौन दे रहा है और कौन ले रहा है ? देनेवाले और लेनेवाले दोनोंकी तस्वीरें विज्ञापनोंमें देखकर आप हँस रहे हैं। प्रताप और भामाशाहकी आत्माएँ

क्या कह रही हैं-यह आपके अनुमानका विषय है। दानमें दी गयी वस्तु या धन या राशिका न तो हिसाब माँगा जाता है न वापस ली जाती है, किंतु

भारतीय उपनिषद्-सम्पदामें कठोपनिषद् वह शास्त्र है,

जिसमें पिता उद्दालक ऋषिद्वारा क्रोध और आवेशमें आनेपर अपने पुत्र निचकेताको दानमें दे दिया गया था।

दान भी किसे? साक्षात् 'यम' को। मृत्युके मठाधीशको।

क्या यमराजने यह दान माँगा था? उत्तर है 'नहीं'। तब

बहसमें डाल दिया है।

वस्तुत: दान; जिसे हम मोक्षप्रदाता कर्म मानते हैं,

भूखा-प्यासा। यमके आनेपर स्वागत-सत्कार सब हुआ

और फिर हुआ यम-नचिकेताका उपनिषदीय संवाद।

नचिकेता अपने तीन प्रश्नोंके उत्तर और चतुराईभरे

वरदान लेकर अपने पितृगृह लौट आता है। सकुशल और

सशरीर। हमारी अध्यात्म-सम्पदाको कठोपनिषद्-जैसा

उपनिषद् मिलता है। हम धन्य हो जाते हैं। यह एक

अकेला प्रकरण है, जहाँ दानमें गयी हुई वस्तु जैसी-की-

तैसी वापस उसीको मिल जाती है, जिसने कि दानमें दी थी। उदालक भी सहर्ष उसे स्वीकार कर लेते हैं। दानके

महिमागानमें इस तरहका यह अकेला छन्द है, जिसके

सुर, ताल और लयमें कहीं कोई बेसुरापन नहीं है। न

छन्ददोष है, न अलंकारभंग। यह कोई पौराणिक चमत्कार

अवदान, प्रतिदान-जैसे गरिमापूर्ण शब्दोंमें एक शब्द और

शामिल हुआ है, वह शब्द है 'मतदान'। प्रक्रिया और अर्थ

दोनों धरातलोंपर यह शब्द सम्मान और श्रद्धा दोनोंसे दूर

होता जा रहा है। व्यावहारिक तौरपर इस शब्दने दानकी महिमा, गरिमा और भावना—तीनोंका कितना निर्वाह किया

है, यह एक विचारणीय विषय है। दान सशर्त शब्द नहीं

है। मतदान शत-प्रतिशत एक सशर्त शब्द है। इस शब्दकी

परछाईंने दान-जैसे ईश्वरीय शब्दको भी चिन्ता और

दानकी महिमासे दीप्त दिव्य देश भारतमें दान,

नहीं है, अपितु आध्यात्मिक सत्य है।

एक जीवन और जन्म-कल्याणकी खेती है। जितना

बोओगे, उसका कई गुना अधिक पाओगे। जितना बाँटोगे,

उतना बढ़ेगा। यह पुण्यप्राप्तिका एक कृषि-कर्म है।

पुनर्जन्मसे मुक्तिका सरलतम और आसान रास्ता। इसके

लिये किसीका प्रवचन और किसीका उपदेश सुननेकी भी आवश्यकता नहीं है। बस, अपने अन्तर्यामीसे बात करो

और बीज बोना शुरू कर दो।

सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है

(श्रीकृष्णचन्द्रजी टवाणी, एम० कॉम०)

दानका अर्थ—धर्मकी दुष्टिसे या दयावश किसीको चाहिये। कमरेकी खिडिकयाँ बन्द रखनेसे हवा बन्द हो जाती हैं। इसी प्रकार धनका संग्रह कर लेनेसे एवं दानरूपी कोई वस्तु देनेकी क्रिया दान है। परहितकी दृष्टिसे

उदारतापूर्वक दु:खियोंकी सहायता करना भी दान कहलाता है। साधारण अर्थोंमें प्रेम, परोपकार तथा सद्भावनाको दान

माना जाता है। आध्यात्मिक दुष्टिसे सार्वभौम प्रेम तथा ईश्वरके प्रति अनन्य श्रद्धा एवं सबके प्रति सद्भाव यह

महान् दान है। अपनी सम्पत्तिमेंसे शुद्ध भावसे बिना किसी फलकी कामनासे जो दिया जाय, उसे दान कहते हैं।

लोभको जीतनेका एकमात्र साधन है—दान। यदि लोभ भी हो तो वह दान करनेका हो। बृहदारण्यकोपनिषद्में प्रजापितने अपनी तीन संतानों, देवताओंको दम (अपनी इन्द्रियों और इच्छाओंका दमन करो) यानी संयमका,

मनुष्योंको दान तथा असुरोंको दया करनेका उपदेश दिया है। धर्मके चार चरणोंमें एक चरण कलियुगमें विशेष रूपसे धारण करनेयोग्य है—दान। दान किसी प्रकारसे

किया जाय कल्याणकारी ही है—

प्रगट चारि पद धर्म के किल महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥

दुनियाके सभी पदार्थ फेंकनेसे नीचेकी ओर जाते हैं किंतु दान ही एक ऐसी चीज है जो कि फेंकनेसे ऊपरकी

खिडिकयाँ बन्द कर लेनेसे हवारूपी धनका आना बन्द हो

अपने पेटमें जमा करते हैं, ऐसी तृष्णा भी किस कामकी है?' समुद्रने उत्तर दिया—'जिनके पास अनावश्यक है, उनसे लेकर बादलोंद्वारा सर्वत्र न पहुँचाऊँ तो सृष्टिका क्रम कैसे चले?' यदि सब एकत्र ही करते रहेंगे तो औरोंको

सकता है—

कैसे मिलेगा? यही दान देनेकी भावनाका रहस्य है, जो सनातन कालसे चला आ रहा है।

दानके भेद-मुख्य रूपसे दानके दो भेद बताये गये हैं—(१) निष्कामदान और (२) सकामदान।

(१) निष्कामदान—जो दान बिना किसी कामना, फल या इच्छाके दिया जाता है, जिसमें दिखावेकी भावना

बिलकुल नहीं होती, वह निष्कामदान होता है। निष्कामदान, गुप्तदान और सात्त्विक दानसे ही प्रभु प्रसन्न होते हैं और

जाता है। चन्द्रमा समुद्रसे बोला 'सारी नदियोंका पानी आप

यही दान फलित होता है। सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ तथा उत्कृष्ट है। इसे निम्न दृष्टान्तसे अच्छी तरह समझा जा

एक बार कुम्भके मेलेमें बहुत-से धनी लोग, महन्त Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma InMADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

 इतिष्ठितम् दानमिहमा− 288 पुण्य किया। एक गरीब घास खोदनेवालेके मनमें आया दानी था; मिलन रूपसे बैठा देखकर भक्तने उससे पूछा कि मैं आज भोजन नहीं करूँगा, आजकी घासका पैसा कि तुम महान् दानी होनेके बावजूद यहाँ क्यों भेजे गये? मैं भी दान कर दूँ। बस, घास बेची तो चार आने आये, उसने ठण्डी साँस भरकर जवाब दिया 'मैंने जो लाखों यही उसकी पूरे दिनकी आमदनी थी। चार आनेमें तो रुपये परोपकारके कार्योंमें दान दिये, उसके पीछे मेरी आता ही क्या? स्नान करके चार आनेके चने लिये और इच्छा लोक-प्रशंसा तथा राजाको प्रसन्न करनेकी लगी हुई एक भूखेको खिला दिये। जब सभी दानी लौटे तो साथ थी। इसलिये वह दान सही अर्थींमें पारमार्थिक नहीं था। वह भी था, चार आनेवाला दानी। बड़ी कड़ी धूप पड़ रही मैंने दान दूसरोंको दिखानेहेतु दिया, दीन-दु:खियोंकी थी, उसके पुण्यके प्रतापसे बादलकी छाया सबके साथमें सहायताके लिये नहीं, इससे यह कष्ट भोग रहा हूँ।' दान किसे और कैसे? ऊपर चलने लगी, सभी बड़े प्रसन्न होकर बोले-हमारा दान सुपात्रको ही दिया जाय, पात्र सच्चरित्र तथा दान सफल हो गया, परमात्माने छाया कर दी है। इतनेमें इस गरीबको प्यास लगी और पीछे पानी पीने रह गया, जरूरतमन्द होना चाहिये। ऐसे माँगनेवाले आजकल बहुत छाया बादलकी जो साथ चल रही थी, उसीके ऊपर रह हैं, जो दिनभर तो माँगते हैं तथा रात्रिमें उस राशिको शराब, गयी। सब धूपमें चलने लगे, सबने सोचा कि किसी जुआ, नाच-गाने आदिमें खर्च करते हैं। ऐसे व्यक्तियोंको हवाके अनुकूल होनेसे छाया साथ चल रही थी। रुख दिया गया दान ऐसी दुष्प्रवृत्तियोंको बढ़ाता है, जिससे बदलनेसे छाया दूर चली गयी है, किंतु जब यह चार समाजमें व्यभिचार तथा भ्रष्टाचार फैलता है। अत: दान आनेवाला दानी पानी पीकर आया तो छाया उसके साथ देनेवाले व्यक्तिको बहुत सोच-विचारकर पात्रका चयन फिर आ गयी और साथ-साथ चलने लगी। तब सब समझ करना चाहिये, अन्यथा उसे दानका फल कदापि नहीं मिल गये कि इस भक्तकी ही महिमा है; क्योंकि छाया इसीके सकता। साथ चलती है। सभी उससे पूछने लगे कि तुमने ऐसा क्या दानीको अपनी हैसियतके अनुसार ही दान देना दान किया है, जो छाया तुम्हारे साथ चलती है ? तब भक्तने चाहिये, किसीके आग्रहसे अपनी क्षमतासे ज्यादा देना, कहा—महाराज! दान तो आप सबने किया है, मुझ गरीबके कष्ट सहकर दान देना कभी नहीं फलता। अपनी क्षमताके पास क्या है? आज चार आनेकी घासके पैसोंके चने दे अनुसार हर्ष एवं उल्लासके साथ दान करें किंतु उसका दिये हैं एक भूखेको और तो कुछ किया नहीं, बस प्रदर्शन नहीं करें। दान देते समय अभिमान न हो, लज्जासे उसीका फल है। विनम्र होकर दान करें। (२) सकामदान—जो दान किसी फलकी इच्छासे किसी वस्तु या सेवाका दान बड़ा या छोटा नहीं होता किया जाता है, वह सकामदान कहलाता है। यदि कोई दान है। दान भले ही किसी भी वस्तुका हो, उसे देनेसे पात्रको समाजमें अपनी प्रतिष्ठा, सम्मान बढ़ानेके लिये दिया जाता संतुष्टि एवं आनन्द प्राप्त होवे तथा उसकी आवश्यकताकी है, अपने धन-वैभवके प्रदर्शनहेतु दिया जाता है, दाताके पूर्ति करे, वही श्रेष्ठ होता है। विकलांग, बौने, गूँगे, अनाथ, मनमें दानकी भावना नहीं होती तो ऐसे दान देनेवाले निर्धन, अन्धे, भूखे, रोगीको दिये गये दानका महान् फल व्यक्तिको दानके सच्चे फलकी प्राप्ति नहीं होती। यह दान मिलता है। भूकम्प, आपदा, बाढ़ या अकाल आदिके नहीं आडम्बरमात्र है। इसे हम निम्न उदाहरणसे समझ समय आपदाग्रस्त प्राणीको एक मुट्ठी चना दान देना भी सर्वोत्तम है। जैसे-भूखेको अन्न, प्यासेको जल, रोगीको सकते हैं— औषधि, वस्त्रहीनको वस्त्र, अशिक्षितको शिक्षा, निराश्रयीको एक भक्तको प्रभुकृपासे एक दिव्य स्वप्नमें स्वर्ग और नरक दोनोंका दृश्य देखनेका अवसर मिला। स्वर्गमें आश्रय एवं जीविकाहीनको जीविकोपार्जनमें सहयोग देना उसे ऐसे व्यक्ति दिखायी पड़े, जो पूर्वजन्ममें निर्धन और अत्यन्त उत्तम दान है। निर्बल थे और नरकमें ऐसे व्यक्ति दिखायी दिये, जो पहले दानमें थोड़े या बहुतकी भी कोई सीमा नहीं होती

है। बहुत दान भी थोडा हो सकता और थोडा दान भी

धनी या बडे दानी थे। नरकमें एक अमीरको, जो प्रसिद्ध

* सात्त्विक दान ही सर्वश्रेष्ठ है * अङ्क] बहुत हो सकता है। देनेवालेकी स्थितिपर निर्भर करता है पैसेमेंसे घरका खर्च चलाकर वह जो बचा पाया, वह कुल कि वह कितना दे सकता है। अगर एक करोड़पति एक सात पैसे थे, उसने वहीं सात पैसे जो उसकी कुल सम्पत्ति लाखका दान देता है तो भी कुछ नहीं है और सामान्य है, वह दानमें दी है, भीमने अपना सर्वस्व दान कर दिया व्यक्ति एक हजारका दान दे तो भी यह उसके लिये है। उसके दानसे बडा दान और कोई नहीं हो सकता, महत्त्वपूर्ण होता है। इस सम्बन्धमें एक कथा है-पट्टनके इसलिये भीमका नाम सर्वप्रथम रखा गया है। इतना राजाके महामन्त्री उदयन थे। उदयन वृद्धावस्थाके कारण कहकर महामन्त्री बोले-यदि निर्णय करनेमें मुझसे कोई अन्तिम साँस गिन रहे थे, ऐसेमें उन्होंने अपने पुत्र भूल रह गयी हो तो मैं क्षमायाचना करते हुए भूल सुधारनेको तैयार हूँ। सभीने अपने मस्तक झुकाकर सम्मति बाहड़को बुलाया और कहा—'पुत्र! मेरी एक इच्छा अपूर्ण रह गयी है, उसे तुम कर सको तो पूर्ण करना।' बाहड़ व्यक्त कर दी, किसीने भी विरोध नहीं किया। बोला—अवश्य पिताजी! आप मुझे आदेश दीजिये। श्रीमद्भगवद्गीता उसी दानको सात्त्विक दानकी उदयनने कहा—'शत्रुंजय तीर्थका जीर्णोद्धार करवाना है' संज्ञा देती है, जो फलकी कामनाके बिना दिया जाता है। इतना कहते-कहते उदयनने अपने नश्वर शरीरका त्याग यथा— कर दिया। कुछ समय व्यतीत हो जानेके पश्चात् बाहड दातव्यमिति यद्दानं दीयतेऽनुपकारिणे। जो अब महामन्त्री बन चुके थे, उन्होंने यतिवर्यसे शत्रुंजय देशे काले च पात्रे च तद्दानं सात्त्विकं स्मृतम्॥ तीर्थके जीर्णोद्धारका शुभ मुहूर्त निकलवाया और मुहूर्तानुसार अर्थात् सात्त्विक दान वह है, जो बिना किसी निर्माण-कार्य शुरू कर दिया गया। फलाकांक्षाके केवल दानके उद्देश्यसे ही योग्य पात्रको, सही समय और सही स्थानपर दिया जाता है। राजस दान जब कार्य शुरू हो गया तो जनताने कहा कि मन्त्री महोदय! आप तो स्वयं समर्थ हैं, अत: आप अकेले ही वह है, जो कि बदलेमें या फलको ध्यानमें रखकर दिया इस कार्यको पूर्ण करा देंगे, किंतु हमारी इच्छा है कि इस जाता है और तामस दान वह है, जो अयोग्य व्यक्तिको पुनीत कार्यमें आम जनताका भी सहयोग लिया जाय, हमें सही देश और सही समयका विचार किये बिना ही भी इस पुण्य कार्यमें सहभागी बननेका अवसर प्रदान करें। अनादरपूर्वक दिया जाता है। (गीता १७।२०-२२) लोगोंकी बातें सुनकर महामन्त्रीको भी यह उचित लगा सात्त्विक दानका लोक और परलोकमें बहुत महत्त्व है। बसन्त आनेसे पूर्व पतझडमें पेड अपने समस्त पल्लव और जनताकी बात उन्होंने स्वीकार करते हुए कहा कि झाड़ देते हैं, तभी तो नये पत्तोंसे पल्लवित-पुष्पित होते जो जितना चाहे उतना ही योगदान करे, अपनी-अपनी स्वेच्छा एवं शक्ति-सामर्थ्यके अनुसार ही दान दे। हैं। इसीलिये किव बिहारीने कहा है-अब जीर्णोद्धार पूर्ण हो जानेपर भगवान् आदिनाथकी ऋतु बसंत आयो लखि डारि दिये द्रुम पात। भव्य मूर्ति विराजितकर प्राण-प्रतिष्ठाका भव्य आयोजन ताते नव पल्लव भया दिया दूर नहीं जात॥ किया गया। आयोजनकी पूर्णतापर महामन्त्रीने कहा-इस सात्त्रिक दान-धर्मसे मनकी क्षुद्रता नष्ट होती है। पुण्य कार्यमें जिन-जिन लोगोंने दान दिया है, उनकी दान-धर्म तो ईश्वरकी सेवा है। जिस कुलमें दान-धर्म नहीं नामावलीकी मैं घोषणा करता हूँ। यह कहकर मन्त्री होता, उस कुलमें अपंग, मितमंद, कुछ कमीवाले बालक बाहड्ने सबसे प्रथम नाम बोला—भीमका, जो एक मजदूर जन्म लेते हैं। प्रेम, करुणा, विनम्रता एवं निरभिमानी भावसे था। उसने सात पैसेका दान दिया था। जिन लोगोंने लाखों दिया गया दान सात्त्विक दानकी श्रेणीमें आता है। इसमें रुपये दानमें दिये थे, वे विस्मयमें पड गये। उनके भाव-दाता स्वयंको अपनी सम्पत्तिका न्यासी मानता है। जो विचारको महामन्त्रीने समझा और बोले-आप सभीने और भगवान्ने उसे दी है, उसके स्वामी स्वयं भगवान् हैं। मैंने भी जो दान दिया है, तीर्थोद्धारमें जो भी सहयोग किया सात्त्विक दान यशकी इच्छासे नहीं, अपितु आत्मतोष ही है, वह अपने धनका मात्र दसवाँ भाग ही है, लेकिन भीम-उसका प्रतिफल है। स्वयं जाकर दिया गया दान उत्तम जैसे मजदूरको रोजाना दो पैसे मजदूरी मिलती है, उस दो और अपने यहाँ बुलाकर दिया गया दान अधम होता है।

दानसे कल्याण (साधु श्रीनवलरामजी शास्त्री, साहित्यायुर्वेदाचार्य, एम० ए०) सनातन हिन्दू-संस्कृतिमें मानवके आत्मकल्याणके करुणाविगलित हृदयमें त्यागभाव आयेगा तो उससे दान लिये जप, तप, यज्ञ, ध्यान, अर्चना, सेवा, वन्दना, स्वाध्याय देनेकी प्रवृत्ति हो जायगी। दाण् दाने दा धातु दान अर्थात् आदि कई साधन ऋषि-मृनियोंने शास्त्रोंमें वर्णन किये हैं, देनेके अर्थमें होती है। दान मानवका स्वाभाविक कर्तव्य परंतु कलियुगमें दानयज्ञको सबसे सुगम साधन बतलाया है, उसका उसे सदा पालन करना चाहिये। गया है। श्रीतुलसीदासजी महाराजने श्रीरामचरितमानसमें दान दिया जानेवाला धन स्वयंद्वारा उपार्जित हो तथा कहा है-टैक्स-चोरी इत्यादि दोषोंसे रहित हो एवं शुद्ध कमाईका हो। प्रगट चारि पद धर्म के किल महुँ एक प्रधान। ऐसा दान निष्काम भावसे देनेपर ही कल्याण करनेवाला होता है। 'देशे काले च पात्रे च'का भाव है—अकाल, अतिवृष्टि, जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्यान॥ भूकम्प, अग्निप्रकोप, रोगादिका प्रकोप, भूखा, रोगी, अतिवृद्ध (रा०च०मा० ७।१०३ (ख))

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

कलियुगमें दान देनेमात्रसे कल्याण हो जाता है। दान आदि अवस्थामें अन्न, जल, वस्त्र, औषध, आवास, अन्य देनेवाले सबसे बड़े दाता परमात्मा हैं। परमात्मा जीवको आवश्यक सामग्री जैसे—जूता, छाता, सुई-डोरा, टार्च, यिष्टका आदि द्रव्योंको दानमें देना चाहिये। अन्न, जल, औषधमें पात्र- पहिले दाता हरि भया तिनते पाई जिंद। कुपात्र नहीं देखना चाहिये। गरीब परिवारकी कन्याका विवाह पीछे दाता गुरु भया जिन दाखे गोविंद॥ करना, गरीब छात्रोंको पुस्तक, विद्यालय-फीस, वस्त्र आदि

गोस्वामीजी कहते हैं—

कबहुँक किर करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही॥

(रा०च०मा० ७।४४।६)

बड़ें भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथिन्ह गावा॥

(रा०च०मा० ७।४३।७)

गीतामें भगवान् कहते हैं—
सुहृदं सर्वभूतानां ज्ञात्वा मां शान्तिमृच्छिति॥
(गीता ५।२९)
भगवान् प्राणिमात्रके सुहृद् (बिना हेतु हित करनेवाले)

भगवान् प्राणिमात्रके सुहृद् (बिना हेतु हित करनेवाले) हैं। इस भावको जो जान लेता है अर्थात् इस भावके अनुसार प्राणिमात्रका बिनाहेतु हित करता है, उसको परम शान्ति मिलती है अर्थात् परमात्माकी प्राप्ति हो जाती है।

उस मानवका सदाके लिये कल्याण हो जाता है। परमात्मा जीवमात्रकी गर्भकालमें एवं शिशु-अवस्थामें रक्षा एवं भरण-पोषण करते हैं। मानवको भी सबकी रक्षा एवं पालन-पोषण करनेके लिये दया-भाव रखना जरूरी है—

> दया धर्म का मूल है नरक मूल अभिमान। तुलसी दया न छाँड़िये जब लागि घट में प्रान॥

जब प्राणिमात्रके प्रति हितकी भावना तथा परपीडासे

देना, गरीब वृद्धोंकी अन्न-जल, वस्त्र, औषध आदिसे सेवा करना, त्यागी, संत-महात्मा, ब्राह्मण, गौ आदिकी सेवा करना, ऋणी व्यक्तिका निष्काम भावसे ऋण चुकाकर ऋणमुक्त करवाना चाहिये। विद्यालय, औषधालय, वाचनालय, गोशाला, धर्मशाला, कुआँ, तालाब, प्याऊ, सत्संग-भवन, सामाजिक-भवन,

िदानमहिमा−

तीर्थोंमें घाट आदिका निर्माण कराना चाहिये। बगीचा, वृक्ष आदि लगाना, भागवतकथा, सत्संग, नाम-जप, भगवन्नाम-संकीर्तन, धार्मिक साहित्यका प्रचार आदि समाजमें कराकर लोगोंको भगवान्के सम्मुख करना चाहिये। शास्त्रके अनुसार ब्राह्मणोंको दान देना, भोजन कराना, प्रेतमुक्तिके लिये गया-पिण्डदान, गंगा-यमुना आदि क्षेत्रोंमें दान देना, कुम्भ-ग्रहण

आदि पर्वोंपर तीर्थोंमें दान देना, जप-अनुष्ठान कराना आदि सभी दान शुद्ध कमाईसे तथा निष्काम भावसे करे। दानमें भूमिदान, गोदान, अन्तदान एवं जलदानकी बहुत महिमा महाभारतमें कही गयी है। भीष्मपितामह युधिष्ठिरसे कहते हैं—

यावद् भूमेरायुरिह तावद् भूमिद एधते।
न भूमिदानादस्तीह परं किञ्चिद् युधिष्ठिर॥

(महा० अनु० ६२।४)

* दानसे कल्याण * अङ्क] अर्थात् इस जगत्में जबतक पृथ्वीकी आयु है, तबतक सभी कष्टोंको हर लेता है। भूमिदान करनेवाला मनुष्य समृद्धिशाली रहकर सुख भोगता अभयदान— है। अत: यहाँ भूमिदानसे बढ़कर दूसरा कोई दान नहीं है। अमित्रमपि चेद् दीनं शरणैषिणमागतम्। व्यसने योऽनुगृह्णाति स वै पुरुषसत्तमः॥ दानका महत्त्व— भवन्ति नरकाः पापात्पापं दारिद्र्यसम्भवम्। अर्थात् शत्रु भी यदि दीन होकर शरण पानेकी इच्छासे घरपर आ जाय तो संकटके समय जो उसपर दया दारिद्र्यमप्रदानेन तस्माद्दानपरो भवेत्॥ अर्थात् पापके कारण नरक भोगना पड़ता है, करता है, वही मनुष्योंमें श्रेष्ठ है। निर्धनताके कारण पापका जन्म होता है, दान नहीं देनेसे अभयं सर्वभूतेभ्यो व्यसने चाप्यनुग्रहः। निर्धनता आती है, अत: सदा दानपरायण होना चाहिये। यच्चाभिलषितं दद्यात् तृषितायाभियाचते॥ ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि। भाव यह है कि सम्पूर्ण प्राणियोंको अभयदान देना, इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥ संकटके समय उनपर अनुग्रह करना अभयदान है। जैसे-अर्थात् घरमें मॉॅंगने आये याचकको अपने ग्रासमेंसे हिंसक पशु व्याघ्र आदिसे गाय, हिरण आदिको बचाना, भी आधा दे देना चाहिये; क्योंकि अपने मनके अनुकूल बलवान् मनुष्य निर्बल मनुष्यको भयसे उत्पीड़ित करे तो धन कब किसके पास हो अथवा न हो। अत: धन होनेपर उसे भयसे मुक्त कराना—अभय प्रदान करना है। इच्छानुसार याचकको दान देना तथा प्यासेको जल देना उत्तम दान है। दान करूँगा; ऐसा सोचना मनुष्यकी भूल है; क्योंकि भविष्यमें शरीर तथा देनेका भाव रहे अथवा न रहे, धन सन्तोंने दान-महिमामें कहा है-भी मनके अनुसार हो अथवा न हो। चिड़ी चोंच भर ले गई नदी न घटियो नीर। गौरवं प्राप्यते दानान्न तु वित्तस्य सञ्चयात्। दान दिये धन ना घटे कह गये दास कबीर॥ स्थितिरुच्चैः पयोदानां पयोधीनामधः स्थितिः॥ हरिया दीया हाथ का आड़ा आसी तोय। अर्थात् धनका संग्रह करनेसे गौरव नहीं बढता है, रामनाम कुँ सिवँरता सबै का सिद्ध होय॥ बल्कि दान देनेसे गौरव बढ़ता है, जल देनेवाले मेघका रामा माया राम की आड़ी मत दे पाल। स्थान ऊँचा है, परंतु जलका संचय करनेवाला सागर आवे ज्यूँ ही जाणदे परमारथ के खाल॥ नीचे ही रहता है। हरि भज जीवन साफला पर उपकार समाय। दातव्यं भोक्तव्यं सित विभवे सञ्चयो न कर्तव्यः। दादू मरणा जहाँ भला तहाँ पशु-पक्षी खाय॥ पश्येह मधुकरीणां सञ्चितमर्थं हरन्त्यन्ये॥ दादू दीया है भला दिया करो सब कोय। अर्थात् यदि सम्पत्ति हो तो दान करना चाहिये तथा घर में धरा न पाइये जे कर दिया न होय॥ उसका उपभोग करना चाहिये, परंतु उसका संग्रह नहीं श्रीदादूजी महाराज कहते हैं—सभीको दान देना करना चाहिये; कारण कि मैं देखता हूँ कि मधुमिक्खयोंके चाहिये, दान देना श्रेष्ठ है। दान देनेसे सभीका भला होता द्वारा एकत्र किया गया मधु दूसरे लोग ले जाते हैं। है। यदि दान नहीं देंगे तो संसारमें सब वस्तुएँ होनेपर भी भूतानि वशीभवन्ति पुण्यके अभावमें नहीं मिलेंगी, जैसे रात्रिको घरमें सभी दानेन दानेन वैराण्यपि यान्ति नाशम्। वस्तुएँ रखी रहती हैं, परंतु हाथमें दीपक न होनेसे प्रकाशके परोऽपि बन्धुत्वमुपैति दानै-अभावमें वस्तुएँ होनेपर भी नहीं मिलती हैं। सबसे बड़े दानी भगवान् तथा उनके भक्त हैं। र्दानं हि सर्वव्यसनानि हन्ति॥ अर्थात् दान देनेसे सभी प्राणी वशीभूत होते हैं, दान भक्तके भावके वशमें होकर भगवान् भक्तको उसके करनेसे शत्रुओंकी शत्रुता भी समाप्त हो जाती है, दान भावके अनुसार अपने-आपको भी दे देते हैं। जैसे-क्संमित्रपरंशिक्ति।इस्वर्षिक्ष्यं इस्वर्धां मिष्ट्रहर्म् प्रदेशी क्रिक्ति स्वर्धि स्वर्य स्वर्धि स्वर्धि स्वर्ये स्वर्ये स्वर्ये स्वर्ये स्वर्ये स्वर्ये स्वर्ये स्वर यहाँ भी श्रीखण्डिया नौकर बन गये। आपकी विरह-ज्वालामें जलते हुए प्राणियोंको जीवनदान भगवान्के भक्त भी परम उदार होते हैं; क्योंकि वे देती है, बड़े-बड़े ब्रह्मज्ञानी कवियोंने उसका गान किया साधकका अज्ञान दूर करके भगवान्का दर्शन करा देते हैं। है, उसके श्रवण-कीर्तनसे सब पापोंका नाश होता है। जो दु:खनिवृत्ति करके सदाके लिये परम सुखी बनाकर श्रवणमात्रसे ही प्रेमरूपी परम सम्पत्तिका दान करती है, परमानन्द देकर कल्याण कर देते हैं। ऐसी अत्यन्त विस्तृत कथाका पृथ्वीपर जो कीर्तन-गान भागवतमें गोपियोंने कहा है-करते हैं, वे जगत्में सबसे बड़े दानी लोग हैं। यह तुम्हारी लीला-कथाकी महिमा है। तुम्हारे दर्शनकी महिमा तो कथामृतं तप्तजीवनं कविभिरीडितं अवर्णनीय है। कल्मषापहम्। श्रवणमङ्गलं अतः मानवको जगत्के हित एवं आत्मकल्याणार्थ श्रीमदाततं

दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्

(१०।३१।९) हे प्राणेश्वर! तुम्हारी लीला-कथा अमृतमयी है। वह

भुवि गृणन्ति ते भूरिदा जनाः॥

सौ हाथोंसे कमाओ और हजार हाथोंसे दान करो

(श्रीभगवतप्रसादजी विश्वकर्मा)

आजका युग अर्थप्रधान हो गया है। हर तरफ पैसा

अम्बार लगता जा रहा है। चारों ओर झूठ, बेईमानी, लूटपाट, धोखाधड़ी, हत्याका साम्राज्य छाया हुआ है। परंतु

कमानेकी होड़-सी लगी हुई है। विश्वके बड़े देशोंमें भी

भ्रष्टाचारका खेल हो रहा है। लोगोंके पास धन-सम्पत्तिका

बेईमानीसे कमायी हुई धन-दौलत तो यहीं छोड़कर जाना होगा, इस बातका ज्ञान किसीको नहीं है। वास्तवमें धनका उपयोग कैसे किया जाय-यह एक

महत्त्वपूर्ण प्रश्न है। पहलेके समयमें लोग अपने धनका उपयोग कुआँ, बावली, धर्मशाला, तालाब, मन्दिर आदि बनवाकर महाशयता प्राप्त करते थे और धनका सही

उपयोग भी हो जाता था, परंतु आज व्यक्ति धन जोड़नेमें

लगा है और अधिक-से-अधिक कमाकर रखना चाहता है; ताकि उसकी सात पीढ़ी उस धनको खाती रहे। वास्तवमें बात यह है कि ज्यों-ज्यों लाभ होता है, त्यों-त्यों लोभ लगातार बढ़ता ही जाता है—'जिमि प्रतिलाभ

लोभ अधिकाई।' मनुष्यको अपने जीवननिर्वाहहेतु पैसा कमाना तो आवश्यक है। इसके अभावमें आदमीका गुजारा नहीं हो सकता। देशमें ऐसे कितने गरीब तबकेके लोग हैं, जो रोज

कुआँ खोदते हैं और रोज पानी पी पाते हैं अर्थात् बड़ी

प्रतिदिन दान करते रहना चाहिये।

शास्त्रके अनुसार एवं सन्तोंके वचनानुसार अपना कर्तव्य

समझते हुए निष्काम भावसे अपनी सामर्थ्यके अनुसार

दानमिहमा−

मुश्किलसे गुजारा हो पाता है। रुपया-पैसा साधनमात्र है, साध्य नहीं। आजकल लोग करोड़ों रुपये कमाते हैं, परंतु एक

द्वारा ऐशो-आराममें, दिखावेमें आमदनीका काफी पैसा फूँका जा रहा है। अनैतिक ढंगसे कमाये धनका परिणाम भी देखनेमें आता है कि जगह-जगह छापा पड रहा है; क्योंकि वहाँ अनुपातसे अधिक धन, सम्पत्ति, जवाहरात आदि पाया जाता है। इससे यही सिद्ध होता है कि आयसे

अधिक रुपया-पैसा, सोना-चाँदी लोगोंने बटोर रखा है।

कौड़ी भी धर्मकार्योंमें लगानेकी सोचतेतक नहीं। हमारे

यहाँ भी पाश्चात्य संस्कृतिका प्रभाव पड़ रहा है। लोगोंके

दूसरी ओर गरीब तबकेके लोगोंको खानेके लाले पड़े हुए हैं। इस तरह अमीर और अधिक अमीर होता जा रहा है और गरीबोंके आँसू पोंछनेवाला कोई नहीं है। भोगमें सुख तो है, पर रस नहीं है। जो रस उदारतामें

है, वह भोगमें नहीं है। उदार होनेके लिये हमें हृदयके द्वार खोलकर देखना होगा कि हम क्या कर सकते हैं। वैसे भी मनुष्यको अपनी शुद्ध कमाईका दस प्रतिशत तो दान

कर ही देना चाहिये। एक अंग्रेज कवि वाल्टेयरने भी ठीक

* दान-महिमा * अङ्क] ही कहा है—भाग्यवान वह है, जिसका धन गुलाम होता (३।२०।५)-में दानके बारेमें कहा गया है—'**रयिं दानाय** है और अभागा वह है, जो धनका गुलाम है। अर्थात् धन चोदय' अर्थात् दान देनेके लिये कमाओ। संग्रह करने अपने ढंगसे व्ययकर बताना होगा कि धनकी गुलामी अथवा विलासिताके लिये धन नहीं है। पसन्द नहीं। 'दानशीलता' एक ऐसा गुण है, जो मनुष्यमें जब व्यक्तिमें उदारताका गुण आ जायगा तो व्यक्ति सोनेकी-सी चमक पैदा करता है। मनुष्यकी सारी बुराइयाँ सेवाभावी होकर दोनों हाथोंसे धन व्यय करेगा। इसमें कोई स्वयं दूर हो जाती हैं। ऋषि दधीचिने अपने शरीरकी सन्देह नहीं। वैसे भी आवश्यकतासे अधिक धनका साथ हड्डियाँतक दान कर दी थीं। पुराने जमानेके राजा-महाराजाओंकी दानशीलताकी मिसालें आज भी सुननेको सब बुराइयोंकी जड है। अतएव धनको दानके द्वारा पुण्यकार्यमें लगाया जा सकता है। मान लीजिये एक गरीब मिलती हैं। व्यक्ति है, उसका परिवार बडा है और आमदनी सीमित वास्तवमें सात्त्विक त्याग ही श्रेष्ठ त्याग है। त्यागमें है तो हम उसकी मददकर परोपकारी कहला सकते हैं। ही शान्ति छिपी हुई है। दान भी त्यागका ही एक अंश परंतु कोई भी परोपकार नाम या यश कमानेके उद्देश्यसे है, परंतु मनुष्यको दान एक कर्तव्य समझकर नि:स्वार्थ नहीं करना चाहिये। हमें सेवाभावसे यह परोपकार करते भावसे करना चाहिये। कई लोग तो गुप्तदान भी करते हैं। हुए जगन्नियन्ताको अर्पण कर देना होगा, तभी यह कार्य आदर्श मानव वही है जो दम, दान और यमका पुण्यकी श्रेणी—सत्कर्मकी श्रेणीमें आयेगा। पालन करता है। संतशिरोमणि श्रीकबीरने दानकी महिमा धनके उपयोगकी तीन गतियाँ हैं-दान, भोग और इस प्रकार बतायी है-नाश। भोग और नाश तो देखनेको मिलता है। परंतु दान-दान किये धन ना घटै, नदी ना घटै नीर। पुण्य विरले ही लोगोंमें देखा जाता है। अथर्ववेद अपनी आँखों देखिये, यों कथि गये कबीर॥ दान-महिमा (श्रीगोविन्दप्रसादजी चतुर्वेदी, शास्त्री, वरिष्ठ धर्माधिकारी) सनातन धर्ममें धर्मके आठ प्रकार कहे गये हैं-१. युधिष्ठिरसे प्रश्न किया कि 'किंस्विन्मित्रं मरिष्यतः' अर्थात् मृत्युके समीप पहुँचे हुए पुरुषका मित्र कौन है? इसपर यज्ञ करना (कराना), २. अध्ययन (अध्यापन), ३. दान, ४. तप, ५. सत्य, ६. धृति (धैर्य), ७. क्षमा और ८. युधिष्ठिरने कहा—'दानं मित्रं मरिष्यतः' (महा० वन० ३१३।६४) अर्थात् मरनेवाले मनुष्यका मित्र 'दान' है। लोभराहित्य। इज्याध्ययनदानानि तपः सत्यं धृतिः क्षमा। दान, भोग तथा नाश-ये धनकी तीन गतियाँ कही अलोभ इति मार्गोऽयं धर्मस्याष्टविधः स्मृतः॥ गयीं हैं, जो न दान देता है, न उपयोग करता है, उसके इसमें दान देना एक विशिष्ट धर्म कहा गया है और धनकी तीसरी गति (नाश) ही होती है-लाख काम छोडकर दान देना चाहिये-दानं भोगो नाशस्तिस्रो गतयो भवन्ति वित्तस्य। शतं विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्। यो न ददाति न भुङ्के तस्य तृतीया गतिर्भवति॥ धनको देवकार्यमें अथवा ब्राह्मणोंको दानमें अथवा लक्षं विहाय दातव्यं कोटिं त्यक्त्वा शिवं भजेत्॥ दानसे यश एवं कीर्तिकी प्राप्ति होती है। अत: दान भाई-बन्ध्-कुटुम्बियोंकी सहायतामें लगाना चाहिये, अन्यथा कृपणतासे छिपाये रखनेवालेका धन या तो अग्निमें जल देकर यशस्वी बननेका प्रयत्न करना चाहिये-जाता है या चोर चुराकर ले जाते हैं अथवा राजा छीन लेता दाने तपसि शौर्ये च यस्य न प्रथितं यश:। है। अतः धनका सदुपयोग करते रहना चाहिये— विद्यायामर्थलाभे च मातुरुच्चार एव सः॥ दान मरणोपरान्त भी मित्रका कार्य करता है, दानसे न देवाय न विप्राय न बन्धुभ्यो न चात्मने। अर्जित पुण्य मृत्युके बाद भी साथ रहता है। यक्षने राजा कृपणस्य धनं याति वह्नितस्करपार्थिवै:॥

 * दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् 355 जहाँ धनका न तो दान दिया जाता है और न उपभोग सदासे प्रचलित है। किया जाता है, उस धनसे क्या लाभ है? त्रिपाद-पथ्वीके दानसे भगवान वामनने बलिको 'धनेन किं यो न ददाति नाश्नुते।' पाताललोकका राजा बना दिया और उसकी दानवृत्तिसे जिसका जीवन, दान और भोगसे रहित है, वह प्रसन्न होकर उसके यहाँ भगवान गदाधर द्वारपाल बन लुहारके भाथेके समान साँस लेता और छोडता हुआ गये। अत: दानकी बडी महिमा है। मृतवत् ही है— दिये गये दानका फल अवश्य प्राप्त होता है, परंतु दानकी वस्तु परिश्रमसे उपार्जित होनी चाहिये एवं दानग्रहीता दानभोगविहीनाश्च दिवसा यान्ति यस्य वै। स कर्मकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति॥ सुशील होना चाहिये-इन सब वचनोंसे दान देनेकी प्रेरणा प्राप्त होती है, धान्यं श्रमेणार्जितवित्तसंचितं विप्रे सुशीले च प्रयच्छते यः। अत: दान देकर धर्म अर्जन करना चाहिये। दानकी परम्परा वसुन्धरा तस्य भवेत् सुतुष्टा धारां वसूनां प्रति मुञ्चतीव॥ सुष्टिके प्रारम्भसे प्रचलित है, भगवानुने स्वयं मनुष्यावतार (महा० वन० ४१।२००)

सृष्टिके प्रारम्भसे प्रचलित है, भगवान्ने स्वयं मनुष्यावतार (महा॰ वन॰ ४१।२००) धारणकर दान-धर्मका आदर्श प्रस्तुत किया। भगवान् अर्थात् जो परिश्रमसे उपार्जित और संचित धन-श्रीरामचन्द्रजीने अपने राज्याभिषेकके समय ब्राह्मणों एवं धान्यको सुशील ब्राह्मणको दान करता है, उसके ऊपर याचकोंको खूब दान दिया— वसुन्धरादेवी अत्यन्त सन्तुष्ट होती हैं और उसके लिये विग्रन्ह दान बिबिध बिध दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥ धनकी धारा-सी बहा देती हैं।

स्मरणीय है, यह पृथ्वी सात स्तम्भोंके सहारे टिकी

दानग्रहीताको दानकी वस्तु प्राप्त होती है, वहीं दानदाताको है, उनमें दानदाता भी एक स्तम्भ है— दानके अनुरूप पुण्यफलकी प्राप्ति होती है। गोभिर्विप्रैश्च वेदैश्च सतीभिः सत्यवादिभिः। दान देनेकी परम्परा देवों, असुरों तथा मानवोंमें अलुब्धेर्दानशीलैश्च सप्तभिर्धार्यते मही॥

दान-धर्मकी बडी महिमा है, दान देनेपर जहाँ

भगवान्द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग

(स्वामी डॉ० श्रीविश्वामित्रजी महाराज)

शास्त्रोंमें दानकी अपार महिमाका प्रतिपादन है। दान यदि कर्तृत्वाभिमानसे रहित होकर दिया जाय, तो अन्त:करण पवित्र होता है, इसीलिये दानको आत्मशुद्धिका श्रेष्ठ

साधन बताया गया है। किसी अभावग्रस्तको—जरूरतमन्दको उसके अभाव या आवश्यकताकी आंशिक अथवा पूर्णपूर्तिके

लिये कुछ देना दान कहलाता है। इसका दयासे,

संवेदनशीलतासे तथा उदारतासे गहरा सम्बन्ध है। देनेका सामर्थ्य होनेपर भी हरेकका स्वभाव देनेका नहीं होता।

गाँवमें तोतोंको यह बोलना सिखाया जाता था-

'लटपट पंछी चतुर सुजान, सब का दाता श्री भगवान।' रहीमजी किसी जरूरतमन्दको देकर सिर झुका लेते।

किसीने कारण पूछा? कहा-देनहार कोउ और है देत रहत दिन रैन। लोग भरम मो पै करें या ते नीचे नैन॥

> कबीर साहिबकी वाणी भी ऐसा ही सन्देश देती है— न कुछ किया न कर सका न कुछ किया शरीर।

जो कुछ किया सो हरि किया कहत कबीर कबीर॥

(8)

भगवान् अपनी दयालुताके कारण जीवको सदा कुछ

देते ही रहते हैं और समर्थ मनुष्यको यह सन्देश देते हैं कि तुम भी लाचार और विवश प्राणियोंको तन-मन और

धनसे कुछ देकर उनके इस कार्यमें सहभागी बनो, यहाँ इसी भाव-बोधकी कुछ घटनाएँ प्रस्तुत हैं—

बहुत समय पहलेकी बात है—एक सन्त अन्य साथियोंके साथ बदरीनाथजीके दर्शनार्थ जा रहे थे। मार्गमें

पाचन बिगड गया, कई बार मल-त्यागके लिये रुकना पड़ता। साथियोंको असुविधा होने लगी, धीरे-धीरे वे साथ छोड़ आगे बढ़ने लगे। सन्त प्रतिदिन दुर्बल होते गये।

અનેતા dying Discord Server https://dsc.pg/dharma.નાન્MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha

होते हुए भी रामनाम-स्मरण सतत चलता रहा। मन-ही-

मन प्रभुसे अरदास की-'यदि यही तेरी इच्छा है तो यही

पूर्ण हो, रोग-रूपमें तेरा हार्दिक स्वागत है।' फरियाद करते-

करते आँख लग गयी। अगले दिन सुबह ही एक वृद्ध हाथमें दही-भातका कटोरा और दूसरेमें दवाईकी पुडिया लिये

पधारे, बोले—'यह खा लो, जल्दी ठीक हो जाओगे।' सन्तने वृद्धकी ओर ध्यानसे देखा, पहचाननेकी कोशिश की,

पर निष्फल। भारी कमजोरीके कारण दृष्टि धुँधली थी।

दवा-दही-खिचड़ी खा ली। वृद्धने कहा—'कल फिर आऊँगा, तीन दिनकी अवधि है, पूरा कर लो तो पूर्णतया स्वस्थ हो जाओगे।' सन्त निरन्तर राम-राम भी जपते रहते

तथा सोचते भी रहते—यहाँ सेवा-दान करनेवाला कौन है यह ? आखिर पूछ ही लिया—'कौन हैं आप ?''पहले ठीक

हो जाओ, फिर पूछना-लो, दवाई खा लो।' 'नहीं, पहले बताओ।' 'न बताऊँ तो ?' 'मैं दवाई न खाऊँ तो ?' 'मत खाओ, मैं जाता हूँ,' ऐसा कहकर वृद्ध चले गये। थोड़ी

देर बाद लौट आये कहा, 'तुम दवा खा लो तो मैं जाऊँ।' सन्तने कहा—'आप मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो मैं दवा खाऊँ।' मधुर वार्तालापपर वृद्ध मुसकराये और चतुर्भुजरूपमें प्रकट

हो गये। सन्त श्रीचरणोंपर मस्तक नवाकर बोले, 'इतने सुनसान, निर्जन वनमें आपके अतिरिक्त कौन आ सकता

भक्तोंको सेवा-दान देते हैं?' 'प्रिय भक्त! जब कोई मिल जाता है, तो उसके मनमें सेवाकी प्रेरणा भर देता हूँ, परंतु यदि कोई नहीं मिलता तो स्वयं सेवाके लिये उपस्थित हो

है ? हे प्रभृ! क्या आप स्वयं दौड-दौडकर इसी प्रकार

जाता हुँ। 'मनमोहक, रोचक वार्तालाप, जीवनको परमानन्दसे परिपूरित करके प्रभु अन्तर्धान हो गये। परमेश्वरके इस आश्वासनसे तथा सन्त रहीम एवं कबीरके उक्त कथनोंसे

 * दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− २४२ ********************** ******************* तो थैलेमें क्या है? ओ! स्वादु भोजन!' दूसरेने कहा— दाता एक राम, भिखारी सारी दुनिया। 'पुलिसका षड्यन्त्र है या किसी व्यक्तिका?' पेड़पर व्यक्ति नाम एक औषधि, दुखारी सारी दुनिया। दिखा, निश्चय हुआ, इसीकी चाल है। नीचे उतरनेको कहा, राम एक देवता, पुजारी सारी दुनिया॥ पूछा-क्या भोजन तूने रखा है? 'नहीं' जबरदस्ती नीचे (?) उतारा, 'ले, भोजन खा।' 'नहीं खाऊँगा।' डाकुओंने सेठको पुरानी बात है, एक सेठ थे; नाम था मलूकचन्दसेठ। थप्पड़-मुक्के मारे, भोजन खाना पड़ा। स्वीकारते हुए मलूकचन्दकी कोठीके पास एक मन्दिर था। एक रात्रि कहा-'मान गये मेरे बाप!' चाहे किसी रूपमें खिला-किसी विशेष उत्सवपर देरतक भजन-कीर्तन होता रहा, पत्नी, भक्त या चोरोंके रूपमें — खिलानेवाला तू ही है। भागा सेठ रात्रिभर सो न सके। प्रात: पुजारीको खूब डाँटा-पुजारीके पास धन्यवाद किया और कहा—पुजारी! जिसने 'नींद न आये तो दिनको कमाना कैसे? न कमाये तो खाये खिलाया, उसे खोजूँगा। सेठ मलूकचन्द बन गये सन्त कहाँ से ?' 'भगवान् बैठे हैं खिलानेवाले सेठजी! तब क्या मलुकदास। इन सन्तके दर्शनमात्रसे कइयोंके जीवन बदले, चिन्ता? निमित्त होता है पतिका कमाना, पत्नीका भोजन सत्संगसे हजारों तर गये। गाया करते—'कहत मलूकदास, बनाना, सबका दाता-पालनहार तो वह 'राम' ही है।''क्या छोड़ तैं झूठी आस, आनँद मगन होइ कै, हिर गुन गाव वह एक-एकको आकर खिलाता है? हम नहीं खाते रे*॥'* अपना अमूल्य अनुभव गुनगुनाया करते— उसका दिया, स्वयं कमाके खाते हैं। यदि वह खिलाता अजगर करे न चाकरी, पंछी करे न काम। है तो उसे बोलो-मुझे खिलाके दिखाये। यदि २४ घण्टेके अन्दर-अन्दर न खिलाया तो तुम्हारी गरदन कटवा दूँगा।' दास मलूका कह गये, सबके दाता राम॥ पुजारी आँखें मुँद परमेश्वरसे करबद्ध प्रार्थना करते हैं-इसका अर्थ यह नहीं कि हम पुरुषार्थ न करें। 'हे राम! अपने नामकी एवं मेरी लाज रखना।' कहते हैं— अजगर भी भोजन तलाश करता है, पंछी भी दाना चुगने भगवान् श्रीकृष्णको एकबार भोजनके लिये देरी हो गयी। जाता है, पर उतना ही ग्रहण करता है, उतना ही एकत्रित रुक्मिणीने कारण पूछा? कहा—'कोई एक भोजन खानेवाला करता है, जितना मिल जाय तथा जितना आवश्यक हो। रह गया था।' 'क्या आपने सबका पेट भरनेकी जिम्मेदारी यह तो मनुष्य ही है, जिसने अपनी झोली फैला रखी है ले रखी है?' 'हाँ' रुक्मिणीको विश्वास न हुआ, एक कि जीवनभर भरता रहता है तो भी नहीं भरती—लोभके कीड़ा पकड़कर उसे अपनी सिन्दूरकी डिब्बीमें बन्द कर कारण— दिया। अगले दिन प्रभु भोजन करने लगे तो पूछा—'क्या सब जग मारा लोभ ने द्रोह द्वेष ने जान। सबको खिला आये?' 'हाँ, खिला आया'—द्वारकाधीशने इन्हीं को मारे जो जन वही सूरमा मान॥ उत्तर दिया। पर क्या तुम्हें विश्वास नहीं? 'नहीं' डिबिया (भक्तिप्रकाश) उठा लायी, खोली देखा तो कीड़ेके मुखमें चावलका लोभ-जैसी दुर्जेय वृत्तिको शिथिल करने तथा इसपर दाना। चावलका वह दाना डिबिया बन्द करते समय विजय प्राप्त करनेका सर्वश्रेष्ठ साधन है 'दान'। रुक्मिणीजीके तिलकसे डिबियामें जा पड़ा था। भगवान् सन्त मलूकदासकी गाथा एवं अन्य सन्तोंके कथन मुसकराये कहा—'रुक्मिणी! जो केवल मुझपर निर्भर है, भलीभाँति स्पष्ट करते हैं कि भगवान् ही एकमात्र दाता हैं। वे जिससे दिलवाना चाहें, वही देगा और जिसको उसके भोजनका क्या, सब कुछका दायित्व मुझपर है।' सेठ मलूकचन्द घोर जंगलमें विशाल पेड़की ऊँची दिलवाना चाहें, उसीको मिलेगा। यह तथ्य निम्नलिखित दृष्टान्तसे भी पुष्ट होता है-डालपर जा बैठा। कुछ समय बाद एक यात्री आया, थोड़ा आराम किया वृक्षके नीचे, चलते समय अपना थैला भूल (3) मध्य भारतके सुलतान निजामुद्दीनके लिये प्रसिद्ध गया। थोड़ी देर बाद पाँच डाकू आये। एकने कहा—'देखो

अङ्क $]$ $*$ भगवान्द्वारा प्रदत्त दानके कुछ रोचक प्रसंग $*$ २४३	
<u>*************************************</u>	
था कि कोई उसके यहाँसे खाली हाथ न लौटता। दाता	(8)
होनेका अभिमान चरम सीमापर। लोग प्रशंसामें कहते—	एक गृहस्थका नियम था कि किसी महात्माको
'जिसे न दे भगवान् उसे देता है सुलतान।' इस	खिलाकर ही स्वयं खाते। एक दिन जो महात्माजी आये,
चापलूसीसे प्रसन्न होकर सुलतान इतना देता कि याचकको	उन्होंने भोजनसे पूर्व गोग्रास नहीं रखा, भगवान्को भोग
दुबारा माँगना न पड़ता। बाबा मस्तराम रोज भिक्षा	भी नहीं लगाया। गृहस्थके याद दिलानेपर साधुने कहा—
माँगकर खाते, किसीने कहा—'बाबा! एक बार सुलतानसे	'बहुत दिनोंतक उसे ढूँढ़नेकी चेष्टा की, अब समझमें
माँगो और रोज-रोज माँगनेका चक्कर खत्म करो।'	आया कि भगवान् है ही नहीं। अत: मैं भोगादि नहीं
बस, उसके द्वारपर इतना ही कहना— 'जिसे न दे	लगाता।' गृहस्थने परोसी हुई थाली ली और कहा—
भगवान् उसे देता है सुलतान।'	'आप-जैसे नास्तिकको खिलाकर मैं पाप-संग्रह नहीं
बाबा जोरसे ठहाका मार हँसे और कहा—पागल है	करना चाहता।' उसी समय आकाशवाणी हुई—'अरे! यह
वह, घमण्डी कहींका, वह है कौन किसीको देने वाला?	तो बहुत समयसे मुझे नहीं मानता, पर अबतक मैं इसे रोज
अरे! जिसे न देते भगवान्, उसे क्या देगा, कैसे देगा	भोजन खिलाता रहा और तुम मुझे माननेवाले होकर एक
सुलतान ? बात सुलतानतक पहुँची, बुरी लगी, योजना	दिन भी इसे नहीं खिला पाये। यह कैसी नासमझी है?'
वनायी। सुलतान एक ग्रामीणके वेशमें बैलगाड़ीमें तरबूज	(५)
भरकर उसी मार्गपर बैठ गया जिधरसे बाबा नित्य	एक चोरने चोरी की, कुछ न मिला, भारी वर्षा, पुलिस
निकलते। जैसे ही बाबा दिखे, झटसे एक बढ़िया तरबूज	पीछा कर रही है। भागता-भागता चोर एक सन्त-कुटीरपर
बाबाको दे दिया। वापस लौट, ध्यानमें बैठ गये बाबा। एक	पहुँचा, दस्तक दी। भीतरसे पूछा—'कौन है?' सन्तके साथ
यात्री आया, उसके पास भी तरबूज था, पर छोटा।	झूठ नहीं बोलना चाहिये, अत: सच-सच कहा—'चोर हूँ।'
परिवारवाला था, अत: मनमें विचार आया, बाबा अकेले	'भाग यहाँसे।' 'बाबा! क्या यह सच बोलनेका दण्ड है?'
इतने बड़े तरबूजका क्या करेंगे? छोटा ले लें। बाबा तुरंत	'कुछ भी समझो, मैं कुटियामें घुसने नहीं दूँगा।' पुलिस
बोले—'भाई! यह तरबूज आप ले जाओ, छोटा इधर रख	पीछे लगी है, चोर रोने लगा, तभी आकाशवाणी हुई—
जाओ। मैं अकेला, तुम अनेक।' बाबाने तरबूज काटा अति	'तुम्हें आज पता चला, मुझे तो कबसे पता है कि यह चोर
मीठा। उधर घर जाकर यात्रीने भी काटा, तरबूज भीतर	है, फिर भी मैंने इसे अपने संसाररूपी घरसे निकाला नहीं,
हीरे-मोतियोंसे भरा हुआ था। अति प्रसन्न; अकस्मात् पूँजी	धरतीपर रहने दे रहा हूँ, तू एक रात रख लेता तो तेरा
पाकर धनवान् हो गया। बाबाकी जय, सब उनकी कृपाका	क्या बिगड़ जाता? मैं कबसे इसे सपरिवार पेटभर भोजन
प्रताप है। अगले दिन बाबा पुन: भिक्षाके लिये निकले।	दे रहा हूँ।' इसका अर्थ स्पष्ट है—राम देते समय आस्तिक-
देखकर सुलतान चिकत—'इतना धन पाकर अब भीख	नास्तिक, अच्छा-बुरा, पापी-पुण्यात्मा है, नहीं देखते,
माँगनेकी क्या जरूरत?''कौन-सा धन?''वही जो कल	प्रेमपूर्वक सबको बाँटते हैं। ऐसा प्रेम यदि हमारे हृदयमें
तरबूजमें भरकर दिया था।' बाबा खूब जोरसे हँसे बोले—	भी हो तो प्रभु राम हमपर अति प्रसन्न हों।
'सुलतान! जिसे न दे भगवान् उसे क्या देगा सुलतान?	(&)
घमण्ड छोड़ो, देनेवाला मात्र ईश्वर है, सुलतानकी क्या	बाल्यावस्थाके सखा सुदामा अपने प्रिय मित्र
हस्ती कि वह बिना रामेच्छा किसीको कुछ दे दे? यदि	द्वारकाधीशके दर्शनार्थ पधारे हैं। दरिद्र हैं, अत: द्वारपाल
तुम देते हो तो रामेच्छासे और जिसके लिये दिया है रामने	भगवान् श्रीकृष्णसे मिलनेसे रोकता है, परंतु 'सुदामा' शब्द
उसीके पास जाता है।' सारी घटना सुनायी। सुलतानके	सुनते ही प्रभु भागे और उन्हें अपने साथ लाकर
मुखसे सहसा निकला ' <i>दाता रामकी जय हो।'</i>	सिंहासनपर आसीन कर लिया। पूछा—'भाभीने क्या भेजा

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् िदानमहिमा-

मित्रकी दरिद्रताका भक्षण कर लिया। मस्तकपर लिखे कुलेख-'श्रीक्षय' अर्थात् दारिद्र्यको सुलेखमें बदल दिया—'यक्षश्री' कर दिया। 'सुदामा! तेरे पास इतनी पूँजी-सम्पत्ति होगी,

है मेरे लिये?' रानियाँ उपहास करें—यह क्या लायेगा?

बगलमेंसे पोटली छीन, उसमेंसे तन्दुल (चिउड़े) चबाकर

जैसी द्वारकापुरी। कैसे विलक्षण दाता हैं श्रीभगवान्! (9) यह सर्वविदित है, सर्वमान्य है तथा सभीका अनुभव

जितनी कुबेरके पास।' सुदामापुरी भी वैसी ही भव्य एवं सुन्दर

भी है कि बन्देके देनेसे अल्पकालिक राहत तो मिलती है,

परंतु स्थायी शान्ति तो तभी मिलती है, जब परमात्मा अपनी मंगलमयी कृपासे स्वयं देते हैं। इस रोचक एवं सुन्दर आख्यायिकासे यह यथार्थता भलीभाँति निरूपित होती है-

एक मारवाडी सेठका विपुल सम्पत्ति छोडकर निधन हुआ। इकलौता पुत्र दुराचारी निकला, कुव्यसनों एवं कुकृत्योंमें

भोजनके लिये भी कुछ न बचा। एक दिन पत्नीने कहा-'स्वामिन्! कुछ मैं करती हूँ, कुछ आप करें तो दो समयकी रोटी हमें मिल जाया करेगी।' स्त्रीने सूत कातने, आटा पीसने

सारा धन बरबाद कर दिया। कंगाल-सा हो गया, घरमें

एवं धान कूटनेका काम शुरू किया और पति जंगलसे घास-लकड़ी काटने तथा मजदूरी करने लगा। कड़ी मेहनतका तिनक भी अभ्यास नहीं था, एक दिन थका-माँदा, भाग्यके

ऐसे क्रूर परिवर्तित हथकण्डे देखकर फूट-फूटकर रोने

रखी माँने, उठायी और सीधे घर। पत्नी घर नहीं, थैली रखकर उसे बुलाने गया। देर लगी, पड़ोसिन उठाकर ले गयी। पुनः खाली, चौथे दिन जंगलमें घास काटते देख लक्ष्मीने कहा—'हे प्रभो! मैं हार गयी, अब आप ही कुछ करें।' भगवान्ने ताँबेके दो सिक्के फेंके, युवकने माथेपर लगाये। घर लौटते समय मछुआरेसे एक पैसेकी मछली खरीदी। एक पेड़पर चढ़ा, सूखी लकड़ीकी टहनी काटने लगा, तो एक घोंसला दिखा, उसमें हार-सहित अपनी पगड़ी दिखी, उठायी, प्रसन्नतापूर्वक घर पहुँचा, ऊँचे स्वरसे पुकारा—'सुलक्षणी, सुलक्षणी! जो खोई थी, मिल गयी।' पड़ोसिनने आवाज सुनी, अपमान-दण्डसे भयभीत, मिलनेके

लगा। उसी समय श्रीभगवान् लक्ष्मीजीके संग विचरते हुए

निकले। बिलखते हुए युवकको देख लक्ष्मीजीने कहा-'प्रभु! देखो, मेरे बिना जीवका कैसा हाल होता है, जब पास थी, तब क्या था, अब नहीं हुँ, तब क्या है?' श्रीनारायणने कहा—'नहीं लक्ष्मी! ये दुर्दशा तेरे कारण नहीं, मेरी कृपा सिरसे उठ जानेके कारण है। यदि तू नहीं मानती तो इसे पुन: धनी बनाकर देख ले।' लक्ष्मीने बोझ उठाये युवकके आगे दो लाल (माणिक) फेंके, युवकने उन्हें जेबमें डाला, रास्तेमें प्यास बुझानेके लिये नदी-किनारे झुका, लाल पानीमें गिर गये। खानेवाली वस्तु समझ मछली उन्हें निगल गयी। खाली हाथ घर, पत्नीसहित पश्चात्ताप। अगले दिन पुनः जंगलमें, आज माँ लक्ष्मीने मोतियोंकी माला फेंकी, उठाकर पगड़ीमें रखी, स्नानके लिये नदीमें उतरते समय पगडी उतारकर रख दी, हारसहित पगडी चील उठाकर उड गयी। पुन: खाली हाथ घर। तीसरे दिन फिर वनमें, आज अशर्फियोंकी थैली

बहाने आयी और थैली वापस रख गयी। दोनों प्राणी अपार हर्षित, भोजनकी तैयारी, मछली काटी, पेटसे लाल निकले। आनन्द-ही-आनन्द छा गया। परमेश्वर-कृपाका चमत्कार। मिलता है, धन-भूमि एवं अन्य पदार्थ मिलते हैं। संसारी दान तो दे सकते हैं, परंतु दीनता-दरिद्रता नहीं मिटा सकते, जन्म-जन्मकी भूख-प्यास नहीं मिटा सकते, वह राम-कृपासे सब

संसारसे तो भीख मिलती है, वस्त्र मिलते हैं, भोजन

कुछ दे सकनेवाले उस दाताके देनेसे ही मिटेगी। अतएव

माँगना है तो भगवान्से माँगो, अन्यत्र माँगोगे तो माँगनेकी आदत पड़ जायगी, भिखमंगे बन जाओगे। भीख माँगना व्यवसाय

बन जायगा। प्रभुसे माँगोगे तो माँगनेकी इच्छा ही मिट जायगी।

* दानके प्रेरक-प्रसंग*** अङ्क]

दानके प्रेरक-प्रसंग

१. अहंकारका दान एक महात्मा किसी धार्मिक राजाके महलमें पहुँचे।

उन्हें देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुए और बोले—'आज मेरी इच्छा है कि मैं आपको मुँहमाँगा उपहार दूँ।' महात्माने कहा 'आप स्वयं ही अपनी सर्वाधिक प्रिय वस्तु मुझे दान कर दें,

में क्या माँगूँ ?' राजाने कहा—'में आपको राजकोष अर्पित करता हूँ। महात्माने कहा—'वह तो प्रजाजनोंका है, आप तो

मात्र संरक्षक हैं।' राजाने दूसरी बार कहा—'महल-सवार आदि तो मेरे हैं, आप इन्हें ले लो।' महात्मा हँस पड़े और

बोले, 'राजन्! आप क्यों भूलते हैं, यह सब प्रजाजनोंका ही है, आपको कार्यकी सुविधाके लिये दिये गये हैं।' अब राजाने

कहा—'मैं यह शरीर दान कर दूँगा, यह तो मेरा है।' महात्माने कहा-'यह भी आपका नहीं है, एक दिन आपको इसे भी छोडना होगा। यह पंचतत्त्वमें विलीन हो जायगा, इसलिये इसे

आप कैसे दे पायेंगे ?' अब राजा चिन्तामें पड गया। महात्माने कहा—'राजन्! मेरी एक बात मानें। आप अपने अहंकारका दान कर दें। अहंकार ही सबसे बडा बन्धन है।' अहंकार दानमें देकर राजा दूसरे दिनसे अनासक्त योगीकी भाँति रहने

लगा, उसके जीवनमें नये आनन्दकी वर्षा होने लगी। २. सबसे बड़ा दान

पट्टन साम्राज्यके महामन्त्री उदयनके पुत्र बाहड

शत्रुंजय तीर्थका पुनरुद्धार कराना चाहते थे ताकि दिवंगत पिताकी अपूर्ण इच्छा पूरी कर सकें। तीर्थोद्धारका कार्य प्रारम्भ हुआ तो जनताने भी मन्त्रीसे अनुरोध किया, 'आप समर्थ हैं, लेकिन हमें भी इस पुण्यकार्यमें भाग लेनेका

अवसर प्रदान करें।' जनताकी प्रार्थना स्वीकार हो गयी। सबने अपनी-अपनी शक्ति और श्रद्धांके अनुसार धन दिया। धीरे-धीरे तीर्थका उद्धार हो गया। अन्तमें आर्थिक सहायता देनेवालोंकी नामावली घोषित की गयी। नामावली देखकर लाखों मुद्रा

केवल सात पैसेकी सहायता दी थी। मन्त्रीने सम्पन्न लोगोंका रोष लक्षित कर लिया और सहज भावसे बोले—

'भाइयो! मैंने स्वयं और आप सबने तीर्थके उद्धारमें जो

देनेवाले अत्यन्त चिकत हुए; क्योंकि सहायता देनेवालोंमें भीम नामक एक मजदुरका नाम सबसे पहले था। उसने लेकिन भीम, पता नहीं कितने दिनोंके परिश्रमके बाद ये सात पैसे बचा पाया था, उसने तो अपना सर्वस्व दान कर दिया है, अत: मेरे विचारसे उसका दान ही सबसे बड़ा

दान है। इसलिये यह निर्णय करनेमें मुझसे भूल तो नहीं हुई?' निर्णयसम्बन्धी इस विवेचनके बाद कोई ऐसा नहीं था, जो आपत्ति उठा सकता।

३. दानका फल

दुर्बलताके कारण चल नहीं पाता। कविके सुकुमार हृदयसे

यह देखा नहीं गया। आज वे भी पैदल ही थे, परंतु उस

पुरुषके पास जाकर उन्होंने अपने जूते उतार दिये और

बोले—'तुम इन्हें पहन लो।' कभी नंगे पैर चलनेका

अभ्यास नहीं था, कविको लगा कि वे मार्गमें ही मूर्च्छित

होकर गिर पडेंगे। उनके पैरोंमें शीघ्र ही छाले पड गये,

गर्मीके दिन थे, धूप तेज थी, पृथ्वी जल रही थी, महाराज भोजके राजकवि किसी आवश्यक कार्यको

सम्पन्न करके नगरकी ओर लौट रहे थे. मार्गमें उन्होंने देखा एक दुर्बल मनुष्य नंगे पैर लड्खड़ाता हुआ चल रहा है। उसके पैरोंमें सम्भवत: छाले पड़ गये थे, बार-बार दीर्घ श्वास लेता और दौडनेका प्रयत्न करता, किंतु अपनी

परंतु वे एक दु:खी प्राणीकी सेवा करके प्रसन्न थे। उसी समय राजाके हाथीको महावत उधरसे लेकर आ रहा था। राजकविको वह पहचानता था, उसने उन्हें हाथीपर बैठा लिया। संयोग ऐसा हुआ कि उसी समय राजा भोज भी नगरमें निकले थे। नगरमें प्रवेश करते ही कवि और

नरेशकी भेंट हो गयी। नरेशने हँसते हुए पूछा—'आपको कुं चारियां इंग में इहमार्थ इनिस्पान की साम कि द्वारा के प्राप्त के प्राप्त

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् दानमिहमा− ३४६ ************ 'राजन्! किसी जरूरतमन्दके लिये मैंने अपने पुराने जूते यही मेरी एकमात्र सम्पत्ति है। कृपाकर इसे आप स्वीकार उतार दिये, उस पुण्यसे इस हाथीपर बैठा हूँ। जिस द्रव्यका करें। गौतम बुद्धने अपनी अंजलिमें वह छोटा-सा आम दान नहीं हुआ, उसे तो व्यर्थ ही नष्ट हुआ समझें।' इस प्रकार प्रेम और श्रद्धासे रख लिया, मानो कोई बहुत कविकी यह वाक्पटुता उन्हें अच्छी लगी। उदार नरेशने बड़ा रत्न हो। वृद्धा सन्तुष्ट भावसे लौट गयी। मगधके हाथी कविको ही दे दिया। राजा बिम्बसार यह देखकर चिकत रह गये। उन्हें समझमें नहीं आया कि भगवान् बुद्ध वृद्धाका आम प्राप्त करनेके ४. दानका महत्त्व गौतम बुद्धने मगधकी राजधानीमें कई दिन उपदेश लिये आसन छोड़कर नीचेतक हाथ पसारकर क्यों आये? दिये। जब वे मगधसे आगे बढने लगे तो कई भक्तगण उन्होंने भगवान् बुद्धसे पूछा-भगवन्! इस वृद्धामें और उन्हें भेंट देनेके लिये आये। एक वृक्षके नीचे बने हुए ऊँचे इसकी भेंटमें ऐसी क्या विशेषता है? बुद्ध मुसकुराते हुए चब्तरेपर शान्तचित्त बुद्ध बैठ गये। वे हर भक्तकी भेंट बोले-राजन्! इस वृद्धाने अपनी सम्पूर्ण संचित पूँजी मुझे भेंट कर दी है, जबकि आप लोगोंने अपनी सम्पूर्ण सम्पत्तिका स्वीकार कर रहे थे, उसी समय धोती लपेटे एक वृद्धा आयी। उसने काँपती हुई आवाजमें कहा—भगवन् मैं एक केवल एक छोटा भाग ही मुझे भेंट किया है, वह भी गरीब बुढ़िया हूँ, मेरे पास आपको भेंट देनेके लिये अधिक दानके अहंकारमें डूबे हुए आप अपनी बग्घी-घोड़ेमें चढ़कर कुछ भी नहीं है, मुझे आज एक छोटा-सा आम मिला, आये और देखिये उसके मुखपर कितनी करुणा, कितनी तभी पता चला कि तथागत आज दान ग्रहण करेंगे। अत: नम्रता थी। युगों-युगोंके बाद ऐसा दान मिलता है राजन्! में वह आम आपके चरणोंमें भेंट करने आयी हूँ। भगवन्! [प्रेषिका—सुश्री उमा ठाकुर] प्रेरक-प्रसंग-दानकी साधना किया। सेठजीने जब अपनी राशिका इस तरह दुरुपयोग एक नगरमें एक सन्त रहते थे। वे प्रसन्न रहते और सात्त्विक जीवन जीते थे। अपनी जीविका चलानेके लिये होते देखा तो उन्हें बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने पूरी बात टोपियाँ सिलकर बेचते और जो भी आमदनी होती, सन्तको आकर बतायी। तब सन्तने उन्हें अपनी आमदनीका उसमेंसे एक पैसेकी बचत करके दान कर दिया करते थे। एक पैसा देकर कहा—जाओ, इसे किसी आवश्यकतावालेको सन्तकी कुटियाके सामने ही एक सेठजी रहते थे। दे देना और कल अपनी बातका उत्तर लेकर आना। सन्तको इस तरह दान करते देख सेठजीके मनमें भी एक बात सेठजीने वह एक पैसा भिक्षा माँग रहे एक व्यक्तिको दे आयी और उन्होंने भी अपनी कमाईसे कुछ राशि निकालकर दिया और परिणाम जाननेके लिये वे उत्सुकतासे उसके अलग रखनी शुरू कर दी। जब कुछ राशि जमा हो गयी तो पीछे चल दिये। उन्होंने देखा कि उस व्यक्तिने अपनी उन्होंने सन्तसे जाकर पूछा—'महाराज! मैं राशिका क्या झोलीसे एक चिड़िया निकाली एवं उसे खुले आसमानमें करूँ?' सन्त बोले—'इसे दीन-दु:खियोंको बाँट दो।' छोड़ दिया और उस एक पैसेसे चने खरीदकर खाये। सन्तके कहे अनुसार सेठजीने वह राशि एक गरीब सेठसे रहा न गया, आगे बढकर उन्होंने उस भिखारीको दुर्बल व्यक्तिको दे दी। सेठजीको आशीर्वाद देता हुआ वह रोका और पूछा 'तुमने ऐसा क्यों किया?' वह भिखारी चला गया। सेठजीने वह दान सहज रूपसे नहीं दिया था, बोला—'में भूखा था, आज कुछ भिक्षा न पाकर में केवल सन्तको दान देते देखकर उनके मनमें ऐसी भावना चिड़िया पकड़कर लाया था कि भूनकर खा लूँगा, लेकिन जाग्रत् हुई थी। इसलिये सेठजी उस व्यक्तिके पीछे यह जब मुझे एक पैसा मिल गया तो मैंने सोचा कि मैं हत्या देखने चल पडे कि आखिर वह व्यक्ति मेरे दिये हुए क्यों करूँ?' यह पूरी घटना भी सेठजीने सन्तको सुना दी और दोनों घटनाओंका समाधान जानना चाहा। सन्तने पैसोंको किस तरह खर्च करता है। सेठजीने देखा कि उस व्यक्तिने उन रुपयोंको गलत वस्तुओंके खरीदनेमें खर्च कहा—'वत्स! महत्ता केवल दान देनेकी नहीं होती। हमने

* दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान * अङ्क] जो दान दिया है, वह किस साधनासे प्राप्त किया है, यह गया, उसने उस धनका उचित उपयोग किया। दान करना भावना भी धनके साथ जुड़ जाती है। तुम्हारी अनीतिकी एक पुण्य कार्य है। दान वह है, जो दानदाता विनम्र और कमाई और बिना परिश्रमका पैसा पाकर उस व्यक्तिने उसे नि:स्वार्थ होकर देता है। अपने यशके लिये दिया गया अनीतिके कार्योंमें लगा दिया और इसमें तुम्हें भी उसका दान, दान न होकर एक व्यवसाय होता है।' (मानस भागीदार होना पड़ेगा और मेरा मेहनतका पैसा जिसके पास वन्दन) [प्रेषक—श्रीजगदीशचन्द्रजी सोनी] दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान (श्रीशिवकुमारजी गोयल) भारतीय सनातन संस्कृति त्याग, सेवा, सहायता और (8) परोपकारको सर्वोपरि धर्म निरूपित करती रही है, वेदमें विद्यादान न करनेसे ब्रह्मराक्षसकी योनि मिली कहा गया है—'शतहस्त समाहर सहस्रहस्त सं किर' सैकड़ों हाथोंसे धन अर्जित करो और हजारों हाथोंसे उसे पुराणोंमें यह भी कहा गया है कि प्रत्येक विद्वान् तथा बाँटो। सद्गृहस्थों, शासकों तथा किसी भी वर्गके धनाढ्यके शास्त्रज्ञ ब्राह्मणका परम धर्म है कि वह अपने ज्ञानका, लिये कहा गया है कि यथाशक्ति प्रतिदिन दान करना विद्याका दान करता रहे। जो विद्वान् ब्राह्मण अपने इस चाहिये। 'दानेन वशगा देवा भवन्तीह सदा नृणाम्।' धर्मका, कर्तव्यका पालन नहीं करता, उसे ब्रह्मराक्षस बनना दान ऐसा सशक्त साधन है कि उससे देवता भी वशमें हो पडता है। जाते हैं। श्रीरामानुजाचार्य श्रीयादवप्रकाश नामक परम विद्वान् ब्राह्मणों, असहायों, दरिद्रों, बीमारोंके हितार्थ दान तथा विरक्त गुरुके चरणोंमें बैठकर विद्याध्ययन करते देनेकी प्रेरणा दी गयी है। दान लेना ब्राह्मणका शास्त्रसम्मत थे। उन्हीं दिनों कांचीनरेशकी पुत्री अचानक प्रेतबाधासे अधिकार बताया गया है, किंतु साथ ही यह भी कहा गया पीड़ित हो गयी। अनेक मन्त्रज्ञ बुलाये गये, किंतु उसे है कि सत्पात्रको ही दान देना चाहिये, जो उसका दुरुपयोग प्रेतसे मुक्ति नहीं मिली। नरेशको पता चला कि पण्डितराज न करे। ब्राह्मणके लिये धर्मशास्त्रोंमें यह भी कहा गया है— यादवप्रकाशजी यदि कृपा करें तो राजकुमारीको प्रेतबाधासे मुक्ति मिल सकती है। राजाने उन्हें आदरसहित कांची वृत्तिसङ्कोचमन्विच्छेन्नेहेत धनविस्तरम्। धनलोभे प्रसक्तस्तु ब्राह्मण्यादेव हीयते॥ बुलवाया। अपने शिष्य रामानुजको साथ लेकर वे राजमहल ब्राह्मणको भी आवश्यकतापूर्ति होनेलायक धनका ही पहुँचे। पण्डितजीने मन्त्र-प्रयोग किया। प्रेत बोला—'मैं दान लेना चाहिये, धन-संग्रहके लोभमें आसक्त ब्राह्मण सामान्य प्रेत नहीं हूँ, तू यदि जीवनभर भी मन्त्र-प्रयोग ब्राह्मणत्वसे च्युत हो जाता है। मनमें दान लेनेकी प्रवृत्ति करे तो भी मेरा कुछ न बिगाड़ पायेगा।' श्रीरामानुजाचार्यको नहीं होनी चाहिये। मात्र जीवन-निर्वाहके लिये ही धन देखकर प्रेत मुसकराया। रामानुजजीने मन्त्र पढ़ा। उन्होंने ग्रहण करना चाहिये। देखा कि एक ब्राह्मणवेशधारी राक्षस सामने है। उन्होंने हमारे धर्मप्राण भारतमें ऐसे असंख्य परम विरक्त त्यागी पूछा—'ब्रह्मन्! आप तो ब्राह्मण हैं, विद्वान् हैं; फिर यह तपस्वी ब्राह्मण हुए हैं, जिन्होंने दान न लेकर उलटे विद्यादान-योनि क्यों भोगनी पड़ी?' ब्रह्मराक्षसने रोते हुए कहा-ज्ञानदानमें अपना जीवन खपा डाला। ऐसे असंख्य मनीषियों, 'मैंने शास्त्रोंका आदेश न मानकर विद्वान् होते हुए भी त्यागी-तपस्वियों, ज्ञान-विद्यादानियोंके कारण ही भारत विश्वमें जीवनमें कभी विद्यादान नहीं किया। शास्त्रोंके वचनकी अवहेलनाके कारण ही मृत्युके बाद मुझे राक्षसयोनि जगदुगुरुका सम्मान प्राप्त कर सका है। विभिन्न प्रकारके मिली है। यदि आप मेरे मस्तकपर आशीर्वादका हाथ दानोंके पुण्य और उनके न करनेसे प्राप्त होनेवाली पापयोनियोंसे

सम्बन्धित कुछ कथाएँ यहाँ दी जा रही हैं-

रख देंगे तो मैं इस योनिसे मुक्त हो जाऊँगा, रामानुजजीने

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् * दानमिहमा− जैसे ही राजकुमारीके सिरपर हाथ रखा कि ब्रह्मराक्षस (3) नाम एवं यशके लिये दिया गया उस योनिसे मुक्त हो गया। राजकुमारी पूरी तरह स्वस्थ-सामान्य हो गयी। दान तामिसक होता है धर्मशास्त्रोंमें यश अथवा अन्य सांसारिक कामनाके (?) भूखोंको अन्नदानसे सरस्वतीजी प्रसन्न हुईं लिये किये गये दानको तामसिक तथा निम्न कोटिका दक्षिण भारतके तिरुकलि क्षेत्रमें एक धनाढ्य विद्वान् बतलाया गया है। ब्राह्मण रहते थे। उनकी पुत्री कुमुदवल्लभी अत्यन्त सुन्दरी सुगन्धपुरके राजा वज्रबाहुने धर्मशास्त्रोंमें लिखित तथा भगवान् विष्णुकी परम भक्त थी। वह प्राणिमात्रमें सेवा-परोपकारके कार्योंमें धन लगाने और दान देनेके भगवानुका रूप देखती थी। इसलिये दु:खी व्यक्तिको देखते महत्त्वको जानकर राज्यमें खुलकर सेवा-परोपकारके कार्य शुरू करा दिये। उन्होंने राज्यके गाँवों तथा कस्बोंमें खुलकर ही उसका हृदय करुणासे भर जाता था। प्रतिदिन भूखे व्यक्तियोंको भोजन करानेके बाद ही वह भगवान्का भोग धन खर्च करके तालाबों, कुँओं, औषधालयोंका निर्माण लगाकर भोजन ग्रहण करती थी। कराया। राजाके मन्त्रीने राजाको खुश करनेके लिये जगह-विवाहयोग्य आयु होनेपर पिताने वर ढूँढ़ना शुरू किया। जगह अंकित करा दिया—'दानवीर राजा वज्रबाहुने इसका कुमुदवल्लभीने शर्त रखी—'मैं उसीसे विवाह कर सकती निर्माण कराया है।' चारों ओर राजाकी दानशीलताका डंका हँ, जो परम सात्त्विक एवं भगवान् विष्णुका भक्त हो तथा बजने लगा। प्रतिदिन कुछ गरीबोंको भोजन करानेकी सामर्थ्य रखता एक बार एक परम विरक्त संत धर्मप्रचार करते हुए सुगन्धपुर राज्यमें पधारे। उन्होंने जगह-जगह राजा वज्रबाहुकी हो।' चोलनरेशका युवा सेनानायक तिरुमंगैयालवार परम दानशीलताकी प्रशंसाके वाक्य अंकित देखे। धार्मिक तथा भगवद्भक्त था। उसके युद्धकौशलसे प्रभावित राजा संतोंके सत्संगके लिये हर क्षण उत्सुक रहा होकर राजाने उसे बहुत-सी भूमि दानमें दी थी। उसने करते थे। उन्हें पता चला तो मन्त्रीको रथ लेकर उनके पास कुमुदवल्लभीकी शर्त सुनी तो उसके पिताके पास पहुँचा। भेजा। मन्त्रीने संतजीसे प्रार्थना की—आप राजमहल पधारकर उसने दोनों शर्तें स्वीकार कर लीं। पिताने दोनोंका विवाह राजपरिवारको आशीर्वाद देनेकी अनुकम्पा करें। संत परम कर दिया। विद्वान् पत्नीकी प्रेरणासे तिरुमंगैयालवार विष्णु-विरक्त थे। उन्होंने कहा-शास्त्रोंके अनुसार साधुको किसीके भक्तिके पद रचने लगे। पति-पत्नी भूखोंको भोजन घर नहीं जाना चाहिये। हम यहींसे उनके परिवार तथा राज्यकी जनताकी सुख-समृद्धिकी कामना करते हैं। करानेके बाद भोजन करते। उन्होंने राजासे प्रार्थना करके सेनापति-पदसे मुक्ति पा ली। राजा संतकी विरक्तिसे और प्रभावित हुए। वे देखते-ही-देखते जहाँ उन्हें सरस्वतीकी अनुठी कृपा सपरिवार वनमें पहुँचे तथा साष्टांग प्रणामकर संतजीके चरणोंमें बैठ गये। उन्होंने कहा—'महाराज! मैंने दानकी प्राप्त हुई, वहीं लक्ष्मी रूठने लगीं। भूमिपर कुछ दुष्ट वृत्तिके लोगोंने अधिकार कर लिया। आयका साधन महिमा जाननेके बादसे राज्यमें जगह-जगह कुएँ, तालाब, समाप्त हो गया। इसके बावजूद उन्होंने भूखोंको भोजन धर्मशालाएँ और औषधालय बनवाये हैं। हर क्षण प्रजाकी भलाईमें लगा रहता हूँ, फिर भी मन अशान्त रहता है।' करानेका नियम भंग नहीं होने दिया। एक दिन आभूषण बेचकर जैसे ही भूखोंको भोजन कराया कि भगवान् विष्णु संतजीने कहा—'राजन्! जब मैं भिक्षा माँगने शहरमें सामने खड़े दिखायी दिये। वे बोले—'भूखोंको भोजन आया तो मैंने देखा कि जगह-जगह दीवारोंपर, मन्दिरोंपर, करानेवाला कभी दरिद्र नहीं होता। तुम्हारे रचे पदोंसे लोग शिलापट्टोंपर तुम्हारा नाम अंकित है। तुम्हारे नामका डंका बज युग-युगोंतक भक्तिकी प्रेरणा लेंगे।' रहा है। तुमने धन खर्च करके, दान करके सात्त्विक कार्य तो किया किंतु अपनेको 'दानवीर' दरशाकर, अहंकार प्रदर्शितकर आलवार कवि आज भी तिरुमंगैयालवाररचित पद गाते हैं तो भाव-विभोर हो उठते हैं। अपने पुण्योंको क्षीण कर डाला है। नामकी, यशकी आकांक्षाने

* दानसम्बन्धी कुछ प्रेरक आख्यान * अङ्क] तुम्हें बन्धनोंमें जकडे रखा है, मुक्ति तथा शान्ति नहीं मिलने दान देता था। वह प्रजाके लोगोंसे कहा करता था कि दी है। यही अशान्तिका मुख्य कारण है। दूसरेकी सेवा-सहायतामें खर्च किया गया धन कभी संतजीने उपदेश देते हुए कहा-धर्मशास्त्रोंमें कहा समाप्त नहीं होता। दान किया धन कई गुना बढ़कर मिल गया है कि सात्त्विक दान वही होता है, जिसके पीछे कोई जाता है। आकांक्षा न हो। नाम तथा कीर्तिकी आकांक्षासे मुक्त होते राजाकी सेनाका उपनायक सत्त्वशील भी परम ही शान्ति मिल जायगी। भगवद्भक्त था। वह नि:सन्तान था। अपना तमाम वेतन राजाने अपने नामके सभी पट्ट हटवानेका आदेश दे धर्म-कार्यों तथा परोपकारपर खर्च कर देता था। एक बार उसे जंगलमें घूमते समय सोनेकी अशर्फियाँ मिलीं। वह दिया। (8) उन्हें भी गरीबोंकी सहायताके काममें खर्च करने लगा। दान स्वीकारनेवाला धन्यवादका पात्र है किसी ईर्ष्यालुने राजाके कान भर दिये कि उपसेनापति पुराणोंमें लिखा है कि जो व्यक्ति किसीका दान सत्त्वशीलको जंगलमें धन मिला था, उसे नियमानुसार स्वीकार करता है, सहायता स्वीकार करता है, वह उलटे राज्यके खजानेमें जमा किया जाना चाहिये था, किंतु दानदातापर कृपा ही करता है। यह मानना चाहिये कि सत्त्वशीलने ऐसा न करके उसे अपने पास रख लिया तथा उसने दान स्वीकार करके उसे पुण्य अर्जित करनेका, वह उसे खुले हाथों बाँट रहा है। राजाने सत्त्वशीलको बुलवाया। पूछा—क्या तुम्हें जंगलमें स्वर्णमुद्राएँ मिलीं? सेवाका सुअवसर दिया है। बंगालके सुविख्यात विद्वान् पं० श्रीविश्वनाथ उनका तुमने क्या किया? सत्त्वशील राजाको गरीबोंकी तर्कभूषणजीकी पावन स्मृतिमें उनके सुयोग्य पुत्र श्रीभूदेव झोपडियोंमें ले गया। राजासे कहा—'आप इनसे पूछ मुखोपाध्यायजीने अपनी एक लाख साठ हजारकी सम्पत्ति लीजिये कि क्या मैंने उनकी कुछ सहायता की है?' दान करके 'विश्वनाथ-ट्रस्ट' की स्थापना की। इस ट्रस्टसे गरीबोंने उत्तर दिया—'इन्होंने हमें वस्त्र, बर्तन एवं अनाज देशके सदाचारी विद्वान् ब्राह्मणोंका चयन करके बिना दिया था और कहा था कि राजाने अपनी ओरसे भिजवाया आवेदनके ही उन्हें मनीआर्डरसे पचास-पचास रुपये भेजे है।' राजा समझ गया कि सत्त्वशीलने इस दानका स्वयं जाते थे। ट्रस्टके बाबूने वृत्ति पानेवालोंकी सूची बनायी। उसमें श्रेय न लेकर राज्यको श्रेय दिया है। राजाने उसकी अंकित था—'इस वर्ष जिन-जिन अध्यापकों तथा विद्वानोंको ईमानदारी एवं दानशीलता देखकर उसे उपसेनापतिसे मुख्य विश्वनाथवृत्ति दी गयी, उनकी नामावली।' सेनापित बनाकर उसका वेतन दोगुना कर दिया। पं० श्रीभृदेव मुखोपाध्याय स्वयं परम शास्त्रज्ञ विद्वान् थे। (ε) हरामकी कमाई ठीक नहीं वे जानते थे कि वृत्ति स्वीकार करनेवालोंके नामका उल्लेख मुस्लिम संत अबू अली शफीक खुदाकी इबादतमें आदरके साथ किये जानेमें ही दानकी सार्थकता है। उन्होंने बाबूसे कहा-इस सूचीके ऊपर लिखो-'इस वर्ष जिन डूबे रहते थे। वे कहा करते थे—'मनुष्यको ईमानदारीसे अध्यापकों, विद्वानोंने विश्वनाथवृत्ति स्वीकार करनेकी कृपाकर खून-पसीनेकी कमाईसे ही अपना एवं परिवारका भरण-हमारे ट्रस्टको धन्य किया, उनकी नामावली।' पोषण करना चाहिये। समाजपर भार नहीं डालना चाहिये। उनकी कथनी-करनी एक थी। वे स्वयं कुछ समय इस प्रकार दान तथा सहायता लेनेवालोंके प्रति भी मजदुरी करते थे और उससे हुई आयसे ही अपना भोजन कृतज्ञताकी भावना रखनेमें ही दानकी सार्थकता है। तैयार करते थे। (4) एक धनाढ्य उनके उपदेशों तथा त्यागमय जीवनसे सेनानायककी अनुठी दानशीलता एक राज्यका शासक ब्राह्मणवर परम धर्मात्मा तथा बहुत प्रभावित था। उसने एक दिन उन्हें मजदूरी करते देखा प्रजीपालीमां आपा चिंह परार्व त्रिवा पक्र रामाञ्च अपिकुल प्रकृषिक माण्या प्रभाव प्रकृषिक प्रभाव प्रम

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम्* दानमिहमा− उसने कुछ वस्त्र, कुछ अनाज तथा खजूर उनके सामने पेश नहीं रहने देगी। हरामकी कमाईसे किया गया भोजन किये तथा बोला—'आप-जैसे महान् फकीरको मेहनत-किसी-न-किसी रूपमें पतनका कारण अवश्य बनता है। मजदूरी करके पेट भरना पड़े, यह हमारे लिये शर्मनाक है। इसलिये जबतक मेरे हाथ-पैर काम करनेलायक हैं, मुझे में आपके आशीर्वादसे मालदार हूँ। मेरी सेवा स्वीकार करें।' कमाई करके काम चलाने दो। संतजीने अमीरकी तमाम वस्तुएँ वापस कर दीं। संत अबू अलीने विनम्रतासे कहा-बिना परिश्रम किये, दूसरेके धनसे अपना काम चलानेवाला कभी उन्होंने उसे भी उपदेश दिया-प्रतिदिन हाथसे ऐसा काम हृदयकी सत्य बात नहीं कह सकता। जिसका दिया अन्न किया करो, जिससे यह महसूस न हो कि हरामकी कमाई खा रहा हूँ। वह खायेगा, उसके प्रति पक्षपातकी भावना उसे निष्पक्ष दानके कुछ प्रेरक प्रसंग (श्रीराहुलजी कुमावत, एम०ए०, बी०कॉम०) (8) जीवनमें उन्हें अपनी पत्नीका भरपूर साथ मिला। यह रीवाँनरेशद्वारा दान घटना उस समयकी है, जब वे अपने महाकाव्यकी रचना अब्दुर्रहीम खानखाना मुगल बादशाह अकबरके कर रहे थे। एक दिन अपने छोटे-से कक्षमें महाकवि दरबारके नौ रत्नोंमेंसे एक थे, परंतु जहाँगीरके समयमें काव्यरचनामें तल्लीन थे। सामने एक छोटा-सा दीपक उनपर विभिन्न आरोप लगाकर उनकी सारी जागीर-टिमटिमा रहा था। किसीने द्वारपर दस्तक देकर उनकी सम्पत्ति जब्त कर ली गयी। उन्हें जेलमें डाल दिया गया। तन्मयता भंग की। वे उठे, द्वार खोला और देखा कि एक दान देना इनका स्वाभाविक गुण था, अतः जेलसे छूटे तो दीन-हीन व्यक्ति हाथ जोड़े खड़ा है। वह बोला—'आपकी याचक पुन: इनके पास पहुँचने लगे, पर उनपर तो उस उदारता सुनकर आशा लेकर आया हूँ। बेटा बहुत बीमार है, पर उसके उपचारके लिये मेरे पास फूटी कौड़ी भी समय दरिद्रताका साया था। एक दिन एक दीन-हीन याचक रहीमके पास पहुँचा नहीं है। कृपा करके मेरी सहायता करें।' और आर्थिक सहायताके लिये गुहार लगाने लगा। रहीमने महाकविके सामने धर्मसंकट खडा हो गया। पासमें उसे एक दोहा लिखकर दिया और कहा कि इसे कुछ भी तो नहीं, जो दिया जा सके। क्या करें? याचक रीवाँनरेशको जाकर दे दो। दोहा यों था-करबद्ध खड़ा है। कैसे मदद की जाय? तभी उन्हें एक चित्रकूट में रिम रहे, रहिमन अवधनरेस। उपाय सूझा। उन्होंने सोई हुई पत्नीपर नजर डाली। धीरे-धीरे पग रखते उसके पास पहुँचे और चुपके-से उसके जापर विपदा परत है, सो आवत एहि देस॥ रहीमकी इस दोहा-संस्तृति-सिफारिशपर रीवाँनरेशने हाथसे सोनेका एक कंगन निकाल लिया। याचक यह सब उस याचकको एक लाख रुपये दान देकर ससम्मान विदा देख रहा था। महाकवि उस कंगनको याचकको देनेके लिये आगे बढ़े ही थे कि पीछेसे आवाज गूँजी—ठहरिये। किया।

महाकविने पीछे मुङ्कर देखा। उनका शरीर सिहर उठा-

कहीं उनकी पत्नी इनकार न कर दे और याचकको दुत्कार

न दे। वे कुछ सफाई देने ही लगे थे कि पत्नीने उस निर्धन

व्यक्तिकी ओर मुखातिब होते हुए कहा—भाई! ठहरो, इन्हें तो व्यावहारिक ज्ञान है ही नहीं। एक कंगनसे आपके

बेटेका उपचार नहीं हो पायेगा। इसीलिये दूसरा कंगन भी

स याचकका एक लाख रुपय दान देकर संसम्मान विदा ज्या। (२) महाकवि माघकी पत्नीकी उदारता संस्कृतके महाकवियोंमें कालिदास, भारवि तथा

भवभूतिकी श्रेणीमें महाकवि माघका नाम भी खुब

आलोकित है। उनका शिशुपालवध महाकाव्य संस्कृत-साहित्यका अत्यन्त प्रौढ ग्रन्थ है। अपने असाधारण

* दानके प्रेरणास्त्रोत * अङ्क] लेते जाओ। यह कहकर उनकी पत्नीने अपना दूसरा कंगन भीलकी पत्नीको उन्होंने बहुत-सा धन दिया। यह सब भी उसे दे दिया। करके भी नरेशको शान्ति नहीं हुई। वे नगर लौट तो आये,

> (3) दानका फल

मृत्यु हो गयी।

प्रतिष्ठानपुरनरेश सातवाहन आखेटको निकले और

सैनिकोंसे पृथक् होकर वनमें भटक गये। वनमें भटकते

भूखे-प्यासे राजा सातवाहन एक भीलकी झोंपडीपर पहुँच गये।

भील उन्हें पहचानता नहीं था, फिर भी उसने अतिथि समझकर

उनका स्वागत किया। भीलकी झोंपड़ीमें धरा ही क्या था,

मात्र सत्तू था उसके पास। राजाने वह सत्तू खाकर ही क्षुधा दूर

की। रात्रि हो चुकी थी, भीलकी झोंपड़ीमें ही वे सो रहे। रात्रि शीतकालीन थी। शीतल वायु चल रही थी।

भील स्वयं झोंपडीके बाहर सोया और राजा सातवाहनको

उसने झोपड़ीमें सुलाया। रात्रिमें वर्षा भी हुई। भील भीगता

रहा। उसे सर्दी लगी और उसी सर्दीसे रात्रिमें ही उसकी

प्रात:काल राजाके सैनिक उन्हें ढूँढते पहुँचे। सातवाहनने बड़े सम्मानके साथ भीलका अन्तिम संस्कार कराया। प्रभावसे मुझे पूर्वजन्मका स्मरण भी है।'

राजाके सामने लाया गया। पण्डितजीके आदेशसे वह अबोध बालक सहसा बोल उठा—'राजन्, मैं आपका

किंतु उदास रहने लगे। उनका शरीर दिनोंदिन दुर्बल होने लगा। मन्त्री तथा देशके विद्वान् क्या करते? राजाको

चिन्ताका रोग था और उसकी दवा किसीके पास नहीं थी।

स्वयं बाहर सोया और उसकी मृत्यु हो गयी। दान और

अतिथिसत्कारका ऐसा ही फल होता हो तो कौन दान-

कृपापात्र पण्डित वररुचि प्रतिष्ठानपुर पधारे। राजाकी चिन्ताका समाचार पाकर वे राजभवन पधारे और राजाको

लेकर नगरसेठके घर गये। नगरसेठके नवजात पुत्रको

पुण्य करेगा।' राजाको यही चिन्ता सता रही थी।

'बेचारे भीलने मुझे सत्तू दिया, मुझे झोंपड़ीमें सुलाकर

कई महीने बीत गये, अन्तमें भगवती सरस्वतीके

बहुत कृतज्ञ हूँ। आपको सत्तु देनेके फलसे भीलका शरीर

छोड़कर मैं नगरसेठका पुत्र हुआ हूँ और उसी पुण्यके

भगवान् शिवका मुक्तिदान

(आचार्य डॉ॰ श्रीपवनकुमारजी शास्त्री, साहित्याचार्य, विद्यावारिधि, एम॰ए॰, पी-एच॰ डी॰)

देवाधिदेव महादेव दानियोंमें अग्रगण्य हैं। १ देना ही वह मुक्ति काशीमें शिवकृपासे एक ही जन्ममें और बिना किसी

उनके मनको भाता है और याचकगण उन्हें बहुत सुहाते हैं। ^२ प्रयत्नके (केवल मरनेमात्रसे) सहज ही मिल जाती है।^६

उनके दानकी शैली बडी विचित्र है।^३ वे अल्पसे ही प्रसन्न पुराणोंमें वचन मिलते हैं कि भगवान शिव काशीमें

हो जाते हैं तथा दिये जानेवाले दानके भावी परिणामोंकी मरनेवालोंको मुक्ति देनेमें पुण्यात्मा और पापात्मा तथा ज्ञानी

परवाह किये बिना याचनासे कई गुना अधिक दे डालते हैं। और अज्ञानीमें कोई भेद नहीं करते। यहाँतक कि वे

इसी कारण उन्हें आशुतोष एवं अवढरदानी कहा जाता है। मृतकोंके जाति-धर्म या योनि आदिके प्रश्नपर भी कोई

भगवान शिव भक्ति एवं मुक्ति दोनों देते हैं। भोगोंको पक्षपात नहीं करते। भगवान शिव काशीमें मरनेवाले पश्-

देते समय जहाँ भोलेनाथ याचककी पात्रतापर विचार नहीं पक्षी और कीटादिको भी मुक्ति प्रदान करते हैं। काशीमें करते, वहीं मुक्तिदान करते समय वे जीवोंमें किसी पृथ्वीपर, आकाशमें या जलमें चाहे कहीं भी मृत्यु हो और

प्रकारका कोई भेदभाव नहीं रखते। शुभाशुभ चाहे किसी भी कालमें मृत्यु हो, शिवकुपासे

मृतकको मुक्ति मिलती ही है। यहाँतक कि काशीमें लोकमंगलकी भावनासे भावित भगवान् शिवद्वारा इस

प्रकार निर्बाध मुक्तिदान करनेकी प्रशस्तस्थली है उनकी सर्पदंशादिसे अपमृत्यु होनेपर भी मृतकको मुक्ति मिलती

अपनी प्रिय नगरी काशी। भगवान् शिव यहाँ मरनेवाले प्रत्येक है। १ काशीमें मणिकर्णिकादि तीर्थों या गंगातटपर ही नहीं

जीवको मुक्तिदान देकर भवबन्धनसे मुक्त कर देते हैं। ^५ सहस्रों अपित् सडकोंपर, मल-मुत्रमें, चाण्डालके घरमें अथवा जन्मोंतक नाना प्रकारके जप-तप, यम-नियम एवं योगाभ्यासादि श्मशानसदुश अपवित्र स्थानोंमें मृत्यु होनेपर भी शिवजी

करते रहनेपर भी जिस मुक्तिकी प्राप्ति अनिश्चित रहती है, कृपा करते हैं और मृतकको मुक्ति मिलती है। १०

१-देव बड़े, दाता बड़े, संकर बड़े भोरे। (विनय-पत्रिका ८)

२-(क) दीन-दयालु दिबोई भावै, जाचक सदा सोहाहीं॥ (विनय-पत्रिका ४)

(ख) जाहि दीन पर नेह....॥ (रा०च०मा० १।४ सो०) ३-बावरो रावरो नाह भवानी। (विनय-पत्रिका ५) ४-(क) औढर-दानि द्रवत पुनि थोरें। सकत न देखि दीन करजोरें॥ (विनय-पत्रिका ६)

(ख) आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। (रा०च०मा० २।४४।८)

५-पुण्यानि पापान्यखिलान्यशेषं सार्थं सबीजं सशरीरमायै। इहैव संहत्य ददामि बोधं यत: शिवानन्दमवाप्नुवन्ति॥

६-विना तपोजपाद्यैश्च विना योगेन सुव्रत। नि:श्रेयो लभते काश्यामिहैकेनैव जन्मना॥ (काशीखण्ड पू० २२।११२)

७-ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शुद्रा वै वर्णसङ्कराः। कृमिम्लेच्छाश्च ये चान्ये सङ्कीर्णाः पापयोनयः॥

कीटाः पिपीलिकाश्चैव ये चान्ये मृगपक्षिणः। कालेन निधनं प्राप्ता अविमुक्ते शृणु प्रिये॥ चन्द्रार्द्धमौलिनः सर्वे ललाटाक्षा वृषध्वजाः।

(सनत्कुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

शिवे मम पुरे देवि जायन्ते तत्र मानवा:॥ (मत्स्यपुराण १८१।१९—२१, कूर्मपुराण १।२९।३१-३२) ८-(क) भूमौ जलेऽन्तरिक्षे वा यत्र क्वापि मृतो द्विज:। ब्रह्मैकत्वं च प्राप्नोति काशीशक्तिरुपाहिता॥ (पद्मपु० तीर्थसुधानिधि)

(ख) सर्वस्तेषां शुभ: कालो ह्यविमुक्ते म्रियन्ति ये॥ न तत्र कालो मीमांस्य: शुभो वा यदि वाशुभ:। (मत्स्यपु० १८४।७२-७३)

९-सर्पाग्निदस्युप्रभृतिभिर्निहतस्य जन्तोः अपि अत्र मुक्तिः। (पद्मपु० त्रिस्थलीसेत्)

१०-रथ्यान्तरे मूत्रपुरीषमध्ये चाण्डालवेश्मन्यथवा श्मशाने। कृतप्रयत्नोऽप्यकृतप्रयत्नो इहावसाने लभतेव मोक्षम्॥ (सनत्कुमारसंहिता, तीर्थसुधानिधि)

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् िदानमहिमा-दिया जानेवाला तारक मन्त्र षडक्षरोंवाला श्रीरामनाम महामन्त्र श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्में भगवान् शिवद्वारा काशीमें दिये जानेवाले मुक्तिदानकी प्रशंसा करते हुए^{११} एक बड़ा ही (रां रामाय नमः) है। मार्मिक आख्यान कहा गया है। तदनुसार एक बार भगवान् महर्षि भारद्वाजद्वारा पूछनेपर ऋषिवर याज्ञवल्क्यने बताया शिवने एक हजार मन्वन्तरतक जपहोमादिपूर्वक भगवान् कि दीर्घ अकारसहित अनल (रेफ, रकार) हो और वह रेफ श्रीरामके राम-नाम महामन्त्रका जप किया।^{१२} इसपर प्रसन्न बिन्दुसे पहले स्थित हो। उसके बाद पुन: दीर्घ स्वरविशिष्ट होकर जब भगवान् श्रीरामने शिवजीको दर्शन दिया और रेफ हो और तदनन्तर माय नम: ये दो पद हों। इस प्रकार **'रां** रामाय नमः' यह तारकमन्त्रका स्वरूप है। इसके अतिरिक्त अभीष्ट वर माँगनेको कहा तो भगवान् शिवने उनसे अपने लिये कुछ भी नहीं माँगा। दानपरायण महादेव तो सर्वदा रामपद के सहित 'चन्द्राय नमः' और 'भद्राय नमः' (अर्थात् लोकमंगलकी कामना रखते हैं। अत: उन्होंने भगवान् श्रीरामसे **'रामचन्द्राय नमः'** एवं **'रामभद्राय नमः'**)—ये दो मन्त्र भी कहा कि मेरे मणिकर्णिका क्षेत्रमें अथवा गंगाजीके तटपर जो तारक मन्त्र हैं। यह तारक मन्त्र गर्भ, जन्म, जरा, मरण और संसारके महाभयसे तार देता है। जो इस तारकमन्त्रका नित्य

भगवान् शिवकी यह दानशीलता श्रुतियों-स्मृतियों एवं

भी प्राणी देहत्याग करें, उन सभी प्राणियोंको मुक्ति मिले, इसके अतिरिक्त मुझे दूसरा कोई वर नहीं चाहिये। शिवजीके जप करता है, वह सम्पूर्ण पापोंको पार कर जाता है, वह इन वचनोंसे प्रसन्न होकर भगवान् श्रीरामने तथास्तु कहा और ब्रह्महत्यादि सम्पूर्ण हत्याओंसे तर जाता है, वह संसारसे तर

शिवजीको आश्वस्त किया कि आपके इस क्षेत्रमें जहाँ-कहीं जाता है, वह जहाँ कहीं भी रहता हुआ अविमुक्त क्षेत्र भी और कोई भी कीटपतंगादि मरेगा, वह तत्काल मुक्त हो (काशीधाम)-में ही रहता है तथा वह मृत्युको लाँघकर जायगा। आप अपने नगरमें जिस किसी भी प्राणीको मेरे अमृतत्वको प्राप्त करता है।^{१४}

मन्त्रका उपदेश करेंगे, वह अवश्यमेव मुक्त हो जायगा।^{१३} पुराणों आदिमें सर्वत्र विख्यात है। श्रुतियाँ कहती हैं—काश्यां भगवान् श्रीरामके इन वचनोंको सुनकर शिवजीको परम सन्तोष हुआ और वे भगवान्की आज्ञानुसार राम-नाम-मरणान्मुक्तिः। शिवसंहितामें कहा गया है कि काशीश्वर श्रीरामोत्तरतापिन्युपनिषद्में ही भगवान् शिवद्वारा जीवोंकी

मन्त्रोपदेशद्वारा प्राणियोंको मुक्त करनेमें जुट गये। मुक्तिहेतु दिये जानेवाले तारक मन्त्रके स्वरूप एवं प्रभावका भी विस्तृत विवेचन किया गया है। तदनुसार भगवान् शिवद्वारा

भगवान् शिव श्रीराममन्त्रसे स्वयं पवित्र होकर काशीमें जीवोंको सदा मुक्त करते हैं। पद्मपुराणमें भगवान् शिवने कहा है कि मरनेके समय मणिकर्णिका घाटपर गंगाजीमें जिस मनुष्यका शरीर गंगाजलमें पड़ा रहता है, उसको मैं आपका तारक मन्त्र ११-अविमुक्तं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। तस्माद्यत्र क्वचन गच्छति तदेव मन्येतेतीदं वै कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्मसदनम्। अत्र हि जन्तो: प्राणेषूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृतीभूत्वा मोक्षीभवति। तस्मादिवमुक्तमेव

१२-श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वज:। मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभि:॥ तत: प्रसन्नो भगवाञ्छ्रीराम: प्राह शङ्करम्। वृणीष्व

निषेवेत। अविमुक्तं न विमुञ्चेत्। (रामोत्तरतापिन्युपनिषद् १) यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर॥ अथ सच्चिदानन्दात्मानं श्रीराममीश्वर: पप्रच्छ। मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुन:। म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नाऽतो वरान्तरम्॥ (रामोत्तरतापिन्युपनिषद्)

१३-अथ स होवाच श्रीराम: । क्षेत्रेऽस्मिंस्तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृता: । कृमिकीटादयोऽप्याशु मुक्ता: सन्तु न चान्यथा॥ मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्। उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव॥ (रामोत्तरतापिन्युपनिषद्) १४-तारकं दीर्घानलं बिन्दुपूर्वकं दीर्घानलं पुनर्मायां नमश्चन्द्राय नमो भद्राय नम इत्येतद् ब्रह्मात्मिकाः सच्चिदानन्दाख्या इत्युपासितव्यम्।

अकारः प्रथमाक्षरो भवति। उकारो द्वितीयाक्षरो भवति। मकारस्तृतीयाक्षरो भवति। अर्धमात्रश्चतुर्थाक्षरो भवति। बिन्दुः पञ्चमाक्षरो भवति। नादः षष्ठाक्षरो भवति । तारकत्वात्तारको भवति । तदेव तारकं ब्रह्म त्वं विद्धि । तदेवोपासितव्यिमिति ज्ञेयम् । गर्भजन्मजरामरणसंसारमहद्भयात्सन्तारयतीति । तस्मादुच्यते षडक्षरं तारकमिति। य एतत्तारकं ब्रह्म ब्राह्मणो नित्यमधीते। स पाप्मानं तरित। स मृत्युं तरित। स ब्रह्महत्यां तरित। स भ्रूणहत्यां तरित। स वीरहत्यां तरित। स सर्वहत्यां तरित। स संसारं तरित। स सर्वं तरित। सोऽविमुक्तमाश्रितो भवित। स महान्भवित। सोऽमृतत्वं च Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma | MADE WITH LOVE BY Avinash/Sharesia | (रामातरितापिन्युपानिषद् र

* भगवान् शिवका मुक्तिदान * अङ्क] देता हूँ, जिससे वह ब्रह्ममें लीन हो जाता है।^{१५} शरीर त्यागते समय उपदेश करता हूँ और उन्हें भव-भगवान् शिवके इस मुक्तिदानमें भगवती पार्वती भी बन्धनसे मुक्त करता हूँ। सिक्रय सहयोग करती हैं। एक पौराणिक आख्यानमें कहा द्वेऽक्षरे याचमानाय मह्यं शेषे ददौ हरि:। गया है कि काशीमें निवास करनेवाले प्रत्येक जीवित उपदिशाम्यहं काश्यां तेऽन्तकाले नृणां श्रुतौ॥ प्राणीके भोजनकी व्यवस्था स्वयं काशीपुराधीश्वरी माता रामेति तारकं मन्त्रं तमेव विद्धि पार्वति। अन्नपूर्णा करती हैं^{१६} और प्रत्येक मुमूर्षु प्राणीको मुक्तिदान (आनन्दरामायण, यात्राकाण्ड २।१५-१६)

भगवान् शंकर करते हैं। यहाँ जीवका मृत्युकाल निकट आनेपर जब भगवान् शंकर उस मरणासन्न प्राणीको अपनी गोदमें रखकर उसे तारक मन्त्रका उपदेश करने लगते हैं तो उस समय कृपामूर्ति माता अन्नपूर्णा कस्तूरीकी गन्धसे सुरभित अपने श्वेतांचलकी सुन्दर वायुसे उस प्राणीकी मरणकालिक व्याकुलताको दूर करती हैं। इसीलिये काशीमें भगवान् शिवद्वारा दिया जानेवाला तारक मन्त्र राममन्त्र ही है, इसे अध्यात्मरामायणका वह प्रसंग पुष्ट करता है जब लंकाविजयके उपरान्त श्रीरामके अभिनन्दनार्थ उपस्थित

भगवान् शिव श्रीरामकी स्तुति करते हुए कहते हैं—मैं आपके नामसंकीर्तनसे कृतार्थ होकर काशीमें भगवती भवानीके साथ अहर्निश रहता हूँ और मरणासन्न प्राणियोंकी मुक्तिहेतु उन्हें राम-नाममन्त्रका उपदेश करता हूँ— भवन्नाम गृणन्कृतार्थो अहं वसामि काश्यामनिशं भवान्या। मुमूर्षमाणस्य विमुक्तयेऽहं

यहाँ मरण भी परम मंगलमय माना गया है।

दिशामि मन्त्रं तव राम नाम॥ (अध्यात्मरामायण, युद्धकाण्ड १५।६२) इस सन्दर्भमें आनन्दरामायणका वह प्रसंग भी

अत्यन्त रोचक है, जहाँ श्रीशिवजी पार्वतीजीको बतलाते हैं कि समग्र रामचरितपर महर्षि वाल्मीकिद्वारा प्रणीत शतकोटि श्लोकोंके रामायणको तीनों लोकोंमें वितरित करनेके

पश्चात् जो दो अक्षरोंवाला राम-नाम बचा, उसे मैंने अपने लिये माँग लिया। हे पार्वति! तुम उसे ही तारक मन्त्र जानो।

हे देवि! मैं उसी श्रीरामनाम तारकमन्त्रका काशीमें जीवोंके

यह पूछनेपर कि हे भगवन्! आप हर समय क्या जपते

रहते हैं ? भगवान् शिवने भगवतीको विष्णुसहस्रनाम सुना दिया। तब पार्वतीजीने कहा-ये तो आपने एक हजार नाम कहे। इतना जपना तो सामान्य मनुष्यके लिये असम्भव है। कोई एक नाम किहये, जो सहस्रों नामोंके बराबर हो और उनके स्थानमें जपा जाय। तब भगवान्

शिवने कहा कि हे देवि! राम नाम इन सभी नामोंमें

एक अन्य पौराणिक आख्यानमें भगवती पार्वतीद्वारा

राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्यं रामनाम वरानने॥ राम राम शुभ नाम रिट, सबखन आनँद-धाम।

सहस नामके तुल्य है, राम-नाम शुभ नाम॥

श्रीरामचरितमानसमें भगवान् शिवने पार्वतीजीको बतलाया कि काशीमें मरते हुए प्राणीको देखकर उसे मैं जिनके

१५-(क) रामनाम्ना शिवः काश्यां भूत्वा पूतः शिवः स्वयम्।स निस्तारयते जीवराशीन् काशीश्वरः सदा॥(शिवसंहिता २।१४) (ख) मुमूर्षो मणिकर्ण्यां अर्द्धोदकनिवासिन:। अहं ददामि ते मन्त्रं तारकं ब्रह्मदायकम्॥ (पद्मपुराण, उत्तरखण्ड)

१६-यह प्रसिद्ध है कि व्रतादिके बन्धनोंके अतिरिक्त काशीमें कोई भी प्राणी भूखा नहीं सोता।

सर्वोत्तम है-

* दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् * ि दानमहिमा-332 नामके बलपर मुक्त कर देता हूँ, वे रघुश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी हैं कि उत्तम सेवकगण धान हैं तथा राम नामके दो ही हैं-सुन्दर अक्षर सावन-भादोंके महीने हैं-कासीं मरत जंतु अवलोकी। जासु नाम बल करउँ बिसोकी॥ बंदउँ नाम राम रघुबर को। हेतु कुसानु भानु हिमकर को।।

सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुबर सब उर अंतरजामी॥

(रा०च०मा० १।११९।१-२) संतशिरोमणि गोस्वामी तुलसीदासजीने श्रीरामनामकी

वन्दना करता हूँ जो अग्नि, सूर्य और चन्द्रमाका हेतु है। वह राम-नाम ब्रह्मा-विष्णु और शिवरूप है। वह वेदोंका प्राण है तथा निर्गुण, उपमारहित एवं गुणोंका

महिमाका गान करते हुए लिखा है कि मैं राम-नामकी

भण्डार है। यह महामन्त्र है, जिसे महेश्वर सदा जपते रहते हैं और इनके द्वारा जिसका उपदेश काशीमें मुक्तिका कारण है तथा जिसकी महिमा श्रीगणेशजी जानते हैं और जो इस नामके प्रभावसे ही सर्वप्रथम पूजे जाते

हैं। आदिकवि वाल्मीकि जिसे उलटा जपकर पवित्र हो गये। इस नामको एक हजार नामोंके बराबर जानकर श्रीपार्वतीजी सदा अपने पतिके साथ जप करती रहती

हैं। राम-नामके प्रति भवानीकी ऐसी प्रीति देखकर ही शिवजीने उन्हें अपनी अद्धांगिनी बना लिया। नामके प्रभावको जानकर ही शिवजीने हलाहलका पान कर

डाला था और उसने उन्हें अमृतका फल दिया था। श्रीरघुनाथजीकी भक्ति वर्षा-ऋतु है, तुलसीदासजी कहते नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फलु दीन्ह अमी को।। बरषा रित् रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास।

राम नाम बर बरन जुग सावन भादव मास॥ (रा०च०मा० १।१९।१—८, १।१९) भगवान् शिवके इस अनुपम मुक्तिदानको कोटिश:

बिधि हरि हरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो॥

महामंत्र जोइ जपत महेसु। कासीं मुकृति हेतु उपदेसु॥

महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥

जान आदिकिब नाम प्रतापु। भयउ सुद्ध करि उलटा जापु॥

सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जिप जेईं पिय संग भवानी॥

हरषे हेतु हेरि हर ही को। किय भूषन तिय भूषन ती को।।

नमन है। ठीक ही कहा गया है कि श्रुति-स्मृतिसे अभिज्ञ, शौचाचारसे विहीन तथा संसारके भयसे भयभीत, कर्मबन्धनोंमें जकडे हुए जिस मनुष्यकी गति कहीं भी नहीं है, उसकी सद्गति काशीमें है-

> श्रुतिस्मृतिविहीना ये शौचाचारविवर्जिताः। येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥ संसारभयभीता ये बद्धाः कर्मबन्धनै:।

येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः॥

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् ३६६

बलिदान-रहस्य (स्वामी श्रीदयानन्दजी महाराज)

दक्षिणमार्गीय इष्ट-पूजाके षोडश उपचारोंमें तो नहीं, किंतु वामाचारमें नैवेद्यके बाद बलिदान भी उपचारमें सम्मिलित

है। भाव यह कि यदि उपासकने उपासनाके अन्तमें सर्वस्व समर्पणकर, पूजकने पूजाके अन्तमें उपास्य-पूज्य इष्टदेवको अपना सब कुछ बलिदान देकर उपास्यदेवसे अपना भेदभाव मिटा न दिया, वह उपास्यमें विलीन, तन्मय होकर तद्रुप न हो गया, उसे 'ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति', 'शिवो भूत्वा शिवं यजेत्'—यह भाव न प्राप्त हुआ, 'दासोऽहम्' का 'दा' नष्ट

होकर 'सोऽहम्' न रह गया तो पूजाकी पूर्णता ही क्या हुई? इसी कारण बलिदान भी पूजाका एक अंग है। बलिदानके बिना न जगन्माता ही प्रसन्न होती हैं और न भारतमाता ही।

जिस देशमें जितने बलिदानी देश-सेवक, देश-नेता उत्पन्न होते हैं, उस देशकी उतनी ही सच्ची उन्नति होती है। यह बलिदान चार प्रकारका है। सबसे उत्तम कोटिका बलिदान 'आत्म-बलिदान' है। इसमें साधक जीवात्मभावको काटकर परमात्मापर चढ़ा देता है। इस बलिदानद्वारा अज्ञानवश परमात्मासे जीवात्माका जो भेद दीखता है, वह एकाएक नष्ट हो जाता है और साधक स्वरूपस्थित होकर अद्वितीय ब्रह्मका साक्षात्कार कर लेता है। जबतक यह न हो सके तबतक द्वितीय कोटिका बलिदान करना चाहिये। इसमें कामरूपी

बकरे, क्रोधरूपी भेड, मोहरूपी महिष आदिका बलिदान किया जाता है। अर्थात् 'षड्रिपुका बलिदान' ही द्वितीय कोटिका बलिदान है। तृतीय कोटिमें इतना न हो सकनेपर किसी-न-किसी इन्द्रियप्रिय वस्तुका बलिदान होता है। प्रत्येक विशेष पूजाके अन्तमें जिस वस्तुपर लोभ होता है उसका बलिदान अर्थात् संकल्पपूर्वक त्याग कर देना चाहिये। यही तृतीय कोटिका बलिदान है। इस प्रकारसे मिठाई, प्याज,

लहसुन, मादक वस्तु आदिके प्रति आसक्ति छूट सकती है। यदि ऐसा भी न हो सके तो क्रमशः छुड़ानेके लिये चतुर्थ कोटिका बलिदान है। मैथुन, मांस-भक्षण, मद्यपान-इनमें लोगोंकी प्रवृत्ति स्वाभाविक होती है। महाराज मनुने भी 'प्रवृत्तिरेषा भूतानाम्' कहकर इसी सिद्धान्तकी पुष्टि की है; किंतु 'निवृत्तिस्तु महाफला' अर्थात् मनुष्यको प्रवृत्ति छोड्कर क्रमशः

मोक्षफलदायक निवृत्तिकी ओर अग्रसर होना चाहिये। इसी

कारण व्यवस्था बाँधकर इन वृत्तियोंको क्रमश: नियमित करते

हुए इनसे निवृत्ति करानेके निमित्त विवाह, यज्ञ और सोमपान आदिका विधान राजसिक अधिकारमें किया गया है। यही कारण है कि विवाहके समय स्त्री-पुरुष प्रतिज्ञाबद्ध होते हैं

> कि संसारसे कामभाव उठाकर अपनेमें ही केन्द्रीभूत करके क्रमश: निवृत्तिपथके पथिक बनेंगे। राजसिक, वैदिक, तान्त्रिक यज्ञमें हिंसादिका भी यही समाधान है। अर्थात् स्वभावत: सात्त्विकप्रकृति मनुष्योंके लिये यह यज्ञ नहीं है। जो लोग मांस-मद्य आदिका सेवन पहलेसे करते हैं, वे पूजादिके नियममें

> बँधकर क्रमशः मांसाहार आदि छोड़ दें। जो अबाधरूपसे मांस-मद्यादिका सेवन करते हैं, वे वैसा न करें और संयत होकर क्रमशः ऐसा करें, जिससे उनकी मांस-मद्यकी प्रवृत्ति कम होते-होते अन्तमें बिलकुल छूट जाय, यही इसका वास्तविक रहस्य है। यह सबके लिये नहीं है; परंतु जब वेद पूर्ण ग्रन्थ

> है तो इसमें केवल सात्त्विक ही नहीं, अपितु सभी प्रकारके अधिकारियोंके कल्याणके लिये विविध विधान होने चाहिये, इसी कारण राजसिक अधिकारीको क्रमश: सात्त्विक बनानेकी ये विधियाँ यज्ञरूपसे शास्त्रोंमें बतायी गयी हैं। ये संयमके लिये हैं, न कि यथेच्छाचारके लिये। किसीके संहार, मारण, मोहन, उच्चाटन आदिके लिये विधिहीन, अमन्त्रक पूजादि तामसिक हैं। दक्षिणाचारके अनुसार सात्त्विक पूजामें पशु-बलिका

> विधान नहीं है। राजसमें कृष्माण्ड, ईख, नीबू आदिकी बलि है। केवल वामाचारमें पशु-बलिका विधान है। महाकाल-संहितामें स्पष्ट कहा गया है-सात्त्विको जीवहत्यां वै कदाचिदपि नाचरेत्। इक्षुदण्डं च कृष्माण्डं तथा वन्यफलादिकम्॥ क्षीरपिण्डैः शालिचूर्णैः पश्ं कृत्वा चरेद् बलिम्॥ 'सात्त्विक अधिकारके उपासक कदापि पश्-बलि

िदानमहिमा−

बिल दें अथवा खोवा, आटा या चावलके पिण्डसे पश् बनाकर बलि दें।' यह सब भी रिपुओंके बलिदानका निमित्तमात्र ही है, जैसे कि महानिर्वाणतन्त्रमें कहा है-'कामक्रोधौ पश् द्वाविमावेव बलिमर्पयेत्।' 'कामक्रोधौ विघ्नकृतौ बलिं दत्त्वा जपं चरेत्॥'

देकर जीवहत्या न करें, वे ईख, कोहड़ा या वन्य फलोंकी

काम और क्रोधरूपी दोनों विघ्नकारी पशुओंका बलिदान करके उपासना करनी चाहिये। यही शास्त्रोक्त

बलिदान-रहस्य है।

 दाने सर्वं प्रतिष्ठितम् **िदानमहिमा**− 888 'बड़ो दान सम्मान' (पं० श्रीबाल्मीकिप्रसादजी मिश्र, एम०ए०, एम०एड०) चक्रवर्ती नरेन्द्र महाराज श्रीदशरथजीके चारों कुमार हाँ भाई, बताइये कि आज कौन-सा खेल खेला अपने बालसखाओंके साथ अब राजसदनसे बाहर भी जाय? गलियोंमें गोली, भमरा और लट्टू, डोरी खेलने आने श्रीरामभद्रने सखाओंकी ओर निहारते हुए पूछा। लगे हैं। अहा— सभीकी सहमति हो तो आज पदकन्दुक-क्रीड़ा हो जाय। कुमार मणिभद्रने प्रस्ताव किया और सभीने 'ठीक है-ठीक सुभग सकल अंग, अनुज बालक संग, देखि नर-नारि रहैं ज्यों कुरंग दियरे। है' कहकर अनुमोदन किया। इस कन्दुकक्रीडाके लिये तो दो दल होने चाहिये। जोड़ियोंका विभाजन होने लगा। खेलत अवध-खोरि, गोली भौंरा चक डोरि, बालकोंके दो दल पृथक्-पृथक् होने लगे। एक दलके

मूरति मधुर बसै तुलसीके हियरे॥ (गीतावली १।४३।३)

अवस्था अभी पाँच-सात वर्षकी ही है। आज

बालकोंका यह दल मनभावनी वासन्ती सन्ध्यामें

कोसलपुरवासियोंके प्राणोंमें प्राणसंचरण करता हुआ श्रीरामभद्रके आनुगत्यमें सरयू-पुलिनमें आ गया। सेवकों

एवं अंगरक्षकोंका दल दूरसे ही जागरूक होकर निहारता चल रहा है, पर कोई भी निकट रहकर सुषमा-सरित्के निर्बाध-प्रवाहमें अवरोध उत्पन्न करनेका साहस नहीं कर

रहा है। एक ओर निर्मलसलिला सरयू प्रवहमान हैं तो दूसरी ओर श्रीरघुनन्दनके श्रीअंगकी सुषमा-सरित् तीनों कुमारों एवं सखाओंके दलके साथ पृथक ही प्रवाहित हो रही है। अब सभी सरयू-पुलिनके उस क्रीड़ा-प्रांगणमें आ

गये, जो कुमारोंकी क्रीड़ाके लिये विशेष रूपसे बनाया गया था। धनुष और बाण—छोटी-छोटी धनुहियाँ, छोटे-छोटे बाण और तूणीर निकालकर रख दिये गये।

सभी कुछ कालके लिये दुर्वा-प्रांगणमें चक्राकार विराज गये हैं। श्रीरामभद्रके दक्षिण पार्श्वमें कुमार लक्ष्मण

हैं तथा वाम पार्श्वमें श्रीभरत तथा कुमार शत्रुघ्न हैं। अन्य सखागण गोलाईसे बैठे हैं। सुहावना त्रिविध समीर अंगसेवामें

सन्नद्ध है। सभी श्रीरामके मुखचन्द्रचन्द्रिकाका पान कर रहे हैं। खेल हो, परंतु कौन-सा खेल खेला जाय? यही निर्णय करनेके लिये यह गोष्ठी राज रही है। सभी बालक पैदल

ही चलकर आये हैं, रथोंको तो जाने कब कहाँसे, लगभग

आँखोंके संकेतसे निवेदन कर दी और श्रीरामने घोषित कर दिया कि प्रतिपक्षका नायकत्व श्रीभरत करेंगे।

राम-लषन इक ओर, भरत-रिपुदवन लाल इक ओर भये। सरजुतीर सम सुखद भूमि-थल, गनि-गनि गोइयाँ बाँटि लये॥ (गीतावली १।४५।१)

गगनमण्डलमें इस दिव्य क्रीड़ारसका आस्वादन

राजसदनसे निकलते ही छोड़ दिया गया था, अत: किंचित् पुष्पोंकी मन्द-मन्द वर्षा हो रही है। कन्दुक मध्यमें रखा Hinduism Discord Server https://dsc.gg/dharma MADE WITH LOVE BY Avinash/Sha श्रमीपनयन भी ही रही है।

करनेके लिये देवताओंके विमान दर्शकों और खिलाड़ियोंके समूहपर छाया किये हुए स्थिर हो रहे हैं। कल्पवृक्षके

नायक तो श्रीराम होंगे-यह तो निश्चित ही था, परंतु

प्रतिपक्षका नायकत्व कौन करे ? श्रीरामकी दृष्टि श्रीलक्ष्मण

तो मुझे दर्शक ही रहने दिया जाय। कुमार लक्ष्मणने अपना

प्रभो! मैं तो आपके ही पक्षसे खेलना चाहँगा। नहीं

श्रीरामने प्यारसे उन्हें निहारते हुए, उनके निर्णयमें

अब दृष्टि श्रीभरतपर गयी। शील, संकोच और

समर्पण-धर्मके मूर्तरूप भरतकी आँखों-से-आँखें मिलाते

हुए श्रीरामने मानो अनुरोध किया—भरत! क्या तुम भी ऐसा

ही निर्णय करने जा रहे हो? बस, प्रभो! इस प्रकारकी

नजरोंसे न निहारा जाय। प्रभुकी क्रीडाका सम्पादन हो, मैं

यह बात श्रीभरतने बोलकर नहीं, आँखों-ही-

प्रतिपक्षका नायकत्व स्वीकार करूँगा।

और भरतजीकी ओर गयी।

दो ट्रक मत स्पष्ट कर दिया।

अपनी सहमति दे दी।

* 'बडो दान सम्मान'* अङ्क] क्रीडाका श्रीगणेश किया। गगनसे पुन: पुष्पवृष्टि हुई। कन्द्रक श्रीभरतके दलमें आ गया। क्रीड़ाने गति ली। लक्ष्मण! तुम्हें तो ज्ञात ही है कि हमारी आजकी इस क्रीड़ामें हमारे लाडले भरत विजयी हुए हैं। अत: उनकी एक लै बढ़त एक फेरत, सब प्रेम-प्रमोद-बिनोद-मये। विजयके उपलक्ष्यमें यह दान दिया जा रहा है। (गीतावली १।४५।४) पक्ष और प्रतिपक्ष दोनों सम्पूर्ण प्रयासके साथ अपनी-लक्ष्मण-विजयके उपलक्ष्यमें या अपनी हारके अपनी विजयके लिये प्रयासरत हैं। गेंद श्रीभरतके समीप उपलक्ष्यमें ? श्रीराम—लक्ष्मण! हार और जीत तो क्रीड़ामें होती ही आयी। श्रीभरतने वेगसे पद-प्रहार किया, मानो सन्देश दिया— अभागी गेंद, तू शान्तिके लिये बार-बार इधर क्यों आ रही है। क्रीड़ाका मुख्य उद्देश्य तो मनोरंजन है। है ? शाश्वत-शान्ति चाहती है तो जा प्रभुके चरण चूम। लक्ष्मण-प्रभो! वह तो ठीक है, परंतु यह दानका गेंद (जीवात्मा) प्रभुके चरणोंके पास पहुँच गयी। विधान कुछ समझमें नहीं आया। प्रभुने पुन: प्रहार किया और गेंद श्रीभरतके चरणोंके समीप राम-लक्ष्मण! अच्छा यह बताओ कि दान किस-आ गयी। मानो प्रभुने कहा— किस वस्तुका दिया जाता है? लक्ष्मण-प्रभो! जिन वस्तुओंका दान दिया जाता है, अरी गेंद! शाश्वत शान्तिके प्रदाता तो श्रीभरत (सन्त)-के ही चरण हैं। मैं तो सदासे हूँ, सर्वत्र ही हूँ। वे सभी तो श्रीचरणसे अविदित नहीं हैं। सभीके हृदयमें निवास भी करता हूँ, परंतु— श्रीराम-लक्ष्मण! क्या सम्मानका दान भी दानकी अस प्रभु हृदय अछत अबिकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥ किसी कोटिमें आता है ? मैं सोचता हूँ कि यदि हम दूसरोंको अतः मुझे प्रकट करके सभीके लिये उपयोगी सम्मान देना सीख जायँ तो जीवनके अनेक विवाद स्वयं बनानेवाले तो श्रीसन्त (भरत)-के ही अधिकारकी बात समाप्त हो जायँ। हाथी, घोड़ोंका दान तो एक निमित्त है होती है। जा-जा तू उन्हींके चरणोंका आश्रय ले। लक्ष्मण! यथार्थ तो सम्मान देना है। कविके मानसदृगोंने इस प्रभुके श्रीचरणका स्पर्श पाकर गेंद पुन: भरतके पास दृश्यको निहारा और वे उद्घोष कर उठे-आयी। श्रीभरतने इस बार उसे इतने तेजसे लौटाया कि गेंद गोधन गजधन बाजिधन और रतन धन दान। पुनः वापस नहीं आयी। सम्भवतः वह वहाँ पहुँच गयी, तुलसी कहत पुकार के बड़ो दान सम्मान॥ जहाँसे लौटनेकी प्रक्रिया विराम ले लेती है। इधर प्रभु दान देनेमें लगे हैं, परंतु अत्यन्त आश्चर्य कि उधर श्रीभरत भी मनमाना दान देनेमें लगे हैं—किसीने पूछा— यद्गत्वा न निवर्तन्ते तब्द्वाम परमं मम। लोगोंने देखा कि गोल हो गया। सभीके मुखसे ध्वनि कुमार! आपका यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा गुंजरित हुई श्रीभरतलाल विजयी हो गये। आजकी इस क्रीड़ामें मेरे प्रभु शरीरसे तो हार गये कहत भइ हार रामजूकी, हैं, परंतु उनका स्वभाव विजयी रहा है। एक कहत भइया भरत जये॥ कन्दुकक्रीडाने विराम लिया। परंतु इधर एक अन्य श्रीभरतने बताया-**'संतत दासन देहु बड़ाई'** यह प्रभुका स्वभाव है। क्रीड़ाका श्रीगणेश हो गया। श्रीराम आज अत्यन्त हर्षसे फूले नहीं समा रहे हैं। महादान प्रारम्भ हो गया है। हाथी, तथा '*प्रभु अपने नीचहु आदरहीं'* यह उनकी वाणी है। मेरा दान अपने प्रभुके शील-स्वभावकी विजयके घोड़े, वस्त्र और आभूषण, जो कुछ भी सम्मुख दिखा, अयोध्यानरेशके बड़े राजकुमार आज खुले हाथ लुटाये जा उपलक्ष्यमें है। रहे हैं। लक्ष्मण कुमारसे नहीं रहा गया और पूछ बैठे-धन्य है ऐसा दान और धन्य हैं ऐसे दानके दानी प्रभो! आज यह दान किस उपलक्ष्यमें दिया जा रहा चक्रवर्ती महाराजके ये कुमार।

* नीतिग्रन्थोंमें दानका माहात्म्य*** अङ्क] नीतिग्रन्थोंमें दानका माहात्म्य (डॉ० श्रीवागीशजी 'दिनकर', एम०ए०, पी-एच०डी०) नीतिग्रन्थोंमें धनदानके साथ-साथ विद्यादानकी भी करना-ये छ: गुण विद्यमान नहीं हैं, उनका आश्रय लेनेसे

महत्ता वर्णित करते हुए कहा गया है कि यह याचकोंको क्या लाभ? दयालु लोगोंका शरीर परोपकारसे शोभा पाता है,

दिया जाता हुआ निरन्तर परम वृद्धिको प्राप्त होता है— 'अर्थिभ्यः प्रतिपाद्यमानमनिशं प्राप्नोति वृद्धिं पराम्।' इतना ही नहीं 'काले शक्त्या प्रदानम्' कहकर

अवसर आनेपर शक्तिके अनुसार दान करना सब शास्त्रोंमें कल्याणका अखण्डित विधानवाला मार्ग बताया गया है। दान किससे लेना चाहिये, किससे नहीं-इसका उल्लेख भी हमारे नीतिग्रन्थ करते हैं-

'असन्तो नाभ्यर्थ्याः सृहृदपि न याच्यः कुशधनः।' सज्जनोंको असज्जनोंसे और निर्धन मित्रोंसे भी याचना नहीं करनी चाहिये। सानपर खरादी हुई मणि, शस्त्रोंसे घायल हुआ युद्ध-

विजयी, मदके कारण क्षीण हाथी, शरद्-ऋतुमें सूखे पुलिनों (बालुके तटों)-वाली निदयाँ, जिसकी (केवल एक) कला शेष है—ऐसा चन्द्रमा (अर्थात् द्वितीयाका चन्द्रमा), याचकोंके प्रति (दान देनेके कारण) नष्ट हुए

वैभववाले लोग-ये सब कृशतासे ही शोभा पाते हैं-'**''''निम्ना शोभन्ते गलितविभवाश्चार्थिषु जनाः।'** पद्यांश दानकी सर्वोत्कृष्टताका स्पष्ट संकेत कर रहा है।

राजाओंकी नीतियोंके अनेक रूपोंकी चर्चामें 'नित्यव्यया प्रचुरनित्यधनागमा च 'तथा' हिंस्त्रा दयालुरपि चार्थपरा वदान्या।' पद्यांशमें 'नित्यव्यया' एवं 'वदान्या' पद दान देनेमें उदार, दानशील, नित्य व्यय—खर्चवाली मनोहर दृष्टिके परिचायक ही हैं।

नीतिग्रन्थोंमें राजाओंके छ: गुणोंकी चर्चा करते हुए स्पष्ट निर्देश है कि जिन राजाओंमें ये छ: गुण नहीं हैं, उनका आश्रय नहीं लेना चाहिये-

आज्ञा कीर्तिः पालनं ब्राह्मणानां दानं भोगो मित्रसंरक्षणञ्च। येषामेते षड्गुणा न प्रवृत्ताः कोऽर्थस्तेषां पार्थिवोपाश्रयेण॥ अर्थात् जिन (राजाओं)-के पास आज्ञा देनेकी शक्ति,

कीर्ति, ब्राह्मणोंका पालन, दान, भोग और मित्रोंकी रक्षा

नहीं। लगता है हाथोंकी सार्थकता दानसे ही है-श्रोत्रं श्रुतेनैव न कुण्डलेन, दानेन पाणिर्न तु कङ्कणेन। विभाति कायः करुणापराणां परोपकारैर्न तु चन्दनेन॥

चन्दनसे नहीं; उनके कान शास्त्रोंको सुननेसे ही शोभा पाते हैं, कुण्डलसे नहीं; हाथ दानसे शोभा पाते हैं, कंगनसे

सन्त पुरुषोंका उद्योग दूसरोंके हितमें, उन्हें देनेमें ही होता है; नीतिग्रन्थोंमें कहा गया है-पद्माकरं दिनकरो विकचीकरोति चन्द्रो विकासयति कैरवचक्रवालम्।

नाभ्यर्थितो जलधरोऽपि जलं ददाति सन्तः स्वयं परिहतेषु कृताभियोगाः॥ सूर्य कमलसमूहको खिला देता है, चन्द्रमा कुमुदोंके समूहको खिला देता है, बादल भी बिना माँगे ही जल देता

है। सन्तलोग स्वयं दूसरोंके हितमें अच्छी प्रकार उद्योग करनेवाले होते हैं। जिस प्रकार सुख-दु:खमें दूध जलका साथ देता है और जल दूधका। पहले दूधद्वारा अपनेमें मिले हुए जलको सम्पूर्ण अपने गुण दे दिये गये। उसके

देखकर अपनेको अग्निमें डाल दिया गया। वह दूध मित्र (जल)-को विपत्तिमें देखकर अग्निमें जानेके लिये व्याकुल हो गया। उस जलसे युक्त होकर (वह दूध) फिर शान्त हो जाता है, यह सज्जनोंकी मित्रता निश्चित रूपसे उनकी दानशीलतापर ही निर्भर है। 'दु:खिते कुरु

द्वारा दूधमें ताप (१ गरमी, २. विपत्ति या दु:ख)-को

दयामेतत् सतां लक्षणम्।' दु:खियोंपर दया करना सज्जनोंका लक्षण है, जहाँ यह बताया गया है, वहीं 'वित्तस्य पात्रे व्ययः' अच्छे पात्रपर खर्च करना धनका भूषण

अच्छा और सच्चा मित्र शास्त्रों एवं नीतिग्रन्थोंके आधारपर वही है जो पापोंसे बचाता है, हितमें लगाता है,

बताया गया है।

	प्रतिष्ठितम् * [दानमहिमा-

छिपानेयोग्यको छिपाता है, गुणोंको प्रकट करता है,	पुत्रादिप प्रियतरं खलु तेन दानम्
आपत्तिमें पड़े हुए (मित्र)-को छोड़ता नहीं है और	मन्ये पशोरपि विवेकविवर्जितस्य।
समयपर धन आदि देता है। सज्जनलोग इसे अच्छे मित्रका	दत्ते खले नु निखिलं खलु येन दुग्धम्
लक्षण बताते हैं—	नित्यं ददाति महिषी ससुतापि पश्य॥
पापान्निवारयति योजयते हिताय	सामान्य जल-जैसी वस्तुको भी देता हुआ बादल
गुह्यं च गूहति गुणान् प्रकटीकरोति।	सारे प्राणीसमूहका प्रिय बन जाता है, इसके विपरीत
आपद्गतं च न जहाति ददाति काले	सदा किरणरूपी हाथ फैलानेवाला सूर्य भी देखा नहीं
सन्मित्रलक्षणिमदं प्रवदन्ति सन्तः॥	जाता—
श्लोकके तीसरे पदमें यह दानकी महत्ता ही	यच्छञ्जलमपि जलदो वल्लभामेति सर्वलोकस्य।
प्रतिपादित है। संसारमें दानसे ही परस्पर सम्बन्ध बने रहते	नित्यं प्रसारितकरः सवितापि भवत्यचक्षुष्यः॥
हैं, तभी तो नीतिग्रन्थ कहते हैं—	देश–कालको ध्यानमें रखकर सुपात्रको दिया जानेवाला
तावत्प्रीतिर्भवेल्लोके यावद्दानं प्रदीयते।	दान अनन्त कालतक फलता है—
वत्सः क्षीरक्षयं दृष्ट्वा परित्यजति मातरम्॥	सत्पात्रं महती श्रद्धा देशे काले यथोचिते।
संसारमें जबतक दान दिया जाता है, तभीतक प्रेम	यद्दीयते विवेकज्ञैस्तदानन्त्याय कल्पते॥
होता है। दूधके नाशको देखकर बच्चा भी माँको छोड़	यदि सुपात्र हो और बहुत श्रद्धाभाव हो तो उचित
देता है।	देश और कालपर विवेकशील पुरुषोंके द्वारा जो दान दिया
केवल सांसारिक मनुष्य या जीव ही दान देनेसे	जाता है, वह अनन्त पुण्यफल देनेवाला माना जाता है।
प्रसन्न होते हों ऐसा नहीं है, देवता भी दानसे प्रसन्न होकर	दान देनेके सम्बन्धमें यह सोचना व्यर्थ है कि जब
अभीष्ट प्रदान करते हैं—	मेरे पास इतना धन हो जायगा तो मैं इतना दान अवश्य
नोपकारं विना प्रीतिः कथञ्चित्कस्यचिद् भवेत्।	ही करूँगा। अपने पास जो भी हो, उसीमेंसे थोड़ा-अधिक
उपयाचितदानेन यतो देवा अभीष्टदाः॥	दान कर देना चाहिये—
उपकार किये बिना (अन्य) किसी भी प्रकारसे	ग्रासादर्धमपि ग्रासमर्थिभ्यः किं न यच्छसि।
किसीका प्रेम नहीं होता; क्योंकि देवता भी भेंट या उपहार	इच्छानुरूपो विभवः कदा कस्य भविष्यति॥
देनेसे ही इच्छित वस्तु देते हैं।	एक ग्रासमेंसे भी अथवा उसका आधा भी भिक्षुकोंको
शत्रु भी दान मिलनेपर कैसे तुरंत मित्र बन जाता है,	क्यों नहीं देते; क्योंकि इच्छाके अनुरूप सम्पत्ति किसीके
इसका सजीव चित्रण देखिये—	पास भी कब हो पायेगी?
पश्य दानस्य माहात्म्यं सद्यः प्रत्ययकारकम्।	थोड़ी पूँजीमेंसे थोड़ा भी दान देनेवाला नीतिग्रन्थोंमें
यत्प्रभावादिप द्वेषी मित्रतां याति तत्क्षणात्॥	प्रशंसनीय माना गया है—
तत्काल विश्वास करनेवाले दानके महत्त्वको देखो,	ईश्वरा भूरिदानेन यल्लभन्ते फलं किल।
जिसके प्रभावसे शत्रु भी तत्क्षण मित्र बन जाता है।	दरिद्रस्तच्च काकिण्या प्राप्नुयादिति नः श्रुतम्॥
देखो, जिस कारणसे बच्चेवाली भैंस भी खल	सामर्थ्यशाली लोग बहुत दानसे जिस पुण्यरूपी फलको
(पशु-खाद्य)-को देनेपर सारा दूध पशुपालकको दे देती	प्राप्त कर सकते हैं, उसी फलको निर्धन एक कौड़ीके दानसे
है, उससे ज्ञात होता है कि बुद्धिहीन पशुके लिये भी दान	प्राप्त कर लेता है, हमने यह पूर्वपुरुषोंसे सुना है।
पुत्रसे बढ़कर प्रिय होता है, मैं ऐसा मानता हूँ—	दान देनेवाला छोटा व्यक्ति भी सेवायोग्य होता है,

कंजूस धन-सम्पत्तिसे बड़ा होते हुए भी सेवायोग्य नहीं अच्छे स्वभाववाला भी, अच्छी प्रकार शीतल रहनेवाला होता। अपनेमें स्वादिष्ट जलवाला कुआँ ही लोगोंका प्रिय भी, सुन्दर बना हुआ भी या अच्छे चरित्रवाला भी घड़ा होता है, समुद्र तो अधिक जलवाला होता हुआ भी प्रिय या मनुष्य जल न देनेसे या धन आदिका दान न करनेसे

* बृहस्पतिसूरिकी 'कृत्यकौमुदी' का दानप्रकरण *

दाता लघ्रपि सेव्यो भवति न कुपणो महानपि समृद्ध्या। भी तृती (कर्करी=पानी पिलानेवाला छिद्रवाला पात्र) घडेके ऊपर रखी जाती है— कुपोऽन्तः स्वादुजलः प्रीत्यै लोकस्य न समुद्रः॥

सदा मदजलके प्रवाहसे अत्यधिक क्षीण हुआ गजराज ही प्रशंसित माना गया है, दानसे रहित गधा तो

मोटा होते हुए भी निन्दायोग्य समझा गया है-

सुशीलोऽपि सुवृत्तोऽपि यात्यदानादधो घटः।

843

पुनः कुब्जापि काणापि दानादुपरि कर्करी॥ इस प्रकार हमारे नीतिग्रन्थोंमें दानके माहात्म्यके अनेक

नीचे ही रखा रहता है, किंतु जल देनेसे टेढ़ी भी, छिद्रवाली

प्रेरक श्लोक मिलते हैं, जिनको आचरणमें उतारनेसे जीवनमें

सुधार आता है और परमार्थ-पथ प्रशस्त होता है।

अदानः पीनगात्रोऽपि निन्द्य एव हि गर्दभः॥

सदा दानपरिक्षीणः शस्त एव करीश्वरः।

अङ्क]

नहीं बताया गया है—



प्र० ति० २०-१२-२००८ रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० २३०८/५७ पंजीकृत संख्या—NP/GR-13/08

LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT

दानधर्मकी महिमा

LICENCE No. WPP/GR/-03/2008

अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम्॥

तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम्। न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत्॥

इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम्। ददाति वेदविद्षे स न भूयोऽभिजायते।

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति॥

वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः। तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम्॥

दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्र्याणि वेश्मानि रूप्यदो रूपमुत्तमम्॥ भूमिदः सर्वमाप्नोति

वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनुडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य विष्टपम्॥

यानशय्याप्रदो भार्यामैश्वर्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ॥

वेदवित्सु ददन्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते। गवां घासप्रदानेन

सर्वपापैः प्रमुच्यते। इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः॥

रोगिरोगप्रशान्तये। ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च॥ स्नेहमाहारं औषधं

क्षुरधारसमन्वितम् । तीक्ष्णातपञ्च तरित छत्रोपानत्प्रदानतः ॥ असिपत्रवनं मार्गं

यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दियतं गृहे। तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता॥

अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्ययोः। संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम्॥

प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः। दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते॥

[**ब्रह्माजीने व्यासजीसे कहा** —] सत्पात्रमें श्रद्धापूर्वक किये गये अर्थ (भोग्यवस्तु) – का प्रतिपादन (विनियोग) दान

कहलाता है—ऐसा दानधर्मको जाननेवाले विद्वानोंका कहना है। यह दान इस लोकमें भोग और परलोकमें मोक्ष प्रदान करनेवाला है। मनुष्यको चाहिये कि वह न्यायपूर्वक ही अर्थका उपार्जन करे; क्योंकि न्यायसे उपार्जित अर्थका ही दान-भोग सफल होता है। जो

ईखकी हरी-भरी फसलसे युक्त या यव-गेहूँकी फसलसे सम्पन्न (शस्य-श्यामल) भूमिका दान वेदविद् ब्राह्मणको देता है, उसका पुनर्जन्म नहीं होता। भूमिदानसे श्रेष्ठ दान न हुआ है और न होगा ही। जलका दान करनेवाला तृप्ति (पूर्ण सन्तोष), अन्नका दान

करनेवाला अविनाशी सुख, तिलदान करनेवाला अभीष्ट सन्तान तथा दीपदान करनेवाला उत्तम नेत्रज्योति प्राप्त करता है। भूमिका दान करनेवाला समस्त अभिलिषत पदार्थ, स्वर्णका दान करनेवाला दीर्घ आयु, गृहका दान करनेवाला उत्तम भवनोंको तथा रजत

(चाँदी)-का दान करनेवाला उत्तम रूप प्राप्त करता है। वस्त्र प्रदान करनेवाला चन्द्रलोक, अश्व प्रदान करनेवाला अश्विनीकुमारोंका लोक, वृषभका दान करनेवाला अखण्ड वैभव और गौका दान करनेवाला सूर्यलोक प्राप्त करता है। वाहन तथा शय्याका दान

करनेवाला सुलक्षणा भार्या, भयभीतको अभयदान देनेवाला ऐश्वर्य, धान्य (अनाज आदि)-का दान करनेवाला शाश्वत सुख तथा ब्रह्मविद्या (वेदविद्या—अध्यात्मविद्या)-का दान करनेवाला शाश्वत ब्रह्मकी प्राप्ति करता है ।वेदविद् ब्राह्मणको ज्ञानोपदेश करनेसे

दिव्य लोकमें प्रतिष्ठा होती है तथा गायको घास देनेसे सभी पापोंसे मुक्ति हो जाती है । ईंधन (अग्निको प्रज्वलित करने) – के लिये

काष्ठ आदिका दान करनेपर व्यक्ति प्रदीप्त अग्निके समान तेजस्वी हो जाता है। रोगियोंकी रोगशान्तिके लिये औषधि, तेल आदि

पदार्थ एवं भोजन देनेवाला मनुष्य रोगरहित होकर सुखी और दीर्घायु हो जाता है। छत्र और जूतेका दान करनेसे मनुष्य प्रचण्ड धूपके कारण तीक्ष्ण तापवाले तथा तलवारके समान तीक्ष्ण धारवाली नुकीली पत्तियोंसे परिव्याप्त असिपत्रवन नामके नारकीय मार्गको पार

कर जाता है। जो मनुष्य परलोकमें अक्षय सुखकी अभिलाषा रखता है, उसे संसार या घरमें जो वस्तु अपने लिये अभीष्टतम है तथा

अत्यन्त प्रिय है, उस वस्तुका दान गुणवान् सुपात्रको करना चाहिये। उत्तरायण, दक्षिणायन, महाविषुवत्काल (तुला और मेषसंक्रान्तिका काल), सूर्य तथा चन्द्रग्रहणमें एवं संक्रान्तियोंके आनेपर दिया गया दान परलोकमें अक्षय सुख देनेवाला होता है।इस

प्रकारका दान प्रयागादि तीर्थींमें तथा गयामें विशेष महत्त्व रखता है। [भगवानुकी प्रीतिके लिये बिना किसी कामनाके किया गया दान सर्वोपरि कल्याणकारी है।] दान-धर्मसे बढ़कर श्रेष्ठ धर्म इस संसारमें प्राणियोंके लिये कोई दूसरा नहीं है। [**गरुडपुराण**]